संपादक—प्रो. बी. आर. देवधर

सह-संपादक—पं. विनयचंद्रजी व प्रो. प्राणलाल शहा .... व्यवस्थापक:—प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये

★ संपादकीय ★

पिछले १० मास से, 'संगीत–कला–विहार' संगीत–कला की सेवा कर रहा है। बड़े हर्ष का विषय है कि, इस मासिक का प्रसार शीघ्रता से हो रहा है; किन्तु इस कार्य में 'विहार, के समस्त सदस्य यथासंभव सहायता कर रहे हैं, अतः हम सब के आभारी हैं।

चित्र व हस्त–लिखित ग्रंथ तथा रचनायें:—

'विहार' के मुख पृष्ठ पर मुद्रित चित्र, प्रसिद्ध व सभी घरानों के कलाकारों के होने के नाते अधिकांश वाचकों को बड़े ही अच्छे लगे हैं। साथ ही उनका मत है कि, वे सब एक ऐलबम के रूप में प्रकाशित किये जायें। वास्तव में यह आग्रह निपट उचित है; तथा हमारी यह इच्छा भी है। परन्तु, अभी वह अनुपम व अनमोल निधि पूर्ण रूप से हमारे पास एकत्रित ही कहाँ हो पाई है। उसका पूर्ण सन्तोष–जनक संग्रह एवं संचय होते ही हम वाचकों की इस अभिलाषा को अवश्य पूरा करेंगे।

गत ३०-४० वर्षों तक के प्रसिद्ध कलाकारों के चित्र मिलना कोई विशेष कठिन नहीं; किन्तु उससे पहिले के प्राचीन लोगों के चित्र मिलना दुस्तर हो रहा है। अतः वाचकों में से जिस किसी को ऐसे चित्रों का अस्तित्व विदित हो, वे कृपा करके उसकी सूचना दें, अथवा कला–प्रेमी होने के नाते, हमारे लिये उसे उपलब्ध कर देना अपना कर्तव्य समझें। हमें विशेषतः खाँ साहबान हस्सू हद्दू खाँ, बड़े व छोटे मुहम्मद खाँ, नत्थे खाँ, दिल्ली वाले तान्दरस खाँ, बहादुर हुसैन खाँ, गाने खुदाबक्श पं. वासुदेव जोशी, पं बाबा दीक्षित, नाना साहब पानसे, वामनराव चांदवडकर, इत्यादि के चित्रों की बड़ी आवश्यकता है।

आजकल गाई जाने वाली प्रचलित चीज़ों के शब्द प्रायः अशुद्ध हो गये हैं, तथा उनका शुद्धी–करण बहुत ही अनिवार्य है। इसके लिये उन सब चीज़ों के जितने पाठ प्राप्त होंगे, उतना ही अच्छा है। इस प्रकार शुद्ध की हुई चीज़ें समयानुकूल 'विहार' में प्रकाशित करने का हमारा विचार है; अतः वाचकगण इस कार्य को सफल बनाने के लिये जो भी प्राचीन चीज़ों के मूल–ग्रन्थ अथवा संग्रह उनके पास हों, भेजने की कृपा करें। शुद्ध चीज़ों की, प्रकाशनार्थ नक़ल करके, वे ग्रन्थ इत्यादि लौटा दिये जायेंगे।

* बाबा सिंधी ख़ाँ *

[लेखक—प्रो. बी. आर. देवधर B. A., संचालक, स्कूल ऑफ़ इंडिअन म्यूज़िक]

" मैं एक लेख लिख कर संगीत–जगत को आपका परिचय देना चाहता हूँ; किन्तु, मुझे यह अवश्य लिखना पड़ेगा कि आप नशा बहुत करते हैं। क्या आपको इसमें कुछ आपत्ति है?" मेरे इस प्रश्न का ख़ाँ साहब ने उत्तर दिया, " मैं नशा हर रोज़ करता हूँ। आप खुशी से लिखें। मेरी यह आदत बहुत पुरानी है; फिर मैं वह कभी चोरी से करता नहीं। मैं आज़ाद हूँ, मुझे दुनियां की परवाह नहीं।"

" ख़ाँ साहब ! आपका जन्म किस जगह हुआ था ?"

" सिंध में हुआ होगा, या पंजाब में।"

" किन्तु, सही जगह कौन सी है ?"

" जन्म अवश्य हुआ, फिर वह चाहे पंजाब में हुआ हो, या सिंध में।"

" आपका जन्म हुआ, इसका तो आपको पूरा विश्वास है न।"

इस पर ख़ाँ साहब बहुत हँसे और कहने लगे, " मैं तो पढ़ना–लिखना न जानने वाला, एक अनाड़ी आदमी हूँ। फ़िज़ूल (व्यर्थ में) आप मेरी हँसी क्यों करते हैं ? मेरे पिता ने यह कभी बताया ही नहीं कि, मेरा जन्म कहाँ हुआ ? वे जब ज़िन्दा थे, तो यह पूछने की मुझे याद भी न रही।"

उपर्युक्त प्रश्नोत्तरों पर से ख़ाँ साहब के स्वभाव के विषय में तनिक सी कल्पना हो सकती है। वे स्वतंत्र–वृत्ति के हैं। संसार की चाह व पसंद की उन्हें चिंता नहीं। जो उनके जी में आता है, बस, वही करते हैं।

एक फ़क़ीर:—

सन् १९१८ की जून में मैंने गांधर्व–महाविद्यालय में एक विद्यार्थी के नाते प्रवेश किया। सेंढर्स्ट रोड पर विद्यालय की भव्य इमारत की तीसरी मंज़िल पर वाद्यों का कारखाना व वाद्य–बिक्री की एक बड़ी दुकान, थे एक फ़क़ीर काली लम्बी कफ़नी; व गले में फूलों की माला पहने, तथा हाथ में तम्बूरी लिये हुए; वहाँ कभी कभी आता। कुर्सी पर बैठने के बाद वह गाना शुरू करता। उस समय पं. भातखण्डे के द्वारा रचे हुए लक्षण–गीत लोक, प्रिय थे। यह फ़क़ीर ३–४ लक्षण–गीत गाने के पश्चात्, ज़ोर–ज़ोर से हँसता। फिर ५-१० पुरानी खानदानी चीज़ें गाता और पंडित जी की कुशल इत्यादि, के विषय में पूछ–ताछ करके, अपने रास्ते चलता बनता।

किसी को भी यह मालूम न था कि, वह फ़क़ीर कौन, तथा उसका क्या नाम व पता था ? हम सब उसे 'पागल फ़क़ीर' के नाम से पहचानते थे। कुछ लड़के उसके साथ छेड़–छाड़ भी करते थे। वह बेचारा, मराठी न जानने के कारण कुछ भी न समझ पाता था। वह किसी पर भी नाराज़ न होता था। उसकी बुलंद, कमाई हुई आवाज़ व ढंगदार चीज़ें गाने का तरीक़ा, अवश्य असाधारण था। हमारे विद्यालय के सब लोग इस सत्य को भली प्रकार जानते थे।

१९१९ का संगीत–परिषद निकट था। धूम–धाम से तैयारियाँ चल रही थीं। पं. बालकृष्ण बुआ, इस परिषद के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे। हम, एक दिन संध्या–समय तिमंज़िले वाली कम्पनी का सब काम समाप्त करके गप्पें मार रहे थे। इतने ही में वह फ़क़ीर दरवाज़े में से अन्दर आता दिखाई दिया। मेरे साथीदारों को मनोरंजन का अच्छा साधन मिल गया। सबने उससे गाने के लिये कहा और वह गाने लगा। सब लड़के ज़ोर–ज़ोर से हँस–हँस कर उसका मज़ाक उड़ाने लगे। यह किसी को भी ज्ञात न था कि, पंडित विष्णु दिगम्बर नीचे ही थे। लड़कों के हँसने–खिलखिलाने व उस फ़क़ीर के गाने की आवाज़ सुनकर पंडित जी ने उस जगह प्रवेश किया। उन्होंने सब लड़कों को धमकाया और कहा, " ये ख़ाँ साहब सिंध के एक बड़े प्रसिद्ध गवैये के पुत्र हैं। ये स्वयं भी गुणी हैं और इनका नाम सिंधी ख़ाँ है। इनका उचित सत्कार किया करो। फिर कभी इनके साथ इस तरह ठट्ठा–मसखरी न करना।"

इतना कह कर, पंडित जी स्वयं वहीं एक कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने खाँ साहब से कुशल-समाचार पूछे और उनसे भिन्न-भिन्न रागों की चीज़ें गाने के लिये आग्रह करने लगे। इसके बाद पंडित जी ने उन्हें कुछ रुपये दिये और खाँ साहब उठ कर चल दिये। ऐसे गुणी व्यक्ति की हम लोग, अज्ञानता-वश हँसी उड़ा रहे थे, इसका ध्यान आते ही मुझे बड़ा बुरा लगा। इस प्रसंग के पश्चात् मैं खाँ साहब का यथोचित सन्मान करने लगा।

पं. बालकृष्ण बुआ व खाँ साहब सिंधी खाँः—

पं. बालकृष्ण बुआ बम्बई आये थे; किन्तु उनका स्वास्थ्य ठीक न था। अतः वे तिमंज़िले पर एक कमरे में सो रहे थे। खां साहब सिंधी खाँ विद्यालय में आये व बालकृष्ण बुआ की तबीयत के विषय में पूछने लगे। हमने बुआ साहब को खाँ साहब के आने की खबर दी। उन्होंने कहा, "खाँ साहब को ऊपर ले आओ।" खाँ साहब उस कमरे में गये और बुआ साहब से कहने लगे, "मैं अमीर खाँ का लड़का सिंधी खाँ हूँ।" बुआ साहब ने लेटे हुए ही, आँखें तक न खोल कर कहा, "तू अमीर खाँ का ही लड़का है, इसका विश्वास मुझे उनकी चीज़ें गाकर करा दे, तो तेरी बात सच्ची मानूं।" सिंधी खाँ ने छाया नट का 'सुग्रीव राम कृपा' नामक ख्याल गाया। गाना समाप्त होने पर बुआ साहब ने उनकी ओर आँखें खोल कर देखा। वे कहने लगे "तेरे गाने पर से ही मैंने तुझे पहचान लिया था; परन्तु तेरा चहरा भी बताता है कि, तू अमीर खां का ही लड़का है। मैं जब तक यहाँ हूँ, तब तक मिल जाया करो।"

खाँ साहब से मेरा परिचयः—

१९२२ में मेरे विद्यालय छोड़ देने के पश्चात्, खाँ साहब कभी-कभी रास्ते में ही मुझसे मिलते। मेरे उन्हें नमस्कार करने के पश्चात्, "तबीयत ठीक है न। पंडित जी कैसे हैं?" बस इतनी पूछ-ताछ करके वे चल देते।

१९२५-२६ की बात होगी। खाँ साहब एक दिन मुझे रास्ते में मिले। मैं उन्हें अपने घर ले गया। वहाँ, उन्होंने मुझे १५-२० चीज़ें सुनाई।

वे सब इतनी सुन्दर थीं कि, उन्हें सीखने का मेरे मन में मोह उत्पन्न हुआ। अतः मैंने खाँ साहब से निवेदन की और मासिक फी भी देने के लिये कहा। किन्तु, वे जो 'हाँ' कह कर गये, तो पुनः वर्षभर मिले भी नहीं। तदनंतर वर्ष में एक-आध दिन मिल जाते। कभी तो हमारी शाला में भी आते घंटे-आधे घंटे गाते भी और खर्च के लिये आवश्यक रुपये-पैसे माँगकर चलते बनते। हर बार मैं उनसे सिखाने के लिये कहता; किन्तु वे बस 'हाँ' कह कर फिर आते भी न थे।

१९३६-३७ के लगभग सायंकाल के समय ८ बजे वे मुझे सेंढर्स्ट रोड पर मिले। मैंने नमस्कार किया और पूछा, 'मुझे सिखाने के लिये मैं इतने वर्षों से प्रार्थना करता हूँ; लेकिन आप इस पर ध्यान ही नहीं देते।" खाँ साहब ने कहा "सिखाता हूँ, कौनसी चीज़ चाहिये सो कहो" मैंने उनसे 'ललित-पंचम' राग की 'उड़त बंधन' चीज़ माँगी। खाँ साहब वहीं रास्ते में फुट-पाथ पर म्युनिसिपालटी की लालटैन के नीचे बैठ गये और वह चीज़ गाने लगे। मैंने भी जेब से कागज़-पेन्सिल निकाल उस चीज़ का नोटेशन करके लिखना शुरू कर दिया। गाने की आवाज़ सुनते ही, रास्ते के सब लोग हमारे चारों-ओर जमा होने लगे। यह चीज़ लिखने में मुझे १०-१५ मिनिट लगे होंगे। इतने ही में कोई ५० आदमी वहाँ इकट्ठा हो गये। खां साहब को उसका ध्यान तक न था; परंतु मैं ही कुछ डर सा गया। खाँ साहब तो कहने लगे, "अब दूसरी चीज़ लिखो।" मैंने बढ़ती हुई भीड़ को देखकर सोचा कि, यदि कुछ देर और हम यहाँ बैठे तो और ज्यादा लोग जमा हो जायेंगे व कदाचित् पास के पुलिसमैन का ध्यान भी हमारी ओर आकर्षित हो जाय। अस्तु, इस आपत्ति के डर से मैं ही उठ खड़ा हुआ व खां साहब को साथ लेकर चल दिया।

१९४१ में हमारा विद्यालय ऑपेरा हाउस के सामने वाली जगह पर बदल गया। वहाँ, महिने में, लग-भग एक बार तो अवश्य ही खाँ साहब आते। वे घन्टे-आधेघन्टे नई-नई चीजें गाकर सुनाते। अभी तक मैंने उनसे अनेकों रागों की चीज़ें सुनी हैं। वे सभी खानदानी व सुन्दर बन्दिश की थीं। उनमें ग्वालियर घराने की, मुझे आने वाली चीज़ें भी बहुत सी थीं; किन्तु ऐसी भी बहुत सी थीं, जो कभी भी मैंने नहीं सुनी थीं। इन सब चीज़ों को सीखने की तलमली सी लगी हुई थी। परन्तु, खाँ साहब सिखाते ही नहीं थे; अतः वे चुपचाप सुनकर ही अपना समाधान कर लेता था।

१९४२ से खां साहब हमारी शाला में प्राय: आने लगे। उस वर्ष के अन्त में, कोल्हापुर वाले मेरे मित्र जगन्नाथ बुआ साहब पुरोहित, मेरे यहां महमान आये थे। उनसे खां साहब का बड़ा पुराना परिचय होने के कारण खां साहब एक दिन मिलने आये। रा. जगन्नाथ बुआ उनसे कुछ चीज़ें सीखने लगे। इसी समय मैं भी वहां जा पहुंचा। मैंने तो खां साहब से 'चीजें सिखाइये,' यह कहना भी छोड़ दिया था। उन्हें जब ज़रूरत होती तो कुछ रुपये देकर, उनसे चीज़ें सुनता, यही मेरा काम था। श्री. जगन्नाथ बुआ को सिखाते हुए देख कर, मैंनें खाँ साहब से कहा, "आपकी और मेरी जान-पहचान कोई २३-२४ वर्ष से है; लेकिन 'मुझे सिखाईये' यह निवेदन कितने बरस से कर रहा हूँ। आप मुझे कभी कुछ बताते ही नहीं।" इस पर जगन्नाथ बुआ साहब ने भी कहा, "खां साहब, देवधर भी आपके ही ग्वालियर-घराने के हैं, तो भी आप अपनी ये चीज़ें क्यों नहीं देते?" खां साहब उस दिन खुश थे। वे कहने लगे, "देवधर साहब मेरा सन्मान करते हैं, तथा समय-समय पर मुझे उनसे सहाय्य भी मिलती है। उन्हें अपने पास की चीज़ें दूं, यह मेरी हार्दिक इच्छा रहती है। मेरा यह नियम है कि, जैसी मैं गाऊँ और सिखाऊँ, वैसी ही चीज सीखने वाले को गाना चाहिये। मेरी जगहें व हरकतें हू-बहू दिखाना, लोगों को कठिन लगता है, तथा वे बार-बार गलती करते हैं। बस मुझे क्रोध आ जाता है और उसी के तैश (आवेश) में मैं कुछ खरी-खोटी कह बैठता हूँ। मैं अब ज्यादा उम्र (आयु) के कारण थक गया हूँ और साठी के भी ऊपर पहुँच चुका हूँ। अत: अब ऐसे विद्यार्थियों के साथ महनत करने का मुझ में दम नहीं रहा बस इसीलिये मैं किसी को सिखाता नहीं। देवधर सा: को मेरा यह गुस्सा वगैरह अच्छा लगे, तो मैं उन्हें ये चीज़ें देने को तैयार हूँ।

इतना कहने पर उनका जी भर आया और आँखों से आँसू टपकने लगे। कुछ देर बाद वे कहने लगे, "मैंने आज तक किसी को ज्यादा सिखाया ही नहीं है। पहिले मैंने जिनको मन लगा कर सिखाया, वे मेरा नाम न बताकर अपने बाप या चाचा का नाम लेकर लोगों को बताने लगे। इससे मुझे गुस्सा आया और मैंने सिखाना ही बन्द कर दिया। पैसे की वजह से (कारण से) लोगों को चीज़ें देना पड़ता था; लेकिन मैं वे उल्टी-सीधी करके देने लगा। मुझे लिखते-पढ़ते तो आता नहीं, इसलिये मैं पाठांतर पर ही भरोसा करता हूं। बहुत से वर्षों से रियाज़ न कर सकने की वजह से मैं भी सैकड़ों चीज़ें अब भूलने लगा हूँ। इसके बाद वे कुछ देर तक स्तब्ध बैठ रहे और कुछ देर में मेरी ओर देखकर उन्होंने कहा, देवधर साहब, आप मुझ पर श्रद्धा रखते हैं, यह मुझे मालूम है। मैं यह भी जानता हूँ कि, अन्य लोगों की भाँति आप मुझे 'पागल' भी नहीं समझते। आप व आपके शिष्य, सब मेरे साथ आदर-पूर्ण व्यवहार करते हैं। यही बात है कि, मैं जब जी में आता है आजाता हूँ। आप मेरे ही, याने ग्वालियर-घराने के हैं। बस, मैं कल से नियम से आया करूंगा और जितनी व जो चीज़ें तुम्हें चाहिये, सब चीज़ें दूंगा।"

कथानानुसार, ठीक दूसरे दिन सुबह ही खां साहब आये। उस समय आड़-रागों की चीज़ें सीखने की ओर ही मेरा ध्यान ज्यादा होने के कारण मैं वैसी ही चीज़ें उनसे माँगने लगा। तम्बूरा शुरू हुआ, व खां साहब सिखाने लगे। खां साहब से मैंने कहा, "मेरा सीखने का ढंग कुछ अनोखा है। मुझे जो चाहिये, उन चीज़ों के अक्षर बताते जाइये, वह मैं लिख लेता हूं, फिर आप हर एक लाइन ५-६ बार गाइये। बस, मैं स्वरों का नोटेशन करके वह सारी पंक्ति लिख लेता हूं। इस तरह से सारी चीज समाप्त हुई कि, मैं आपके सामने उसे गाऊंगा और उसमें जहां कमी रह जाय, उसे आप बतादें, मैं ठीक कर लूंगा। आप जिस तरह गाते हैं, उसी तरह आप वह चीज़ सुनें और मैं जहां तक होगा, एक कण का भी फर्क न डाल कर गाने की कोशिश करूंगा। अगर मैं यह न कर सका तो फिर आपके कहने के अनुसार ही मैं प्राचीन-ढंग से सीखूंगा। खां साहब को लिखकर नोटेशन द्वारा सीखने पर तनिक भी विश्वास न था। वे कुछ बोले तो नहीं; लेकिन ज़ोर से हँसने अवश्य लगे। फिर वे मेरी निवेदन के अनुसार ही एक-एक पंक्ति ५-७ बार गाने लगे। मैं अपने ढंग के अनुसार लिख-लिख कर उन्हें सुनाने लगा। एक दो जगह उन्होंने सुधार किया, तथा मैंने वह सारी चीज़ उन्हें फिर सुनाई। इस सब में कोई १५ मिनिट लगे होंगे। सब जगहें व हरकतें ठीक-ठीक रखकर, मुझे वह चीज इतनी जल्दी आगई,

इस पर खां साहब को आश्चर्य हुआ और अपने कहा, "देवधर सा: आपको सिखाना बड़ा आसान है। आपके इस लिख कर सीखने पर मुझे जरा भी भरोसा न था; लेकिन अब मानता हूँ कि, इस तरह लिख लेना बहुत ही फ़ायदेमन्द है। ऐसी चीज़ें ठीक ठीक जमाने व गाने में हमें आठ—आठ दिन लगते हैं। आप पढ़े—लिखे लोग तो वहीं मिनिटों में कर दिखाते हैं। आपको सिखाने में न चिल्लाना पड़ता है और न नाराज़ होने की बात ही होती। इसलिये अब मैंने पक्का इरादा कर लिया है कि, जितनी भी चीज़ें मुझे याद हैं, सब आपको सिखा दूं। मुझे अभी फुरसत है, और कौनसी चीज़ चाहिये?" खां साहब अब तो दिन—दिन खुश होने लगे व चीज़ें याद आते ही वे आकर मुझे सिखाने लगे। इस प्रकार जिन चीज़ों के सीखने की मुझे बड़ी उत्कंठा थी, वे अन्त में मुझे मिल गईं।

नोटेशनः—

इस स्थान पर मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है, उससे कदाचित्–लोग यह समझ बैठें कि, मैं नोटेशन पर बहुत विश्वास करता हूँ। मुझे नोटेशन पर विश्वास अवश्य है; किन्तु उसकी एक सीमा है नोटेशन का सच्चा उपयोग आरंभ व अन्त में होता है। आरंभ में स्वर—परिचय, उन स्वरों को लिखना, तथा पढ़ना और छोटी–छोटी मध्य लय की चीज़ें घर पर याद करना; इस में नोटेशन काम में आता है। किन्तु, एक बार गायकी आरंभ हुई कि गुरु–मुख व अपने कान, इनका ही अधिक उपयोग होता है। स्वरों के कण, उनकी झोंक, खेंच, बारीक व मोटा पन, ये बातें गुरु मुख से ही सीखना चाहिये। नोटेशन पर से ही, मुझे भी ख्याल याद करना पड़ता है। अत: मुझे उसका भी अच्छा अनुभव है। नोटेशन पर से याद करते समय मात्राओं की ओर ही अधिक ध्यान रहता है। इसलिये अक्षर टूट जाते हैं और प्रत्येक अक्षर एक मात्रा विशेष पर ही आना चाहिये, इस पर ध्यान देते-देते ही सारी चीज़ का जीव तक ध्यान में नहीं आने पाता। नोटेशन व पुस्तक पर से सीखे हुए ख्याल निर्जीव व ठोस लगते है, तथा उन्हें जैसा का तैसा याद रखना भी मुश्किल ही होता है। मैंने खां साहब की चीज़ें नोटेशन में लिख ली हैं, वह इस कला की सेवा में अपने २५–३० वर्ष खपाने के पश्चात्, यह वाचकों के ध्यान में रखना चाहिये। इन २५–३० वर्षों में मैंने अनेकों गायकी सुना था। तथा अनेकों रागों की चीज़ें याद की थीं। प्रत्येक राग की विशेष स्वर–रचना, व स्वर–वाक्य का भी मैंने अच्छा अध्ययन किया था। प्रत्येक घराने की गायकी में विशेष ढंग की ओर मैं सावधानी से ध्यान देता था; अत: किसी राग की कोई हरकत कैसी व किस तरह की आयेगी, इसके निश्चित ताल मुझे ज्ञात हो गये थे। इतनी खट–पट के पश्चात ही मैं खां साहब की चीज़ें स्वरों में व अपने सांकेतिक चिन्हों में लिख सका। खां साहब का गाना मेरे कानों में २३–२४ वर्षों से पड़ता रहा होने के कारण, मैं उनके अंग–स्वभाव समझ सका। खां साहब की चीज़ें यदि मैंने ताल–बद्ध न लिखी होतीं, तो चीज़ का प्रत्येक शब्द तथा उसके चारों–ओर स्वरों का जाल ही केवल मैं लिख लिया करता।

इसके अतिरिक्त ये चीज़ें मैंने ताल–बद्ध करके लिख तो ली हैं; परन्तु यह काम करने में गुलाब के किसी सुन्दर पुष्प की पंखुरियाँ मसल डालने का सा दुःख होता है। कोई सुन्दर जगह जिस आश्चर्य–जनक व मोहक रीति से दो शब्दों में आती है, वह ताल–बद्ध करके यदि लिखी गई, तो उसका वज़न ही बदल जाता है; किन्तु उसका इलाज ही नहीं। उन चीज़ों को यदि ताल–बद्ध करके मैं लिख कर न संग्रह करता, तो उनका निशान तक न रह पाता; अत: मुझे यह कार्य करना पड़ा।

नोटेशन का उपयोग अन्त में इस प्रकार होता है। कोई सी भी नाविन्य–पूर्ण हरकत सुनी कि वह स्वरों में लिख ली जा सकती है। गायकी के सारे अंग समझ चुकने के बाद, नोटेशन द्वारा लिखी हुई चीज़ को अनुभवी गवैये अच्छी तरह से गा सकते हैं। केवल मूल–गायक के अंग–स्वभाव व नोटेशन पर से गाने वाले इस गायक के अंग–स्वभाव भिन्न–भिन्न होने के कारण इन दोनों के समझने (Interpretation) में थोड़ा–बहुत अन्तर अवश्य होगा। मेरा उपर्युक्त विचार, केवल बड़े–बड़े ख्यालों के संबंध में है, मध्य-लय की चीज़ों के लिये नहीं—वाचक इसका विशेष ध्यान रखें।

पागल कि औलिया ?

इस समय तक बम्बई में बहुत से मुसलमान गवैयों–बजवैयों से मेरा परिचय हो चुका था। उनमें से अनेकों गप्पें मारने के लिये सायंकाल के लगभग मेरे पास आते थे। इन लोगों में मुझे

ख़ां साहब के विषय में परस्पर विरोधी मत मिले। कुछ लोग उन्हें एक 'नशेबाज़ पागल' व 'झगड़ालू' गवैया समझते, तो कुछ उन्हें 'दैवी-शक्ति-प्राप्त' एक अत्यन्त विद्वान् गवैया व 'औलिया' समझकर, उनका आशीर्वाद पाने में ही अपना गौरव मानते थे। मैं ख़ां साहब को २३-२४ वर्ष से जानता था, अतः मुझे यह पूर्ण विश्वास था कि, वे अत्यंत चतुर, बुद्धिमान् व फ़क़ीरी-वृत्ति के एक स्वतंत्र औलिया अवश्य थे। उनमें कलावानों का लहरी पन कूट कूट कर भरा है। एक दिन शाम को, वे पंजाबी स्त्रियों के पाहिनने की लम्बी व ढीली सी सलवार पहनकर आये। दो दिन तक वही पहने फिरते रहे। फिर कुछ दिन बाद पाजामे पर पंजाबी ज़नानी-क़मीज़ पहनकर आये, तो मैंने इसका कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे कपड़े धोबी के यहाँ से आये नहीं हैं और जो कपड़े मैं पहने था, वे गन्दे व मैले हो गये थे इसलिये, घर में जो भी साफ़ कपड़े थे, वे ही मैंने पहन लिये हैं। लोग हँसते हैं; लेकिन मुझे उनकी परवाह ही कब है!"

ख़ां साहब के धूर्तपन की एक बात का यहाँ वर्णन करना अच्छा होगा। ख़ां साहब ने मुझे कुछ अच्छी-अच्छी चीज़ें दीं थीं; परंतु वे किस राग की थीं, यह उन्हें मालूम ही नहीं था। बहुत सी चीज़ें वे शुरू करते और फिर चुप बैठ का कुछ विचार करने लगते। उन चीज़ों का आरंभ ही इतना मोहक होता कि, मैं पूरी चीज़ लिखने के लिये अधीर हो उठता। ख़ां साहब बहुत सी बार याद करने का प्रयत्न करते; परंतु, अन्त में उसे छोड़ देते। मैं फिर भी, उनके पीछे जोंक की तरह लगा रहता।

एक दिन वे बड़ी सुबह ही मेरे घर आये और कहने लगे, "मेरा एक दोस्त लाहौर से आया है। उसे सब रागों के नाम याद हैं और जो मैं भूल गया हूं, वे चीज़ें भी उसे आती हैं। इसलिये मैं उससे एक बार फिर सुनकर, वे सब तुम्हें बता दूंगा।" इसके पश्चात ख़ां साहब आठ-दिन तक न आये। 'ईद' का त्यौहार निकट आ गया था। वे एक दिन सुबह मेरे पास आये और कहने लगे, "मैं आज शाम को अपने उस लाहौर वाले दोस्त को लेकर तुम्हारे पास आऊंगा, इसलिये तुम घर पर ही रहना।" पूर्व-निश्चितानुसार वे दोनों शाम को आये। 'ईद' के कारण दोनों ही रंग में थे। ख़ां साहब ने बातों ही बातों में एक चीज़ शुरू की और अपने मित्र से कहने लगे, "यह चीज़ किसी के नसीब में भी नहीं है।" उस मित्र को क्रोध आ गया। वह नशे में तो था ही; उसने उस चीज़ का जोड़ शुरू कर दिया। ख़ां साहब ने फिर 'यह भी सुनो' कह कर दूसरी चीज़ शुरू की। उस गवैये ने उस चीज़ की जोड़ की चीज़ गाकर एक नई चीज़ शुरू कर दी। ये सवाल-जवाब कोई १॥ घंटे तक चलता रहा। मैं बैठा-बैठा मुझे न आने वाली चीज़ों के अक्षर लिखता रहा। अन्त में दोनों ने एक दूसरे की प्रशंसा की और लिपट कर एक-दूसरे से खूब गले मिले। फिर, वे दोनों चलते बने।

दूसरे दिन ख़ां साहब सबेरे ही आये और कहने लगे, "मैं आठ-दिन से इस गवैये के पीछे पड़ा रहा था; लेकिन उसने कोई दाल न गलने दी। 'अमकी चीज़ गाकर बताओ' जब भी मैं कहता कि, वह बहाना कर देता कि, याद नहीं है। कल वह ख़ूब पीये हुए था, इसलिये मैं उसे चिढ़ा रहा था। बस, वह सब बातें भूल कर, जो मुझे चाहिये थीं, वे चीज़ें गा-गाकर वह बताने लगा। अब मुझे भी उनके शब्द याद हो गये हैं। तुम सीखलो।"

ख़ां साहब का घराना:—

ख़ां साहब को, अपने पिता. ख़ां सा: अमीर ख़ां से शिक्षा मिली। अमीर ख़ां सा: बन्ने ख़ां सा: के शिष्य व चचेरे भाई थे। यह घराना पुश्तैनी गवैयों का होने के कारण बन्ने ख़ां सा: तक के ज़माने के सब लोग ध्रुपद-धमार ही गाते थे। बन्ने ख़ां सा: के पिता व चचा, लखनऊ के वाजिद अली शाह के दरबारी गायक थे। लखनऊ में एक बार बन्ने ख़ां सा: ने हद्दू-हस्सू ख़ां का गाना सुना और उनके पीछे-पीछे ही वे ख़्याल सीखने के लिये उनके पास ग्वालियर गये। बन्ने ख़ां तबीयत के अच्छे, गोरे, सुस्वरूप व होशियार थे। हस्सू ख़ां उनकी होशियारी पर खुश हो गये और उनके कोई पुत्र न होने के कारण उन्होंने बन्ने ख़ां को ही गोद लेने का विचार किया। किन्तु, फिर उनका पुत्र हो जाने पर भी, उनका विश्वास था कि, बन्ने ख़ां के पदार्पण से ही वह शुभ-घड़ी आई थी; उसलिये बन्ने ख़ां को श्रेष्ठ-शिक्षा दी और उनका विवाह भी कर दिया। ग्वालियर के लोग ये सब बातें बन्ने ख़ां सा: के विषय में कहते हैं। बाबा सिंधी ख़ां का कहना कुछ भिन्न है, वह इस प्रकार है:—

"लखनऊ में हद्दू-हस्सू ख़ां का गाना सुनकर बन्ने ख़ां ग्वालियर में आये। हद्दू-हस्सू ख़ां सा: के घर पर ही खाने-पीने और दूसरे शागिर्दों के साथ वे रहने लगे। कई बरस तक किसी ने भी

उनकी तरफ़ खास ध्यान नहीं दिया। एक दिन, रोज़ की तरह हद्दू—हस्सू खां अपनी बैल गाड़ी में बैठ कर तानसेन के उर्स पर गये थे। वे दिन गर्मी के थे। गर्मी के मारे गाड़ी का एक बैल वहीं मर गया। जब उर्स में गाना–बजाना खत्म कर के खां साहब वापस घर चलने को तैयार हुए, तो ज्ञात हुआ कि, एक बैल मर गया था। बन्ने खां सामने ही खड़े थे। हस्सू खां सा: ने उनसे कहा कि, वह गांव में जाकर एक दूसरा बैल ले आवे। इस पर बन्ने खां ने खां साहब से हाथ जोड़ कर कहा, "साहब, मैं आपके घर का पाला हुआ बैल जो यहां खड़ा हूँ, फिर दूसरे बैल की क्या ज़रूरत है?" हस्सू खां ने भी अपने इस शागिर्द की जाँच करनी चाही। गाड़ी जोती गई; एक तरफ़ बन्ने खां और दूसरी तरफ़ एक बैल। बन्ने खां ने कहे मुताबिक़ (अनुसार) दो मील तक गाड़ी खींची। बस, इस बात से हस्सू खां सा: इस पर बहुत खुश हुए और दूसरे ही दिन से उन्होंने उसे मन लगा कर सिखाना शुरू कर दिया। थोड़े ही बरस में बन्ने खां बिल्कुल तैयार हो गये और सारे पंजाब में माने जाने लगे। पंजाब के कई घरानों के लोग बन्ने खां के पास ख्याल सीखने के लिये आने लगे और वे अपने गुरु को 'खां साहब बन्ने खां' के नाम से पुकारते थे। इसके बाद बन्ने खां ने दक्षिण हैद्राबाद में ३०० रु. मासिक पर दरबार-गवैये की नौकरी करली और वहीं वे अखीर तक रहे।"

अमीर खाँ:—

बन्ने खां ने अपने चचेरे–भाई अमीर खां को गंडा बांध कर अपना शिष्य बना लेने के पश्चात्, बड़े प्रेम से सारी विद्या सिखाई। अत: अमीर खां भी बड़े ही भरतीदार गवैये हुए और बन्ने खां की उनसे विशेष प्रेम होने के कारण वे सदैव बन्ने खां के ही साथ रहते थे।

एक बार जब पं. बालकृष्ण बुआ के शिष्य, पं. गुंडुबुआ हैद्राबाद गये थे, तो वहाँ अमीर खां से उनकी भेंट हुई। पं. गुंडुबुआ ने उनसे कहा था कि, ग्वालियर घराने के पं. बालकृष्ण बुआ, दक्षिण-भारत ही में, मिरज नामक संस्थान में रहते हैं अत: कभी उस ओर जाने का मौक़ा आये, तो मिरज ज़रूर आयें। १८९०–९१ के लगभग अमीर खां मिरज में आये थे, तथा वहाँ कोई छ: महिने ठहरे थे। पं. बालकृष्णबुआ ने अपने शिष्यों से अमीर खां सा: के पास जाकर चीज़ें सीखने के लिये कह रखा था। 'जौनपुरी' की 'सजन ठांरे लागी,' 'गांधारी' की 'ऐसो कौन करे;' ये व अन्य १५–२० चीज़ें हमारे घराने में अमीर खां साहब के पास से ही आई हैं। पं. श्रीकृष्णजी हिर्लेकर ने यह बात मुझसे कही थी; परन्तु इसकी पुष्टि एक और बात से होती है। पं. बाळकृष्ण बुआ के शिष्य, पं. अनंत मनोहर जब एक बार मेरे घर आये थे उसी समय सिंधी खां भी वहां आगये। दोनों का परिचय कराते समय मैंने पं. अनंत बुआ से कहा, "ये अमीर खां सा: के पुत्र सिंधी खां हैं।" मिरज में जिन अमीर खां को देखा था, उनके ये पुत्र, यह ज्ञात होते ही उन्होंने कहा, "खां साहब मैंने आपके पिताजी से १५–२० चीज़ें सीखीं हैं।"

बन्ने खां की मृत्यु के पश्चात् अमीर खां उसी नौकरी पर नियुक्त होने वाले थे कि, इतने ही में सिंध रहने वाली बन्नेखां की पत्नी ने अपने लड़के को सिखाने के लिये इन्हें पत्र लिख कर बुला भेजा। तबसे अमीर खां सिन्ध में ही रहने लगे। सेठ विशनदास नामक सिंध के प्रख्यात व्यापारी के पास वे गवैये की भांति रहने लगे।

अमीर खां के कुल ४ पुत्र हुए। उनके नाम—प्यार खां, मुहम्मद खां, सिंधी खां, व मिश्री खां, थे। घर में कोई भी पढ़ा हुआ न होने के कारण, अमीर खां ने प्यार खां को गाना न सिखाकर पाठ–शाला में शिक्षा दिलाना निश्चय कर लिया। प्यार खां जन्म से ही हुशियार होने के कारण, मदर्से में उनकी अच्छी प्रगति होने लगी। इस घराने का पहिला लड़का ही पढने वाला देख सब लोग आश्चर्य करने लगे। एक दिन प्यार खां गांव में हो रही एक महफिल में गाना सुनने जा बैठा। उसकी ही उम्र के उसके एक चचेरे भाई के गाने की वाह–वाह हो रही थी। वहां बैठे एक गवैये का ध्यान प्यार खां की ओर गया और वह उसकी ओर संकेत करके कुचेष्टा पूर्वक कहने लगा, "ज़रा इस लड़के का गाना सुनिये, नहीं तो, वो उधर एक गवैया का ही बेटा बैठा है, जिसे अभी तक 'आ' भी करते नहीं आता।" प्यार खां को यह बात तीर की तरह चुभी और उसने छ: महिने के अन्दर ही अपने इस चचेरे भाई का मुक़ाबला करने की ठानली। इधर घर में नित्य छोटे भाई का शिक्षण होता ही था; अत: प्यार खां के कानों पर अनेकों चीज़ें रँग चुकी थीं। प्यार खां शाला के बहाने से रोज़ घर से चल तो देता; परन्तु गांव के बाहर एकांत में पहुंचकर गाने की महनत करता। कुछ दिनों बाद यह बात अमीर खां को मालूम हुई और उन्होंने प्यार खां को बुलाकर मदर्से न जाने का कारण पूछा। प्यार खां ने सच्ची बात कह दी और यह भी कह दिया कि उसने इसके बाद से मदर्से न जाने का पक्का इरादा भी कर लिया है। फिर

उसने अपने पिता से गाना सिखाने के लिये प्रार्थना की और यदि वे न सिखायेंगे तो वह 'महरबान' (पंजाब के प्रख्यात गवैये) के पास जाकर सीखेगा, यह भी कह दिया। अन्त में हार कर, वे अन्य लड़कों के साथ प्यार खां को गाना सिखाने लगे।

उस समय अलीबख्श व फ़तह अली की तैयारी की वाह–वाह हो रही थी। तान बाज़ी के गाने विशेष लोक प्रिय होते देख, अमीर खां ने प्यार खां को वैसे ही गाने सिखाये और सफल प्रयास से प्यार खां खूब तैयार हो गया। स्वयं फ़तह अली खां ने उसका गाना सुनकर उसकी पीठ ठोक कर शाबाशी दी थी। प्यार खां को उस समय तक पूर्णतः ग्वालियर की ही गायकी का अभिमान था। उन्होंने फ़तह अली का गाना सुना; परन्तु उसमें कुछ विशेषता न दिखी। फिर जब अली बख्श शिकारपुर आये, तो प्यार खां का गाना सुनकर वे खुश हुए और उन्होंने प्यार खां की हुशियारी देखकर, तत्काल यह ठहरा लिया कि किसी भी तरह प्यार खां उनका गाना न सुन पाये। उन्हें डर था कि, वह उनका गाना सुनकर गायकी चुरा न ले। किसी श्रीमंत गृहस्थ के घर अलीबख्श का गाना होने वाला था। बस, अलीबख्श ने यह शर्त ठहराली थी कि, उनके गाने के समय प्यार खां को न आने दिया जाय। लेकिन वे सज्जन प्यार खां को बहुत चाहते थे, अतः उन्होंने गाना शुरू होने से पहिले ही प्यार खां को चुपचाप नीचे गर्दन करके बैठने का आदेश देकर, एक कोने में बैठा दिया। प्यार खां के छः फुट ऊंचा होते हुए भी, खां सा: अलीबख्श को यह ज्ञात न हो पाया कि, प्यार खां बैठक में ही उपस्थित था। नितांत खां साहब ने निःशंक होकर गाना आरंभ कर दिया और उन्होंने बहुत अच्छा गाया। बस, इस रंगदार महफ़िल में भला प्यार खां कैसे चुप बैठता? एक सुन्दर सी तान पर, उसने वहीं से ज़ोर से वाह–वाह करना शुरू कर दिया। उसी क्षण अली बख्श को भी पता लग गया कि, प्यार खां महफ़िल में बैठा हुआ है। थोड़ी ही देर में तनकर बैठा हुआ सबमें ऊंचा प्यार खां उन्हें दिखाई पड़ गया। गाना खत्म होते ही खां साहब उठकर चल दिये; परन्तु गाते समय जो अपना कंठा उन्होंने उतार कर नीचे रख दिया था, वह वहीं रखा हुआ भूल गये। प्यार खां को वह दिखाई दे गया और उसने तुरन्त वह लेजाकर खां साहब को सौंप दिया। इस पर खां साहब उनकी इच्छा के विरुद्ध प्यार खां की उपस्थिति के विषय में क्रोध को भूल गये और उसकी प्रशंसा करने लगे।

प्यार खां इस दिन तक किसी के भी संगीत को न मानता था; परन्तु उस दिन तो उसे अलीबख्श सा: का गाना उसे इतना पसंद आया कि, उसने उनके ही पास जाकर सीखने का निश्चय कर लिया। वह यह जानता था कि, अमीर खां सा: को यह बात अच्छी न लगेगी। बस, उसने अपने एक गाँव [पंजाब में] हो आने के बहाने से घर छोड़ दिया और सीधा टोंक [एक राज्य] में अलीबख्श सा: के पास जा पहुँचा। उसने खां साहब से गंडा-बंध शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। अलीबख्श ने कहा, "तेरे घराने में इतनी विद्या है और तेरे पिता इतने भरती दार गवैये हैं, फिर तेरे सीखने जैसा मेरे पास कुछ और है भी क्या? तू अपने घर वापस लौट जा।" परन्तु उसका दृढ़ निश्चय देख कर उन्होंने प्यार खाँ के गंडा बाँध दिया।

टोंक के नवाब [इब्राहीम]:—

अलिया–फत्तू ये दो भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के नाम हैं। सर्व-साधारण का मत है कि, ये दोनों सगे भाई थे; किन्तु सिंधी खां सा: कहते हैं कि, यह बात सच्ची नहीं है। वे साथ ही सीखे, तथा सदा जोड़ी से गाया भी करते थे। फ़तहअली पटियाला में नौकर थे और अलीबख्श टोंक में। 'मिरच खाँ' नामक प्रसिद्ध सारंगी वादनकार की एक महफ़िल हुई। मिरच खां सारंगी इतनी अच्छी बजाते थे कि, वे प्रत्येक गवैये को आवाहन देते थे। एक महफ़िल में जब अलीबख्श ने मिरच खां को परास्त किया, तब इन्हें 'जर्नल' की पदवी मिली। तदनुसार फतह अली को 'कर्नल' कहते थे। टोंक के नवाब साहब (इब्राहीम) को गाने से बड़ा प्रेम था। उन्हें काव्य का भी शौक था। वे चीज़ों के शब्द लिखते और अलीबख्श उन्हीं शब्दों को रागदारी में बांधते। ऐसी सुन्दर चीजें प्रचलित हैं। मालकौंस राग की 'सुन्दर बदन' नामक चीज के शब्द नवाब इब्राहीम के ही हैं और स्वर–रचना अली बख्श सा: की। इस चीज के अंतरे में 'इब्राहीम' शब्द का प्रयोग किया गया है। सिंधी खां 'इब्राहीम' की लिखी बहुत सी चीज़ें गाते हैं। इसी अंक में 'इब्राहीम' की एक जौनपुरी की चीज नोटेशन सहित दी हुई है। इसकी स्वर–रचना अली बख्श सा: की ही है। 'सा सुन्दर बदन' नामक मालकौंस की चीज कै. पं. भास्कर बुआ बखले ने महाराष्ट्र में बड़ी लोक–प्रिय की थी।

प्यार खां से सुनी हुई, खां साहब अली बख्श के बारे में बहुत

सी बातें सिंधी ख़ां सुनाते हैं। उनमें से एक इस प्रकार है:— अली बख़्श के शिष्यों में बहुत से पंजाब से आये हुए थे। वे सब तरुण, हृष्ट-पुष्ट, गौरवर्ण और सुस्वरूप थे। ख़ां सा: को डर था कि, गांव की गायिकायें उन्हें भ्रष्ट कर देंगी, अत: वे उन सब शिष्यों को कुरूप बनाकर रखते थे। नित्य गेहूँ की बनी रोटियाँ खाने वाले इन शिष्यों को वे बाजरे की रोटी व बहुत ही अधिक मिर्चों वाला मांस पकवा कर खाने को देते थे। थोड़े ही दिनों में पेट के विकार के कारण वे बीमार जैसे होकर दुबले-पतले हो जाते थे। फिर नाई को बुलाकर, उनके (सिर, मुँह व भौंओं) सब बाल साफ़ करवा देते, जिससे वे शिष्य बड़े ही कुरूप दिखने लगते थे। उनकी कल्पना यह थी कि, ऐसी बुरी शक्ल वाले लोगों पर कोई भी स्त्री प्रेम-कटाक्ष नहीं करेगी। एक बार इसी वेष में प्यार ख़ां अपने गाँव में आकर अपने ही घर में ज्योंही घुसने लगे कि, उनकी स्त्री कोई और दूसरा ही 'पर-पुरुष' समझ कर चिल्लाती हुई, घर के बाहर आ खड़ी हुई। इससे बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हो गये और उन्होंने बड़ी ग़ौर से देखने पर ही उन्हें पहचान पाया।

अमीर ख़ां की मृत्यु :—

अमीर ख़ा को यह पता भी न था कि, उनका बेटा किसी दूसरे घराने में गाना सीख रहा है। छः महिने बाद जब प्यार ख़ां वापस आये, तब थोड़े दिन बाद उन्हें यह बात मालूम हुई। वे क्रोध के मारे लाल हो गये। उन्होंने यह सोचा कि उनके ही बेटे ने संसार में उनका मुँह काला कर दिया। वे प्यार ख़ां को ही क्या, उसके सामने दूसरे लड़कों को भी न सिखाते थे। एक दिन अपनी सारी धन-सम्पत्ति लेकर वे पंजाब के 'जंगली निशेरा' नामक स्थान के लिये चल दिये। उन्होंने प्यार ख़ां से कहा, "तू अब सारे कुटुम्ब को सम्भाल।" वे अकेले ही सब घर—बार को छोड़ कर अपने गाँव चले गये, तथा वहाँ ३-४ दिन में उनकी मृत्यु हो गई। सिंधी ख़ां साहब कहते हैं कि, यह समय कोई १९०९-१० का होगा।

प्यार ख़ाँ :—

अमीर ख़ां की मृत्यु के पश्चात्, अपने बड़े भाई प्यार ख़ां के साथ ही सिंधी ख़ां सा: रहने लगे। दोनों, सेठ विशनदास नामक व्यापारी के यहाँ 'मौंजू' में नौकर थे। कुछ दिनों में दोनों ने उकता कर नौकरी छोड़ दी और 'काबुल' चले गये। अफ़ग़ानिस्तान की राजधानी काबुल में इनके पहिले भी कुछ गवैये वग़ैरह गये थे; लेकिन वे सारंगी वाले इत्यादि ही थे। वे सारंगी बजाकर गाते थे। जब प्यार ख़ां ने तम्बूरे के साथ गाना शुरू किया तो लोगों ने बड़ा आश्चर्य सा प्रकट किया। परन्तु, शीघ्र ही वहाँ के लोगों में इस तरह के गाने का शौक़ पैदा हुआ और प्यार ख़ां के वहां बहुत से शिष्य भी बन गये। ये दोनों भाई एक वर्ष तक काबुल में रह कर, फिर कराची लौट आये। इन दोनों भाइयों की आपस में बनती नहीं थी, अतः सिंधी ख़ां साहब अलग रहने लगे। सेठ विशनदास जब भी कराची में होते, तो सिंधी ख़ां सा: उनके ही पास रहते थे। सेठ विशनदास, एक उच्च-कवि थे। वे वैराग्य पर सुन्दर कवितायें लिखते थे और उनके पास रहने वाले गवैये उन रचनाओं को रागदारी में गाकर उन्हें सुनाते थे। सिंधी ख़ा की ईश्वर-भक्ति की ओर बचपन से ही रुचि थी; परन्तु विशनदास जी के वैराग्य-पूर्ण काव्य का और भी असर हुआ। उन्होंने फ़क़ीरों की तरह कफ़नी पहनना आरंभ कर दिया। तीन वर्ष तक उन्होंने मांस-भक्षण भी छोड़ दिया था। एक दिन वे परदेश जाने के लिये, सेठ विशनदास के साथ कराची स्टेशन पर गये। उस समय १९१७-१८ की पहिली लड़ाई चल रही थी। सेठ विशनदास तो गेट में से बाहर चले गये; किन्तु सिंधी ख़ां सा: को (जैसा पूरा गोरा फ़क़ीर) कोई वेष बदले हुए जर्मन-जासूस समझ कर गुप्त पुलिस ने पकड़ लिया। सेठ विशनदास ने उलट कर जो देखा, तो सिंधी ख़ां सा: का कोई पता नहीं; अत: वे फिर स्टेशन पर लौट आये और सिंधी ख़ां सा: को क़ैद किया हुआ पाया। सेठ विशनदास जी बड़े प्रख्यात थे। उनकी ज़मानत पर सिंधी ख़ां सा: छुट गये।

ख़ां सा: के भाई, प्यार ख़ां ने सिंध व पंजाब में अच्छा नाम कमाया और मकान बनवाकर लाहौर में रहने लगे। उन्होंने अपनी लड़की ख़ां साहब अलीबख़्श के लड़के अख़्तर हुसैन को ब्याही थी, जिससे इन दोनों घरानों का आपसी सम्बंध हो गया है। दिल्ली और लाहौर रेडियो पर गाने वाले 'उम्मेद अली' प्यार ख़ां के बेटे थे।

सिंधी ख़ाँ का स्वभाव और उनकी गायकी:—

१९१९ में वे बम्बई देखने के लिये आये। उन्हें यह शहर पसंद आया और वे कुछ सीख भी सके। उस समय के, यहां वाले कुछ मुसलमान गवैयों से ये मिले। सिंधी ख़ां सा: का स्वभाव तेज़ था और उन्हें अच्छी विद्या आने के कारण, वे किसी से भी नहीं डरते थे। बम्बई में उनका व्यवस्थित रूप से बसना, यहां के पुराने मुसलमान गवैये सहन न कर सके और उन्हें 'एक पागल फ़क़ीर' बता कर सारे बम्बई में उनके विरुद्ध एक असत्य धारणा लोगों में पैदा कर दी। तभी से उस पक्ष के लोग उन्हें

'पागल' समझने लगे। इससे लोगों का ध्यान उनके गायन की ओर से हट गया और वे संकट में पड़ गये। उन्हें आश्चर्य होता था कि, उनके पास इतनी विद्या होते हुए भी, उनकी कोई विशेष इज्जत नहीं और संसार निपट गधे एवं ढोंग–धतूरा करने वालों की ही कद्र करता है। इस ग़म को ग़लत करने के लिये ही उन्होंने मदिरा की शरण ली, जिसने उन्हें पूर्णतया, प्रायः सदा के लिये अपना बना लिया। अन्त में, उनकी एक शिष्या 'करम जान' इन्हें अपने पास ले आई और वहीं आप आज तक उन्हीं की देख–रेख में रहते हैं।

सिंधी ख़ाँ साहब का स्वभाव गर्म होने के कारण, वे जल्दी ही नाराज़ हो बैठते हैं। उन्हें झूठी प्रशंसा अच्छी न लगने के कारण, यदि कोई गाना पसंद नहीं आता, तो वे गायक के सामने ही, मुँह पर अपना वैसा मत व्यक्त करके चल देते हैं।

किसी समय बम्बई में एक बन्ने ख़ां नाम के सारंगिये रहते थे। उन्होंने यहाँ के रेडियो–केन्द्र पर २–३ वर्ष नौकरी भी की। दो वर्ष पहिले मैं उनसे इलाहाबाद में मिला था। दो कलाकार इकट्ठे हुए कि, चीज़ों का गुनगुमाना शुरू हो जाता है। हम दोनों भी खाना–पीना समाप्त करके, बैठे हुए गप्पें मार रहे थे। उसने ५-७ चीज़ें गुनगुना कर दिखाई, तब मैंने भी सिंधी ख़ाँ साः से सीखी चीज़ें गुनगुनाना शुरू कर दिया। पाँच मिनिट में ही बन्ने ख़ाँ की आँखों में पानी भर आया और झट मेरे हाथ थाम कर वे कहने लगे, "देवधर साः ये तो सिंधी ख़ाँ बोल रहे हैं।" मैंने स्वीकार किया कि, वे चीजें मुझे सिंधी ख़ाँ साः से ही मिली हैं। वे आँसू बहाते हुए कहने लगे, "देवधर साः आप भाग्यवान हैं, इसीलिये ख़ाँ साहब की गायकी का कण-कण आपको मिला है। मैं जब बम्बई में था, तो दो वर्ष तक मैंने उनकी मिन्नत की और सिखाने के लिये कहा। मैंने उनकी सेवा की, कपड़े-लत्ते व यथासंभव आर्थिक–सहाय्य भी की। जब जी में आता, तो मुझे चीज़ों के शब्द लिखवा देते थे; किन्तु गायकी के विषय में कुछ भी न बताया। मैं बम्बई चलता हूँ और आपका गंडा बाँध लेता हूँ। क्या आप मुझे सिखायेंगे?"

६० वर्षीय, इस वृद्ध के इन उद्‌गारों को सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे प्रश्न किया, "आपको ख़ाँ साः की गायकी में ऐसी कौनसी बात दिखाई देती है कि, आप उस पर बिल्कुल मुग्ध हो गये हैं? आपको स्वयं सैकड़ों चीजें आती हैं, फिर आपको दूसरी और चीज़ों की आवश्यकता क्यों है?" इस पर बन्ने ख़ाँ ने उत्तर दिया, "ख़ाँ साः मैदानी गवैये नहीं हैं। वे तानबाज़ी नहीं करते। यह मैं भी मानता हूँ, लेकिन चीज़ भरने का उन जैसा ढंग, किसी में नहीं है। उनका वह लयकारी का ज़ोर कण भरने का ढंग, बोल पकड़कर सम पर आने का तरीक़ा और चीज़ कहते समय शब्दों के मुताबिक़ स्वर–रचना, इत्यादि उनके अनोखे गुणों पर ही मैं मुग्ध हो गया हूँ। मुझे उनकी केवल चीज़ें नहीं चाहिये; बल्कि उनका चीज़ भरने का ढंग, व उनकी लयकारी की झोंक मुझे चाहिये।"

ख़ाँ साहब ने बम्बई में कभी भी महफ़िलों में नहीं गाया। वे सिंध में गाते थे। कोई भी तय्यार गवैया क्यों न गा जाय; किन्तु ख़ां साहब ने एक बार खींच वाली चीज भर कर ज्योंही आलाप लेना शुरू किया कि, महफ़िल बस उन्हीं की वाह–वाह कर उठती। यह बात उन लोगों ने कही है, जिन्होंने उनका गाना सुना है। कराची के मुबारक अली साः आज तक इस घराने को अपना गुरु–घराना मानते हैं।

प्यार ख़ाँ साः के साथ रहने से, आपको 'अली बख़्श' साः के घराने की भी बहुत सी चीज़ें आती हैं, किन्तु उनकी मूल ग्वालियर की गायकी पर इस गायकी का भी प्रभाव पड़ने के कारण, वह एक विशेष प्रकार की बन गई है। वे कहते हैं कि उनके पिता ने उन्हें सैकड़ों चीजें सिखाईं, परन्तु आड़ राग की चीज़ों के नाम तक न बताये। " उन्हें जब याद आजाती, तो मुझे चीज़ सिखाने लगते; किन्तु राग का नाम पूछते ही कह उठते, "राग का नाम एक तो मेरे पिता को मालूम था और अब ईश्वर को है।" कुछ रागों के नाम उन्हें अवश्य पूरी तरह से याद हैं; किन्तु वे उन्हें अमीर ख़ां साः ने नहीं बताये थे। उन्होंने उनका पता किसी और ढंग से ही लगाया था। अमीर ख़ां स्वभाव से भोले थे। जब अन्य गवैये उन्हें चिढ़ाते थे, उस समय अमुक राग की चीज़ उन्हें आती है क्या? यह प्रश्न वे प्रतिस्पर्धी से करते थे। इस वाद विवाद में सिंधी ख़ां साः को नाम ज्ञात हो जाते।

पूना के श्रीमंत आबासाहब मजुमदार ने अपने संग्रह में से प्राचीन चीज़ों के शब्दों वाली पुस्तकें व प्राचीन गवैयों की हस्त लिखित रचनायें मुझे दी हैं। जब उनमें की चीज़ों की एक-एक पंक्ति मैं ख़ाँ साहब को पढ़कर सुनाता हूँ, तो अपनी पहचानी हुई चीज़ सुनकर वे चीज़ के शब्द मुझसे पूछते हैं और थोड़ी ही देर में उन्हें याद आते ही मैं वह लिख लेता हूँ।

प्रसिद्ध गवैये ख़ां साः ग़ुलाम अली, बचपन में सिंधी ख़ां साः के पास ही गाना सीखते थे। आज तक वे ख़ां साहब को गुरु

(शेष पृष्ठ १२ पर)

[पृष्ठ २८ का शेष]

कुछ परिचय दिया। किन्तु, यदि उसके आधार पर ही मैं उन्हें लेने स्टेशन पर जाता, तो बस पूरी फ़जीती होती, क्योंकि मंजी खां तो स्टेशन पर जब उतरे, तो एकदम शानदार पाश्चात्य पोशाक में। किसी पुलिस ऑफ़िसर को शोभा देने वाली तन्दुरुस्ती व श्यामल मूर्ति मुझे विशेष सी प्रतीत हुई। इतने ही में उन्होंने सेकिन्ड-क्लास में से तंबूरे बाहर निकाले कि, मुझे विश्वास हो गया। शुद्ध मुहावरेदार मराठी भाषा में मंजी खां को बात करते देख कर, तो मुझे बहुत आश्चर्य तथा आनंद हुआ। अय्यर नामक उनका मद्रासी शिष्य साथ में था। सफ़र के कारण वे थक गये थे। अतः विश्रांति के लिये मैं उन्हें निवास-स्थान की ओर ले गया।

मंजी खाँ के दिलदार व हँस-मुख स्वभाव तथा उनकी उदारता पूर्वक बात-चीत से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। अपनी-अपनी कला में निपुण, वहाँ एकत्रित समस्त कलावंत मुझे स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं जैसे प्रतीत होने लगे। उनके आदर-सत्कार में तनिक सी भी कसर न रहे; इसका मुझे सदा ध्यान रहता था, तथा मैं उनकी सेवा करना अपना सौभाग्य समझने लगा। सब कलावंत एक दूसरे से विचार-विनिमय करने लगे; परन्तु मंजी खाँ व रजब अली खाँ एक दूसरे से न मिले। दोनों को अपने-अपने गायन का गर्व था।

प्रि. रातांजनकर और मैंने, मिलकर सब कार्य-क्रम तैयार किया। आरंभ में उन्होंने मेरा व मॉरिस म्यूज़िक कॉलेज के श्री. भाऊराव जोशी का गायन रखा। तदनन्तर गायन-वादन तथा नृत्य इत्यादि का कार्यक्रम, योग्यतानुसार रखा। अन्तिम दिन मंजी खाँ व बाद में रजब अली खाँ यह क्रम था। छपे हुए कार्य-क्रम की प्रतियाँ सर्व कलावंतों को दी गईं।

मंजी खाँ ने मुझे बुला कर कहा; 'यह कैसा कार्य-क्रम तुमने ठहराया है ? रजब अली से पहिले मैं नहीं गाऊँगा।" प्रि. रातांजनकर को जब यह ज्ञात हुआ, तो उन्हें बड़ी अड़चन प्रतीत होने लगी। इधर जब रजब अली खां को यह मालूम हुआ, तो उन्होंने कहा; 'मंजी खां को मेरा संदेसा कह देना कि, मेरे पहिले तुमको गाना नहीं हो तो अपन दोनों साथ में बैठकर गायेंगे। मेरी गायकी में मूं (मुँह) डालना, नाम रखता है।"

मैं बड़े संकट में पड़ गया; किन्तु मैंने एक युक्ति लड़ाने का निश्चय किया। दोनों के पास जाकर, दोनों एक दूसरे से मिलने को उत्सुक हैं, यह कहा। मंजी खां के पास जाकर, उन्हें बताया कि रजब अली खाँ साहब उन्हें अच्छे गायक समझते हैं। वे उनके पिता के ज़माने के हैं, फिर उनकी इज्जत नहीं करना चाहिये क्या ?

मंजी खाँ बड़े समझदार मालूम हुए। उन्होंने मेरी योजना स्वीकार करली। अस्तु, हमारा कार्य-क्रम जैसा का तैसा ही रहा।

फिर दोनों से, कमरों में से वरांडे में आने के लिये कहा। मंजी खाँ को देखते ही रजब अली दोनों हाथ फैला कर उनके सामने गये और कहने लगे; " भाई, बहुत दिन में मुलाकात हुई। तुमको मैंने, कोल्हापुर में बहुत छोटा देखा था। बहुत अच्छा हुआ कि, तुम यहाँ आये। तुम्हारे वालिद [पिता] अल्लादिया खाँ का तुमने नाम रखा है। यह बहुत बड़ी बात है।"

इसके पश्चात् समस्त कार्य ठीक-ठीक, क्रमानुसार व उत्तम प्रकार का होकर परिषद-समारंभ समाप्त हुआ। खां साहब विलायत खाँ का गाना मंद व सुरेल था, तथा उसकी बड़ी तारीफ़ हुई। अब्दुल अज़ीज़ खाँ की ' विचित्र-वीणा ' में बड़ा ही आनंद आया।

इसके पश्चात् मंजी खां का गाना शुरू हुआ। हॉल खचाखच भरा हुआ था। समस्त प्रसिद्ध गवैये, अब्दुल अज़ीज़, विलायत हुसैन, रजब अली, श्री. रातांजनकर, इत्यादि लोग, सब आगे की पंक्ति में बैठे थे। बिहागड़ा की प्रसिद्ध चीज़ ' प्यारी पग होले-होले धरिये, ' शुरू हुई। खाँ साहब ने अस्थाई व अन्तरा मंद लय त्रिताल में शुरू किया, तथा समस्त चीज़ अत्यन्त सुरेल व परिणाम कारक रही। अल्लादिया खाँ की गायकी की सारी विशेषता मंजी खाँ के गाने में प्रकट प्रदर्शित हो रही थी। सारे आलाप व सारी तानें व्यवस्थित। लय को कहीं भी धक्के न लगते थे। प्रत्येक आवर्तन में वे आलाप की बढ़त करके जितनी बार सम पर आते उतनी ही बार मानो उस राग में निराली ही अस्थाई होती हो। कहीं भी शब्दों की खींच-तान नहीं। बोल-तान भी दुगन में आवर्तन समाप्त करते। कटी हुई पतंग जैसे डगमगी हुई झोंके खाकर धीरे-धीरे ज़मीन की ओर आती है, उसी तरह वे सम पर आते। बोल-तान समाप्त होते ही तानांग आरंभ हुए। खाँ साहब ने एक बार भी सपाट तान नहीं भरी। प्रत्येक तान सर्प की भांति लहराती और अखण्ड निकलती थी। किसी भी तान की पुनरावृत्ति न होती थी। श्रोता मंत्र-मुग्ध

से हो गये। वाह-वाह देना समाप्त ही न होता था। मंजी खाँ के गाने में अल्लादिया खाँ व रहमत खाँ, इन दोनों की गायकी का चमत्कारिक मिश्रण था। गला निपट हलका एवं वेगवान, स्पष्ट दाने दार, सुरेल व लक्षण-युक्त था। ऐसा गाना मैंने पुनः कभी नहीं सुना। दुर्दैव-वश मंजी खाँ जैसों का तरुण-पीढ़ि में अभाव है। इतना जोरदार गाना होने के पश्चात् दूसरे गवैये का गाना जमना कठिन था। अतः रजब अली खाँ सा: का गाना आधे घंटे बाद, देर से करने का ही मैंने निश्चय किया और उन्हें चाय देने में जान-बूझ कर देर कर दी, तथा तंबूरे भी मिला कर नहीं रखे। ख़ां साहब नाराज़ होने लगे। मैंने वह चुप-चाप सहन किया। स्वभाविकतः लोग बाहर आने व अन्दर जाने लगे, तथा सहज ही एक छोटा सा 'इन्टरवल' सा हो गया। इसके बाद ख़ां साहब स्टेज पर आये। बस, लोग भी वापस आकर बैठ गये। मैं स्वयं तम्बूरा लेकर साथ के लिये बैठा। समस्त कलावंत उत्सुकता-पूर्वक सामने आकर बैठ गये।

ख़ां साहब ने मारू-बिहाग की 'रसिया हो ना' चीज़ शुरू की। गाने बैठने से पहिले, मैंने यह सूचना खाँ साहब को दी थी कि, 'आधे घंटे तक आप तानांग शुरू न करें;' परन्तु वे उल्टे मुझ पर बिगड़ पड़े, "अजी मुझे सब मालूम है।" मैंने फिर कहा, "मालूम हो या न हो, परन्तु मैं जो कह रहा हूँ, वह आपको मानना होगा।" इस पर मुझे उन्होंने प्रेम-पूर्वक आत्म-विश्वास से युक्त आश्वासन दिया। मुझे डर था कि, मंजी खाँ के इतने अप्रतिम तानांगों के पश्चात् किसी का भी गाना जमना कठिन था। इसके अतिरिक्त, ऐसे समय पर श्रोताओं के कानों को भी कुछ 'चैन' की आवश्यकता होती है। खाँ साहब ने १५ मिनिट तक सुन्दर अस्थाई शुरू रख कर उत्कृष्ट आलाप भी लिये। उच्च-कोटि के रसिकों की ओर से उचित वाह-वाह भी शुरू न हो पाई कि, तानांग आरंभ करके गले से मानो 'बेल्जियमकट' हीरो जैसे उत्कृष्ट पहलू बिखरने लगे, तथा मेरे आनंद की सीमा न रही। श्रोता तन्मय हो गये। गाना जम गया। खाँ साहब ने १॥ घंटे तक वहाँ राग गाया। साथी के लिये लखनऊ के सखाराम जी थे, जिससे अपूर्व रंग जमा। उस दिन खाँ साहब के तानांग अवर्णनीय हुए। ख़ां साहब की तानों का औघड़पन व पल्ला उतनी ही योग्यता-पूर्ण है। गायकी में तानांग एक अत्यन्त ही प्रभावशाली हिस्सा है। उसी से गायन में अधिक तेज़ चढ़ता है। कुछ संगीत-व्यासंगी तानों को कम महत्व देते हैं। किन्तु उसका कारण कुछ और है। तान के लिये गले में जो विशेष प्रकार के दाने की आवश्यकता होती है, वह कदाचित् उनमें नहीं होता, तथा वह बड़ा प्रयत्न करने पर भी साध्य नहीं हो पाता। बस ऐसे ही लोग उसे बाद में कम महत्व देने लगते हैं। ख़ां साहब की तान सुरेल व अत्यन्त चमत्कार-पूर्ण होकर भी, रंजक होती है। पिछली पीढ़ि में जो ख्याति-प्राप्त गायक हो गये हैं, उनमें रजब अली खाँ साहब जैसा विरला ही होगा।

गाना समाप्त होने पर, मंजी खाँ साहब स्वयं रजब अली के समक्ष गये, व कहने लगे, "मेरे वालिद ने कहा था कि, बेटा तू हिन्दुस्तान के सब गवैयों को सुन; लेकिन रजब अली ख़ां को ज़रूर सुनना। वाक़ई आप वैसे ही हैं।"

सब कलावंत तथा श्रोतागण प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये। ऐसी यह महफ़िल अत्यंत ही उत्कृष्ट सिद्ध हुई।

अपनी सुनी हुई महफ़िलों की 'स्मृति' रसिकों के समक्ष सादर प्रस्तुत करने का मेरा विचार है। उनके पुनर्प्रत्यय का आनंद बहु-मूल्य नहीं क्या?

XXX

मथुरा में दि. २१ अगस्त को पं. विष्णु दिगंबर जी पलुस्कर की पुण्य-तिथि बड़ी धूम-धाम से मनाई गई, जिसमें आग्रा के श्री. भगवत दास आचार्य, तथा मथुरा के बहुत से कलाकारों ने सहर्ष भाग लिया था।

[पृष्ठ १० का शेष]

मानते हैं और बड़े आदर पूर्वक 'बाबा सिंधी खां' के नाम से पुकारते हैं। जब वे बम्बई में आते हैं, तो उनसे चीज़ें भी सीखते हैं।

आज तक मैंने प्रसिद्ध व यशस्वी गवैयों का ही चरित्र लिखा है, तथा सबसे पहिले सिंधी खाँ सा: ही का चरित्र संक्षेप में मैं वाचकों के समक्ष एक स्पष्टीकरण के लिये रख रहा हूँ; क्योंकि आप एक ऐसे गायक हैं, जिन्हें भरपूर विद्या आते हुए भी अनभिज्ञ समाज की ओर से यश व उचित सन्मान न मिल सका। कुछ लोगों का कहना है कि, उन पर किसी शाप का प्रकोप है, अतः यश नहीं मिलता। फिर भी मेरा तो विश्वास है कि, कुछ थोड़े से ही गुणज्ञ व्यक्तियों को ज्ञात सिंधी खां सा: को ईश्वर ने, शाप भोगने के लिये ही गंधर्व-लोक से इस पृथ्वी पर भेजा है!! भले ही उनके भाग्य में शाप भोगना बदा हो, परन्तु वे गंधर्व अवश्य हैं!!!

कलाकारों के क़िस्से

हमारे वाचकों में से जिन महानुभावों को 'गवैयों व बजवैयों' के मनोरंजक क़िस्से ज्ञात हों, वे उन्हें लिखकर हमारे पास भेजने की कृपा करें। ये क़िस्से मनोरञ्जन, विनोद तथा बोध संबंधी और सच्चे हों। पसंद आने पर, वे समयानुकूल इस विभाग के अन्तर्गत छापे जायेंगे, तथा पुरस्कार–स्वरूप, ऐसे प्रकाशित क़िस्से भेजने वाले सज्जन को आगामी–मास का 'संगीत कला–विहार' का अंक निःशुल्क (मुफ्त) मिलेगा। नापसंद क़िस्से वापस मँगाने के लिये, प्रेषक 'डेढ़ आने' के पोस्ट टिकिट भेजें।

'संपादक'

कै. पं. बाबा दीक्षित :—

पिछले अंक में यह दिया जा चुका है कि, पं. बाबा दीक्षित ने बैठक अथवा महफ़िल में न गाने का वचन अपने गुरू ख़ां साहब हस्सू ख़ां को दिया था। वे अपने सम्बन्धियों व निकट–मित्रों के घर क्वचित प्रसंगों पर ही गाते थे। एक दिन एक मित्र के लग्न–मण्डप में गाने के लिये बैठना निश्चित किया। कुछ लोगों पर पं. बाबा दीक्षित को नियत–समय पर ले आने का कार्य सौंपा गया। वे चार–पाँच लोग दुपहर से ही उनके घर जा बैठे। सायंकाल के समय वे उनके आग्रह–वश कपड़े पहन कर अपने घर से लग्न–मण्डप में जाने के लिये निकले। उस लग्न–गृह के समीप ही मार्ग में एक देवालय था। बाबा बड़े ही देव–भक्त थे, अतः उन्हें देव–दर्शनों की इच्छा हुई। जो लोग साथ थे, उनसे उन्होंने कहा, "तुम आगे—आगे जाकर सब तैयारी करो, इतने ही में मैं दर्शन करके आता हूँ।" अस्तु, वे लोग तो आगे निकल गये बाबा और अकेले ही इधर दर्शनों के लिये रुक कर मन्दिर में गये। दर्शनों के पश्चात् देव–द्वार पर कुछ समय विश्राम करने के नियम के अनुसार वे मूर्ति के ठीक सामने ही बैठ गये। सहारे के लिये, हाथ में जो लकड़ी थी, उसे तम्बूरे की भाँति कन्धे पर टिका कर, उन्होंने सहज ही उस पर अपनी अंगुलियों से टिक्–टिक् शब्द निकालना आरंभ कर दिया। इस प्रकार से निकलने वाले नाद को स्वर समझ कर बाबा ने वहीं गाना आरंभ कर दिया, तथा उसी में वे इतने रंग गये कि, उन्हें दूसरी जगह आना था, यह वे बिल्कुल ही भूल गये।

लग्न–गृह के लोगों ने कुछ समय तो प्रतीक्षा की; किन्तु बाबा के न आने का कारण जानने के हेतु से वे भी उस देवालय में आ पहुँचे और बाबा को गायन में मद–मस्त पाया। अब उन्हें लग्न–गृह में गाने की याद कौन दिलाता? अतएव बिछात का सब सामान मन्दिर ही में ले आया गया, तथा समस्त श्रोतागणों को लग्न–मण्डप छोड़ कर देवालय में ही बाबा का गाना सुनने आना पड़ा।

प्रे. शरदचन्द्र जी आरोलकर (बम्बई)

ख़ां साहब मियांजानः—

सब जानते हैं कि, ख़ां साहब मियांजान एक अव्वल दर्जे के गवैये थे। वे बहुत समय तक बम्बई में रहे थे, तथा बम्बई के रसिक लोगों में उनका बड़ा सन्मान था। कै. पं. भातखंडे इस कलाकार के गाने पर बड़े प्रसन्न थे। उनका मत था कि, कितनी तो सुन्दर कला; किन्तु ऐसे व्यक्ति को शास्त्र का लेश–मात्र भी ज्ञान नहीं। ख़ां साहब को कोई भी व्यक्ति यदि शास्त्रीय बातें बताता, तो वे उत्तर देते थे। "शास्त्र–वास्त्र, सब कुछ मेरे गले में है। मेरा गाना सुनो तथा तब बताओ कि, मैं कहाँ गलती करता हूँ?" पं. भातखंडे जी ने एक गायन–व्यासंगी बाई को उनके पास गायन सीखने का प्रबंध किया। पं. भातखंडे की युक्ति यह थी कि, यदि इस बाई ने वादी, सम्वादी, आरोह, अवरोह, इत्यादिक से सम्बधी प्रश्न बार–बार ख़ां साहब से पूछना आरंभ किया, तो उन्हें अवश्य शास्त्र सीखने की इच्छा होगी, तथा वे उन (पं. भातखण्डे जी) से अवश्य पूछेंगे।

अस्तु, तालीम आरंभ हो गई। "इन दुर्जन लुगवा को," यह मुलतानी का ख्याल ख़ां साहब ने सिखाना आरंभ किया कि, वह बाई धीरे–धीरे ख़ां साहब से पूछने लगी, "ख़ां साहब इस चीज़ के आरोह–अवरोह, तथा थाट इत्यादि कुछ परिचय बताइये न।" ख़ां साहब बड़े शान्त–स्वभाव के थे। उन्होंने उत्तर दिया, "बाई, यह ख्याल पहिले आवाज़ पर जमने दो, फिर आरोही, अवरोही आप से आप समझ जाओगी।" आठ–दस दिन बीत गये। बाई ने नित्य वही फिर पूछना आरंभ कर दिया। एक दिन उसने पूछा

'खां साहब, इस राग के वादी-सम्वादी क्या हैं?" बस, उस दिन तो खां साहब चिढ़ गये और बोले, "वादी तेरे बाप और सम्वादी मैं। गले से तो ठीक-ठीक स्वर तक नहीं निकलता, कौए की तरह चिल्लाती रहती है और ऊपर से कहती है, वादी-सम्वादी बताओ।" इतना कह कर जो वे उठ कर चल दिये, तो फिर कभी खां साहब उसे सिखाने के लिये न आये।

प्रे. मोहनराव पालेकर (बम्बई)

***

उस्ताद आशिक़ अली :—

लाहौर के उस्ताद आशिक अली, खां प्रसिद्ध नामांकित गवैये आलिया फत्तू की जोड़ी के, ख़ां साहब फ़त्ते अली ख़ां के बेटे थे। जिस समय फत्ते अली सा: का शरीरान्त हुआ तो आप बहुत ही छोटे थे। उनका शिक्षण 'महरबान' के पास हुआ। आप बड़े लहरी स्वभाव के थे। पैसे मिलते कि रास्ते में यदि कोई फ़क़ीर अथवा गरजमन्द व्यक्ति मिल जाता, तो उसे दे डालते, तथा स्वयं फिर भूखे-कंगाल। ऐसे प्रसंग उनके आयुष्य में कितनी ही बार आये।

मैं एक बार दिल्ली-रेडियो पर गाने के लिये गया था। उसी दिन ग्वालियर के प्रसिद्ध सरोदिये ख़ां साहब हाफ़िज़ अली भी आये थे। ख़ां साहब आशिक़ अली भी टहलते-टहलते रेडिओ स्टेशन पर आ पहुँचे। मैंने व ख़ां साहब हाफ़िज़ अली ने इससे पहिले ख़ां साहब आशिक़ अली का गाना कभी भी नहीं सुना था, अत: हम दोनों ने ही उनसे प्रार्थना की। उन्होंने स्वीकार कर लिया, तथा रात को ८॥ से ९ तक इसके लिये अधिकारियों ने स्टुडिओ भी दे दिया। ख़ां साहब बड़े ही विद्वान् थे, अत: उन्होंने हमें 'हेम-कल्याण' राग सुनाया। वाह-वाह मिलते ही ख़ां साहब रंग में आगये। उनमें एक यह आदत थी कि, वे हर तान के साथ लगभग फुट भर आगे सरक आते थे। १५ मिनिट में ही ख़ां साहब आठ-दस फुट आगे सरक आये; किन्तु साथीदार अपनी जगहों पर ही बैठे रहे। यह देख कर, ख़ां साहब हाफ़िज़ अली ने कहा," साथीदारो, आप लोग भी ख़ां साहब के ही साथ-साथ आगे क्यों नहीं सरकते?" यह प्रश्न सुनकर सबको बड़ी हँसी आई; परन्तु ख़ां साहब तो अपने गाने में इतने मस्त हो गये थे कि, इस बात की ओर उनका ध्यान तक न गया। वे गाते ही रहे।

ख़ां साहब आशिक़ अली बड़े ही गुणी गायक थे, तथा समस्त गवैये उनका सम्मान करते थे। पांच-छ: महिने पहिले ही कराची में स्वर्ग-वासी होगये।

प्रे. बी. आर. देवधर (बंबई)

(४) दुश्मन से भी काम ले रहा हूँ :—

किसी बड़ी ग्रामोफ़ोन कम्पनी में एक ख़ां साहब गये। आप कितने बड़े गवैये थे, इत्यादि बातें कहने के पश्चात्, उन्होंने अपना गाना सुनने के लिये वहाँ के अधिकारियों से बहुत ही आग्रह किया। बड़ी शान के साथ उन्होंने तम्बूरे मिलाये; किन्तु एक तम्बूरे का पहिला तार 'निषाद' स्वर में, तो दूसरे का पञ्चम में मिलाये। मालकौंस राग आरंभ हुआ। गाना यथा-तथा ही था। कुछ देर पश्चात् सामने बैठे अधिकारियों की ओर बड़े गर्व से देखकर कहने लगे, "देखिये, मैं कितनी औघढ़ बात कर रहा हूँ। एक तम्बूरे का एक तार तीव्र निषाद में है, तो दूसरे का पंचम में। ये दोनों ही स्वर मालकौंस के शत्रु हैं; लेकिन मैं शत्रु तक से काम ले रहा हूँ।" ग्रामोफ़ोन कम्पनी के अधिकारी समझदार थे। ख़ां साहब यद्यपि शत्रु से काम ले रहे थे; तो भी कम्पनी की नीति गायन-कला के शत्रु से काम न लेने की होने कारण, उन्होंने उन ख़ां साहब का रिकॉर्ड तैयार नहीं किया।

(५) कुज-बुज करो :—

यह बम्बई-रेडिओ-केन्द्र का क़िस्सा है। एक हिन्दी न जानने वाला नाट्य-दिग्दर्शक नाटक के प्रयोग का दिग्दर्शन कर रहा था। वह नाटक मराठी में था। उसमें एक प्रसंग ऐसा था कि, पीछे शोर-गुल अथवा 'कुज-बुज' सुनाई दे रही है। उस समय वहाँ मराठी जानने वाले लोग न होने के कारण, यह कार्य सब उर्दू जानने वाले उन लोगों को सौंपा गया, जो वहाँ उपस्थित थे। अत: हिन्दुस्तानी अनाउन्सर व अन्य लोगों को बुलाकर उसने उनसे कहा, "हम जब ऐसा हाथ करेंगे तब तुम लोग 'कुज-बुज' करना।" उन हिन्दुस्तानी जानने वाले लोगों ने यह काम ठीक से करना स्वीकार कर लिया।

अस्तु, जिस स्टुडिओ में यह नाटक हो रहा था, वहाँ ये सब लोग व नाटक के नट इत्यादि, जा बैठे। उस ओर 'कन्ट्रोल रूम' इस कमरे से लगा हुआ ही होने के कारण, एक बड़े भग (छेद) में से ही दिग्दर्शक संकेतों द्वारा नाटक का दिग्दर्शन करता है। वह समय आते ही दिग्दर्शक ने निश्चित संकेत किया और अन्दर के उन चार-पांच लोगों ने 'कुज—बुज कुज-बुज,' ये शब्द एक ही स्वर में एक साथ करना आरंभ कर दिया। किन्तु दिग्दर्शक ने हाथ बाहर निकालकर उन्हें समझाने के लिये जब हाथ जल्दी-जल्दी हिलाया, तो इन लोगों ने उनका कुछ और ही अर्थ समझ, स्वर चढ़ाकर व लय बढ़ाकर, पुन: ज़ोर-ज़ोर से 'कुज-बुज' कहना शुरू कर दिया। नितान्त, दिग्दर्शक ने कोप में आकर 'माइक' बन्द कर दिया, तथा यह कुज-बुज समाप्त हो जाने पर ही नाटक फिर शुरू हुआ।

* सर्कस की नाड़ी बैंड–मास्टर के हाथ *

(मराठी–अनुवादक:— श्रीमती चंपावती देवधर, बम्बई)

'रीडर्स–डाइजेस्ट' के जुलाई सन् १९४८ के अंक में से Heartbeat of the Big Top लेख का निम्न अनुवाद इस आशय से दिया गया है कि, पाठक संगीत के अद्भुत–प्रभाव को समझ सकें और जो कलाकार तथा संगीत–प्रेमी हैं, वे इस कला की ऐसी बारिकियों का प्रसंगानुसार उपयोग करते समय विशेष ध्यान रखें। —सं. 'विहार'

" नाद रीझ तन देत मृग, नर धन हेत समेत। जे 'रहीम' पशु ते अधिक, रीझेहु कछु न देत ॥"

अमेरिका का 'सिंगलिंग–ब्रदर्स, बारनुम और बेली' एक नामी और बड़ा सर्कस है। उसके ४० वाद्यों के बैंड और उस बैंड के दिग्दर्शक मर्ल इवान्स पर ही, सर्कस के मानों प्राण निर्भर रहते हैं।

थोड़ी सी देर पहिले ही, १० बंगाली–वाघों का खेल समाप्त करके, उन्हें पिंजरे की ओर ले जाया जा रहा था। इतने ही में उनमें का सबसे बड़ा वाघ एक दूसरे बड़े वाघ पर झपट कर, उसकी गर्दन चबाने लगा। उसी क्षण संगीत–दिग्दर्शक इवान्स ने एक हाथ से लय दिखाते तथा दूसरे से अपना कॉरोनेट संभालते हुए, अपने बैंड को आज्ञा दी, " पिछली दो पक्तियाँ पुन: बजाओ, तथा 'नाइट्स' नामक गाना बजाने के लिये तैयार रहो।"

रिंग–मास्टर 'रुडॉल्फ मेथिस' के लड़ने वाले वाघों पर चाबुक चटखाते ही अन्य वाघ चिढ़ कर गुर्राने लगे और उनमें से एक तो उछल कर उस पर ही झपटा। दर्शकों में से भय के कारण एक चीत्कार सुनाई दिया। मेथिस ने तुरन्त पास ही रखा एक स्टूल उठाकर संरक्षणार्थ अपने सामने रख लिया। सभी वाघों के बिगड़ पड़ने के चिन्ह साक्षात् नज़र आने लगे। इसी समय, इवान्स ने आज्ञा दी, " नाइट्स बजाओ! " साथ ही स्वयं भी बजाना आरंभ कर दिया। पहिले के धीमे राग पर से एक दम द्रुत–लय के knights of the road, (नाइट्स आफ़ दि रोड्स), नामक उत्साही 'कूच–गीत' पर बैंड के पहुँचते ही दर्शकों के जी में जी आया, और सबने सुख की साँस ली। वाघ के पंजे से घायल मेथिस अपनी रक्त–युक्त भुजा को संभाले हुए, उन दोनों सबसे बड़े वाघों की लड़ता हुआ छोड़कर, शेष अन्य वाघों को पिंजरों की तरफ़ खदेड़ता हुआ दिखाई पड़ा। शिकार–खाने के सिखाने वाले लोगों ने बाहर ही से लोहे की छड़ें इत्यादि चुभोकर, उन लड़ते हुए शेरों को छुडाने का प्रयत्न किया और मेथिस ने भी उन्हें डराने के लिये हवा में अपनी पिस्तौल चलाई। इस पर वे एक–एक करके लंगड़ाते हुए फिर अपने–अपने पिंजरों की ओर चल पड़े। बैंड ने Happy days are here again' (हैपी डेज़ आर हीय अगेन) यह आनंद का गीत बजाना आरंभ कर दिया। अंदर से विदूषक नाचते–कूदते आये और दर्शकों ने तालियाँ बजा कर आनंद प्रदर्शित किया। इवान्स के संगीत–चातुर्य से ही वह भारी अनर्थ टल गया।

संगीत ही सर्कस का प्राण है। संगीत के बन्द होते ही सर्कस की समस्त गति–विगतियाँ बन्द हो जाती हैं। अपने जहाज पर खड़े हुए एक कप्तान की भाँति खड़ा रह कर मर्ल इवान्त संगीत–दिग्दर्शन करता है। सर्कस में सब काम करने वालों को कार्य–क्रम का आदि व अन्त उस के सन्गीत पर से ही समझ में आता है। ऊँचे झूले पर लोगों की फेंका–फेंकी की लय इवान्स का सन्गीत ही संभालता है। किसी प्रयोग के उत्कर्ष–कौशल–शिखर पर पहुँच चुकने का ज्ञान लोगों को ढ़ोल की धीरी गड़गड़ाहट से ही हो पाता है, जो दर्शकों के हृदयों में कम्प की एक लहर सी दौड़ा देती है।

इवान्स ने २९ वर्ष तक ४० वाद्यों वाले बैंड का, पृथ्वी के सबसे बड़े सर्कस में, नेतृत्व किया। इस अवधि में उसने लग–भग १३,००० खेलों में अपनी कला का प्रदर्शन किया, और उनमें से किसी भी प्रसंग पर वह क्षण भर के लिये भी कभी निश्चल नहीं बैठा। सन्गीत–दिग्दर्शन के साथ–साथ वह निरंतर लग–भग तीन

घन्टे तक बजाया भी करता है। भिन्न–भिन्न प्रयोगों पर प्रदर्शित करने के लिये उसके पास चुने हुए लग-भग २२६ संकेत–शब्द थे, जिनसे वह नई-नई भावनाओं की तरंगें उत्पन्न करता था। उनमें से कुछ तो मानस-शास्त्रानुसार प्रभाव डालने वाले स्वर-लेखन के कारण ही चुने हुए हैं। किसी भी कारण से अन्दर कुछ गड़बड़ हो अथवा प्रयोग में विलंब होता दिखाई दे, तो उस समय दर्शकों का मन बहलाये रखने के लिये Bright marches (ब्राइट मार्चेज़) नामक सन्गीत हैं। किसी प्राण–संकट अथवा दुर्घटना के लिये 'सब भाग जाओ' (Disaster march), इस आशय का भी संगीत है।

जब इवान्स ने सर्कस में प्रवेश ही किया था, तब एक बार ऊँचे झूले पर काम करने वालों में से कोई धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। इवान्स ने अनजाने में एकदम बैंड बंद कर दिया। बस, उसके साथ चलने वाला प्रयोग भी बंद हो गया। दर्शकों में से कई स्त्रियां बेसुध हो गईं, तो कई के मुँह से चीख निकल पड़ी। तब से इवान्स ने यह संकल्प कर लिया कि ऐसे प्रसंग पर दुर्घटना की ओर से तुरन्त ध्यान हटा कर, कोई खुशी की चीज़ बजाकर दर्शकों का चित्त दूसरी ही ओर आकर्षित कर देना चाहिये। इतने समय में खिलाड़ी स्वयं संभल कर पुनः प्रयोग–प्रदर्शन के लिये तैयार हो जाता है, और दर्शकों को किसी दुर्घटना का भास भी नहीं होता।

उसने यह प्रयोग एक दूसरे आपद–प्रसंग के समय करके देखा कि, वह पूर्ण सफल हुआ। वह प्रसंग इस प्रकार था:— 'My Hero' (माई हीरो) नामक गाने के साथ पिरेमिड का एक प्रयोग चल रहा था। चार व्यक्ति एक दूसरे के कन्धों पर खड़े हो कमरकस बंधे हुए एक तार पर समान रूप से भार संभाले हुए, पिरेमिड पूर्ण करके, उतरने ही वाले थे कि, सबसे ऊपर वाला व्यक्ति समान-भार में चूक हो जाने के कारण ज्योंही गिरता दिखाई दिया, उसी क्षण इवान्स ने तुरन्त राग बदल कर एक 'march' (कूच–गीत) बजाना आरंभ कर दिया। फिर उसे एक आधार–स्तंभ के टूट कर गिरने का भयंकर शब्द सुनाई दिया। उसका हृदय धड़कने लगा और विकट अनिष्ट के घटने का बोध होते ही, ज्योंही उसने चारों–ओर दृष्टि डाली तो एक विचित्र सा वातावरण दिखाई पड़ा। अत: धैर्य बंधाने के लिये उसने फिर पहिला गाना ही बजाना आरंभ कर दिया।

नीचे गिरते–गिरते दो व्यक्तियों ने वह तार हाथों से पकड़ लिया तथा प्रसंगावधान–पूर्वक अपने नीचे लटकते हुए पैरों से शेष दूसरों को नीचे जा गिरने से पूर्व ही बीच में अटका लिया। इस प्रकार, जब तक उन्हें झेलने के लिये जाजम तानी जाय, तब तक चारों लटके रहे। दर्शकों ने इस [समझ में न आ पाई] घटना को भी उस प्रयोग का ही एक कौशल्य–पूर्ण अंग समझ कर खूब तालियाँ बजाई।

सन् १९४४ में एक चिर–स्मरणीय भाग्य–निर्णय–दिवस पर इवान्स को 'Stars and stripes for ever' नामक [तम्बू छोड़ने की आज्ञा का सूचक] अमेरिका का वह राष्ट्र–गीत बजाना पड़ा था। तम्बू में लगी हुई आग पहिले उसे ही दिखाई दी और उसने अपना वाद्य [कॉरनेट] प्रवेश–द्वार की ओर करके सीधा (Sousa) का प्रसिद्ध कूच–गीत बजाना शुरू कर दिया। रण-भेरी के सदृश संकट–सूचक वह नाद कानों पर पड़ते ही दर्शकों इत्यादि सब लोगों पर मानो वज्रपात हुआ, सर्कस के लोग अपने-अपने जानवर झट–पट तम्बू से बाहर निकाल रक्षकों के हाथ में सुरक्षित-स्थान पर ले जाने के लिये सौंपने लगे। हिंसक–पशुओं को पिंजरे में बन्द कर के पिंजरे सहित बाहर निकाल लिया गया। कुछ लोग दर्शकों की भीड़ को बाहर जाने के लिये मार्ग–प्रदर्शन करने लगे। इतनी देर में तम्बू ने अच्छी तरह आग पकड़ली थी। जो भी दिखाई दिया, उसी मार्ग से बाहर निकलने के लिये दर्शकों में भगदड़ मची हुई थी। इधर इवान्स ने 'फिर वही बजाओ!' हुक्म दिया और उधर तम्बू के जलते हुए टुकड़े बैंड–स्टैण्ड पर गिरने लगे। फिर भी अविचल इवान्स ने चिल्ला कर कहा, "वही १० बार और बजाओ!" ढोल में आग लगते ही जब इवान्स ने तम्बू के मुख्य आधार–स्तंभ और उसकी रस्सी में भी आग लगी हुई देखी, तो तुरन्त संकेत किया, 'भागो!' उसी क्षण तम्बू खाली हो गया और दूसरे ही क्षण सारा तम्बू जलता हुआ ज़मीन पर आ गिरा।

बाहर आये दर्शकों में, "उस बैंड ने ही यह प्रसंग इतनी शान्ति-पूर्वक निपटाया, अन्यथा सर्वनाश ही हुआ होता। उन में ही वह साहस था," बस यही चहुँ–ओर सुनाई देता था। वास्तव में, उन्होंने अपना अतुल पराक्रम व कार्य–कौशल्य अन्त तक प्रदर्शित किया।

कॉलंबस, कॉनसास में, इवान्स ने केवल १० वर्ष की अवस्था में संगीत–क्षेत्र में पदार्पण किया था। एक नये बैन्ड का निर्माण किया जारहा था, और उसी में इवान्स को एक कॉरनेट केवल इस आशय

से दिया गया था कि, कभी वह सीख गया तो काम पड़ने पर उपयोगी सिद्ध हो। इवान्स ने भी लकड़ियों के छप्पर में वह बाजा लेजाकर, यद्यपि पड़ोसियों को सताया; परन्तु बजाना सीख ही लिया।

छः वर्ष पश्चात् एक गाँव से दूसरे गाँव में, फिरने वाला नटों का एक दल (carnival) ईवांस के गाँव में आया। उसके बैंड में वह सम्मिलित हो गया। इसी दल के साथ गाँवों में फिरते-फिरते उसे विनोदी-नट, टिकिट-विक्रेता, एजेंट व बैंड-मास्टर, इत्यादि कार्यों का अनुभव प्राप्त करना पड़ा। सन १९१६ में, उसने मिलर ब्रदर्स के सर्कस में नौकरी करली और उसी समय से उसके भाग्य का उदय होने लगा। तब से उसे सदैव उसी पद पर कार्य करना पड़ा।

सर्कस में प्रत्येक कार्य-क्रम के समय, उसके उपयुक्त वातावरण पैदा कर देना; परन्तु दर्शकों को उसका भास भी न होने देना, यही सर्कस के संगीत का रहस्य है।

सर्कस के तम्बू में ऊँचे झूले पर होते हुये प्रयोगों के समय संगीत की लय झूले के अनुसार झोंके खाने वाली तथा धीरी रखनी पड़ती है। उस काम करने वाली स्त्री के, झूले पर सिर टेक कर खड़ी होते ही, एक क्षण के लिये संगीत बन्द हो जाता है। फिर उसके हाथ ढोल पर धीरे-धीरे गड़गड़ाने की आवाज़ शुरू होती और वह धीरे-धीरे चढ़ती जाती है। इसी के साथ दर्शकों की उत्सुकता बढ़ने लगती है। उस नटी के हाथ छोड़ते ही गड़गड़ाना एकदम बन्द हो जाता है। दर्शकों की साँस रुक जाती है और वह इस पूर्ण निःस्तब्धता में आगे-पीछे झोंके खाती रहती है। इतने ही में संगीत ज़ोर से शुरू होता और वह रस्सी पकड़ कर सुरक्षित खड़ी दिखाई देती है। संगीत के बिना वह प्रयोग दर्शकों में आधी हृदय-कम्प अवस्था भी उत्पन्न न कर पाता।

इवांस ने घोर-परिश्रम व कठिन-शोध द्वारा ही सर्कस के भिन्न-भिन्न कार्य-क्रमों के अनुरूप संगीत की रचना की है। आपेरा (सिनेमा) के जंगली—संगीत के भाग भी उसने जंगली जानवरों के प्रयोगों के लिये चुने हैं। इसी प्रकार हास्य-कारक कार्यक्रम के लिये विनोदी, लोक-प्रिय व आनंद-दायक गानों को उसने पसंद किया है। किसी विशेष कार्य-क्रम के योग्य संगीत की रचना वह स्वयं ही करता है।

'संसार में, जंगली तथा हिंसक पशु किस प्रकार संगीत की लय के साथ काम करने के लिये सिखाये जा सकते हैं?' यह एक कठिन प्रश्न है। परन्तु, वास्तव में बैंड ही उनकी हल—चल के अनुसार बजाया जाता है, फिर संगीत के साथ काम करने की उन्हें आदत पड़जाती है। सर्कस के जानवरों को अपने काम के साथ-साथ संगीत भी बजते रहना अच्छा लगता है। इतना ही क्यों, कुछ जानवर तो संगीत के अभाव में एक पग भी आगे बढ़ने को तैयार नहीं होते। कुछ पशुओं में सन्गीत का ज्ञान भी झलकने लगता है। यह कथन निर्विवाद है कि, सर्कस में उसका संगीत ही चैतन्य है।

एक बार कुछ अंध बच्चे सर्कस देखने आये। सर्कस समाप्त होने पर वे सब इवांस से मिलने गये और कहने लगे, "आपके संगीत द्वारा हमें सर्कस के सारे प्रयोग मानों साक्षात् ही दिखाई दिये।"

(मराठी से हिन्दी-अनुवादकः- रा. किशोर)

चतुर संगीत महाविद्यालय नागपुर, की ओर से नामदार पं. द्वारकाप्रसाद जी मिश्र की अध्यक्षता में दि. ६-९-४८ को कै. पं. वि. ना. भातखंडे की पुण्य-तिथि का समारोह बड़ी धूम-धामसे मनाया गया; जिसमें अनेकों प्रसिद्ध कलाकारों ने भाग लिया था।

पूना में दि. २४-२५ अगस्त को लय-भास्कर, लक्ष्मणराव जी पर्वतकर (खप्रू जी मामा) का विशेष सत्कार किया गया। इस अवसर पर जलसे में पं. रविशंकर उस्ताद विलायत हुसेन, व पं. किशन लाल [बनारस के कंठे महाराज के भतीजे] तथा अन्य कला कारों ने सहर्ष भाग लिया था; तथा उक्त वृद्ध-कलाकार को एक थैली भेंट की गई।

भारतीय-सन्गीत-शिक्षा-पीठ [भारतीय-विद्या-भुवन, बम्बई] की ओर से पं. विष्णु नारायण भातखण्डे की १२ वीं पुण्य-तिथि, आनन्दाश्रम हॉल तालमा की वाड़ी ताड़देव में दि. ५, ६, ७ सेप्टेंबर को, श्रीमती लीलावती मुन्शी की अध्यक्षता में मनाई गई। सब घरानों के कलाकारों ने गायन-वादन के कार्यक्रम में भाग लिया था।

गां. म. वि. मंडल-वृत्तः—

सतारा केन्द्र की सन्गीत परीक्षा दि. ७, ८, ९ अगस्त को हुई। परीक्षा में ३० विद्यार्थी बैठे थे। केन्द्र की व्यवस्था, श्री करंदीकर, संचालक 'सरस्वती सन्गीत-विद्यालय' ने की थी। पं. द. वि. पलुस्कर, व प्रा. वु. गो. मराठे, पूना से परीक्षक बन कर गये थे।

हिन्दुस्तान की प्राचीन संगीत-संस्था

" पूना गायन-समाज "

(लेखक—भालचंद्र द. खाडिकर, पूना २)

" सन् १८७४ में श्रीयुत सहस्त्रबुद्धे ने नेतृत्व स्वीकार करके ' पूना गायन-समाज ' नामक संस्था, पूना में स्थापित की थी। संगीत-क्षेत्र में इस संस्था ने अनेकों महान् काम किये हैं। कै. पं. भास्कर बुआ बखले, कै. बालकोबा नाटेकर, कै. पं. गणपतराव भिलवड़ीकर, कै. पं. अण्णा साहब घारपुरे, जैसी विभूतियों का इस संस्था से निकट-संबंध रहा था। इस संस्था ने ही, जयपुर के महाराजा, कै. प्रतापसिंह महाराज देव का ' राधा-गोविन्द सार ' नामक संगीत का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ, छपवाकर प्रकाशित किया था। निम्न-लेख पूना के प्रसिद्ध रसिक सद्गृहस्थ, श्री. भा. द. खाडिकर साहब ने घोर-परिश्रम व समस्त प्राचीन कागज़ों व पत्रों का सूक्ष्म अवलोकन करने के पश्चात् विशेषत: ' संगीत-कला विहार ' ही के लिये लिखा है, जिसका वाचकों में यथेष्ट स्वागत होगा, ऐसा हमें विश्वास है।

—' संपादक

श्री. भा. द. खाडिकर
[लेखक]

हिंदुस्तान में पहिले, अर्थात् लगभग पौन-सौ वर्ष पूर्व जो कुछ भी गायन-शालायें स्थापित हुई, उनमें पूना की ' पूना गायन-समाज ' नामक संस्था बहुत ही प्रचीन सिद्ध होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि, कहीं यह संस्था पहिली ही हो सकती है। यह संस्था दि. ३ आक्टूबर १८७४ को स्थापित हुई। इस पर संस्था सेक्रेटरी कै. बलवंत त्रिंबक सहस्त्रबुद्धे थे। वैसे ही कै. माधवराव नीलकंठ पुरंदरे तथा कै. नारायण विनायक नेने सभासद थे। पूना गायन समाज स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य संगीत-कला का संवर्द्धन, प्राचीन-शास्त्रों व अन्य ललित-कलाओं का पुनरुज्जीवन, जनता में संगीत के-प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना इत्यादि, था। तदनुसार समाज का कार्य आरंभ हुआ। आरंभ में लगभग १५ लडके गायन सीखते थे। फिर १-२ वर्ष में ही संख्या १५० तक पहुँच गई।

समाज का सर्वस्व लोकाश्रय पर ही निर्भर था। ज्यों-ज्यों काम बढ़ने लगा, त्यों-त्यों आर्थिक अड़चन प्रतीत होने लगी। अत: समाज के उत्साही सेक्रेटरी बलवंतराव जी ने समाज को आर्थिक—दान दिलाने में अत्यंत कष्ट झेले। हिंदुस्तान के बहुत से राजे-रजवाड़ों से पत्र-व्यवहार करके, कभी-कभी उनसे मिल कर तथा उन्हें समाज के कार्य प्रत्यक्ष बताकर बहुत सा धन एकत्रित किया। विशेष बात तो यह थी कि उन्होंने सरकारी अधिकारी, गव्हर्नर साहब व उनके सेक्रेटरी की सहानुभूति प्राप्त की। पूना गायन-समाज के समस्त इतिहास की सबसे महत्वमयी बात यह थी कि, राज-घरानों से लेकर सब बड़े-बड़े लोग समाज के आश्रय-दाता थे।

सन १८७६ में कै. बलवंतराव सहस्त्रबुद्धे ने डिवीज़न के कमांडिंग ऑफिसर ले. जनरल लॉर्ड मार्ककेर को गायन—समाज की ओर से निमंत्रित किया। उस समय लॉर्ड साहब पूना में ही थे। अस्तु, वे गायन-समाज में आये।

(यह समारंभ हीरा बाग़ में हुआ था, ऐसा जान पड़ता है।) समाज में सीखने वाले लड़कों के गायन के विषय में लॉर्ड साहब ने समाधान व्यक्त किया। इस समय समाज की ओर से उन्हें एक मान-पत्र भी भेंट किया गया था, जिसके उत्तर में उन्होंने कहा था, " मान-पत्र के लिये मैं आपका आभारी हूँ। समाज के प्रति किये हुए तुच्छ कार्यों का जो गौरव मान किया, उसके तो मैं योग्य भी नहीं; क्यों कि जो कुछ भी मैंने किया वह तो वास्तव में, कुछ भी नहीं के समान है। पूर्वीय-संगीत के प्रति मेरी अभिरुचि के संबंध में आपने जो पृच्छा की, उसके लिये मैं इतना ही

कहूँगा कि दिल्ली में व्हाइसरॉय साहब [लॉर्ड–लिटन] ने अपने एक भाषण में कहा था, अब पूर्वीय–देशों में पाश्चात्य देशों के शास्त्र तथा वहाँ की कला में सुधार किया जा रहा है ; तथा उनका कहना ठीक भी था । शास्त्र व कला का भंडार पूर्वीय देशों में ही है । मैं हिन्दुस्तान की जब–जब याद करूंगा, तब–तब वैभव शाली दिल्ली शहर तथा दक्षिण की राजधानी इस पूना शहर को कभी भी न भूलूँगा । आपने यहाँ बुलाकर जो मेरा सम्मान किया, उसके लिये मैं गायन–समाज के सभासदों का आभारी हूं। अन्त में, मैं समाज के सुयश के लिये शुभकामना करता हूँ । ”

श्रीमंत सरदार
आबासाहेब मजुमदार

समाज की शनैः–शनैः प्रगति होती गई । प्रत्येक वर्ष कोई न कोई बड़ा महमान आकर समाज के प्रति समाधान व्यक्त करता । किन्तु, कलुषित मन के द्वेषी लोगों को समाज का यह कार्य खटकने लगा । किसी ने यदि कोई सत्कार्य करना आरंभ किया तो उसमें कोई विघ्न न डालो, तो यह आश्चर्य की ही बात होती । संसार का यही धर्म है । इस समाज के प्रति भी कुछ ऐसा ही घटना हुई । सन १८७७ की १८ जनवरी के 'ज्ञान—प्रकाश' के अंक में प्रकाशित इस से संबंधित लेख पढ़ने योग्य है । वह लेख इस प्रकार है:—–

(ज्ञान–प्रकाश तारीख १८–१–१८७७)

' बम्बई के " टाइम्स " में छापा गया एक पत्र हमने देखा । वह पत्र ता. २५ अक्तूबर १८७६ के " टाइम्स " में प्रकाशित हुआ था । पत्र में उल्लेख किया है कि, " पूना का गायन–समाज एक ढकोसला है वहाँ होने वाले गायन–वादन का अभिप्राय आस-पास के लोगों को कष्ट देना है । इसका निवारण करने की ओर सरकार को अवश्य ध्यान देना चाहिये । हमारे कथनानुसार बंबई के पुलिस–कमिशनर को चाहिये कि स्वयं इस समाज का कार्य प्रत्यक्ष रूप से देखकर, जो आवश्यक हो वह प्रबंध किया जाय । "

" टाइम्स " में इस प्रकार लिखने वाले पर हमें दया आती प्रथम तो लेखक महाशयको हिंदुस्तानके लोगों में कुछ जानकारी नहीं; तथा उनका संगीत क्या है, यह भी ठीक–ठीक ज्ञान नहीं ! इस अज्ञान के लिये क्या कहा जाय ? वे आगे कहते हैं "हिंदु लोगों का संगीत अर्थात् सड़कों पर हलके दर्जे के लोगों के गाने का संगीत है । परंतु इस लेख के उत्तर में "नेशनल इंडियन एसोसि-एशन जॉर्नल' नामक मासिक में दिया मज़मून पढ़ने योग्य है उसका सारांश यह है– " युरोपियन लोगों को हिंदुस्तानी संगीत नहीं भाता, ऐसा कहना भूल है कितने ही युरोपियन ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में हिंदुस्तानी संगीत को बहुत बड़ा दर्जा दिया है, इस ओर हम 'टाइम्स' के अधिकारियों का ध्यान दिलाना चाहते है । कैप्टिन विलार्ड के ' हिन्दू–म्यूज़िक, ' सर डब्ल्यु. जॉन्स के ' म्युज़िकल मोड्स ऑफ हिन्दू–म्युज़िक, ' सर डब्ल्यु. औस्ले के ऐनेक्डोट्स ऑफ इण्डियन म्यूज़िक, ' जे. डॉ. पेटर्सन के ' दि ग्राम्स ऑफ दि हिन्दूज़, ' मि. फ्रेन्सिस ग्लैडविन के "संगीत " तथा डब्ल्यु सी. स्टैफर्ड के ' ओरिएन्टल–म्युज़िक ' इत्यादि ग्रथों में हिन्दुस्तानी—संगीत को श्रेष्ठ मान कर, यह स्वीकार किया है कि हिन्दू–संगीत शास्त्रानुसार रचा गया है ।

एक उच्चतम कला का संवर्धन करने वाले ' पूना गायन-समाज के विषय में, उस लेख द्वारा, यह लिख कर कि गायन–समाज को सामाजिक मान तथा उसके साथ प्रतिष्ठित लोगों की सहानुभूति नहीं, लेखक ने दुष्टता का परिचय दिया है । पूना के १०–१२ सरदार, साहूकार, समाज में प्रतिष्ठित तथा विश्व–विद्यालय के उच्च–पदों पर काम करने वाले लोग इस समाज के अधिकार–पदों पर नियुक्त हैं; इस विषय में लिखना निपट नट–खटपन है । वह कुछ भी हो, हम गायन–समाज का हार्दिक अभिनंदन करते हैं ।

—' ज्ञान-प्रकाश'

पूना गायन–समाज के इतिहास में १ जनवरी १८७७ बडे महत्व का दिन था । इस वर्ष महारानी विक्टोरिया ' हिन्दुस्तान की सम्राज्ञी ' हुई थीं, तथा इसके निमित्त, उस दिन पुना में भी बड़ी धूम–धाम के साथ समारोह किया जाय, यह निश्चित हुआ । अस्तु, इस समाज में ठीक उसी तरह वह दिन मनाया गया । इसी खुशी में उस समय के पूना के एक प्रसिद्ध नागरिक कै. बजाबा बालाजी नेने ने, महारानी के गौरव से परिपूर्ण एक कविता स्वयं लिखी थी । वे पूना गायन–समाज ' के एक आदर-

णीय सभासद थे। [रोज़ जो भी होता, वह अपनी डायरी में लिख लेने की उनमें आदत थी। तदनुसार सन् १८६८ से १८७२ तक, उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह 'सह्याद्रि' मासिक के फेब्रुआरी १९४८ के अंक में (पृष्ठ ७४ से ७७ तक) प्रकाशित हुआ है।] उक्त कविता इस समारंभ के दिन पढ़ी गई थी। उसका अंग्रेज़ी में के. राव साहब कृष्णा जी परशुराम गाडगील ने सुन्दर-भाषान्तर किया था; किन्तु वह बहुत बड़ा होने के कारण यहाँ नहीं दिया गया है। केवल यथासंभव हिन्दी-अनुवाद ही वाचकों के लिये विशेष रूप से नीचे दिया जा रहा है:—

विक्टोरिया केसर-इ-हिन्द

(Victoria Imperatrix India)

देवि, श्री विक्टोरिया सार्वभौमिनी ॥
प्रमुदित हम, नव भाविक पदवी तुमने पाई।
अनुभव हैं करते शांति, स्थिति जो सुखदाई ॥
निश-दिन शास्त्र कला, वस्तु संपत जाते बढ़ते।
मनुष्य जीव संपत के लिये, नहीं अब डरते ॥
सहर्ष शुद्ध दिलों से, हम करते विनती;
घड़ी हो आज की, कल्याण-कारिनी। देवि० ॥
जलधि बसन परि, विलसित ये वसुन्धरा।
रजत कनक रतन, सुख जननी सुन्दरा ॥
सर्व साधन-युक्त, जो उर्वरा धरणी;
निःशंक नीतज्ञ बनी, तू अधिकारिनी! देवि०॥
बैठा जिस रत्नासन में युधिष्ठिर।
शोभित था इक दिन जिस पर अकबर ॥
उस पर धर्म-मूर्ते बिठा कर तेरी;
पुनः पुनः गाते यश तेरा स्वामिनी! देवि०॥
पंडित गुणी मंडित, है यह खंड निर्मल।
भगवती, नवसुत दुहिता रत्न मंडल ॥
अखण्ड राज्य, सुजल हो तेरा रानी;
परमेश्वर रखे सुखी, आदिकारिनी देवि०॥

भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर बड़े-बड़े लोग समाज में प्रायः आते, आर्थिक-दान देते व समाधान व्यक्त करके जाते थे। सन् १८७९ में बड़ौदा तथा त्रावनकोर के नरेश, बम्बई के बड़े-बड़े व्यापारी जंजीरा के नवाब साहब, बम्बई के जमशेद जी नसीरवान जी पेटिट इत्यादि ने समाज में पदार्पण किया; तथा अन्तिम दोनों १०० रुपये वार्षिक प्रदान करके आश्रय-दाता बन गये।

जब भी ऋतु-परिवर्तन के कारण, पूना में प्रमुख सरकारी कार्यालय आते, तब गवर्नर और बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी-गण 'पूना गायन-समाज' में अवश्य आते थे। विशेषतः उस समय के गवर्नर लॉर्ड फ़र्ग्युसन ने इस समाज को बड़ी ही सहायता प्रदान की थी। इतना ही नहीं; बल्कि उनकी कृपा-दृष्टि के कारण राज-घरानों तक पूना. गायन-समाज का नाम विख्यात हो गया था। इन सबसे अधिक, लिखने योग्य बात यह है कि, उस समय के प्रिन्स ऑफ़ वेल्स (सातवें एडवर्ड) और ड्यूक ऑफ़ कनॉट पूना गायन-समाज के आश्रय-दाता बन गये थे। इतना सौभाग्य किसी भी गायन-संस्था को प्राप्त नहीं हुआ था। इस समस्त सफल प्रयास का श्रेय के. बलवंत राव सहस्रबुद्धे को ही है, तथा उनका नाम इस समाज के अमिट इतिहास में अजर-अमर रहेगा। उन्हें सदैव इसी बात का ध्यान रहता था कि, बड़े-बड़े लोगों को बुलाकर किस प्रकार उनसे आर्थिक सहाय्य प्राप्त की जाय? इसके लिये उनकी निरन्तर लगन सराहने योग्य थी।

इस प्रकार पूना गायन समाज आगे-आगे क़दम रखता चला जा रहा था; परन्तु पूना का क्षेत्र अपूर्ण समझकर अथवा कुछ और शाखायें खोली जायें, इस विचार से, प्रत्येक-स्थान में इस समाज की शाखायें स्थापित करके संगीत-कला का सर्वत्र प्रसार करने के लिये सहस्रबुद्धे साहब ने बड़ी खटपट की। सन् १८८३ में के. बलवंतराव जी मद्रास गये और अच्छे प्रभावशाली लोगों विशेषतः मद्रास के राजा सर टी. माधवराव, के. सी. एस. आई; सुप्रसिद्ध सर चार्ल्स टर्नर, जस्टिस मुथुस्वामी अय्यर, की सहायता से 'मद्रास-शाखा' शुरू हुई। इस शाखा को, मैसूर तथा त्रावणकोर के नरेश; गवर्नर सर फ्रैडरिक रॉबर्टस; व विजयनगर के नरेश इत्यादि, बड़े-बड़े लोग आर्थिक-दान देकर आश्रय-दाता बन गये। इसकी अपेक्षा गायन-समाज की मद्रास-शाखा के इतिहास में लिखने योग्य एक बात यह है कि, एक विशेष शर्त पर, विजय-नगर के महाराज ने १५००० रुपये, ४ प्रतिशत ब्याज की दर पर समाजको देना स्वीकार किया। वह शर्त यह थी कि, 'पूना गायन-समाज मद्रास शाखा' के स्थान पर 'मद्रास ज्युबली गायन-समाज' नाम रखा जाय। गायन-समाज के संचालकों ने यह शर्त मानली

और तभी से अर्थात् सन् १८८७ से मद्रास-शाखा का नाम बदला गया। बिजय-नगर के महाराज स्वयं संगीतज्ञ थे। वे इतनी रक़म देकर ही चुप न बैठे। इस शाखा को ६०० रु. वार्षिक देना स्वीकार करके वे स्वयं आश्रयदाता बन गये। अस्तु, पूना गायन-समाज का नाम, बाम्बई-प्रान्त तक ही सीमित न रह कर मद्रास-प्रान्त तक पहुँचा और फिर उत्तरोत्तर उसकी कीर्ति बढ़ती गई।

मद्रास की भांति बम्बई में भी पूना गायन-समाज की शाखा शुरू की गई। उस समय सर मंगलदास नाथू भाई, राव बहादुर गोपाल हरि देशमुख तथा अन्य अनेकों नागरिक एवं यूरोपियन लोग इस बम्बई-शाखा के सभासद थे। इस शाखा में लग-भग ३० लड़के गायन-वादन की शिक्षा पाते थे।

इसी प्रकार, फिर बड़ौदा, बढ़वाण, भावनगर तथा [दक्षिण में] कोल्हापुर में भी शाखायें स्थापित की गईं। सन् १८८२ में त्रावनकोर के महाराजा ने ५०० रुपये दिये। सन् १८८३ में 'बंगाल अकेडमी ऑफ़ म्यूज़िक' के सभासद डॉक्टर डब्ल्यु हंटर 'पूना गायन-समाज' में पधारे, तथा वापस बंगाल जाने पर अपने भाषण में उसका वर्णन किया। इसके अतिरिक्त, इसी वर्ष लॉर्ड रिपन, हैद्राबाद के निज़ाम, तथा भावनगर, पालिठाणा, गोंडल, बढ़वाण, इत्यादि संस्थानों के अधिपति-गण भी समाज में पधारे थे।

अगले वर्ष, सन् १८८४ में समाज की ओर से बम्बई के गवर्नर सर जेम्स फ़र्ग्युसन को एक मान-पत्र अर्पण किया गया। इस समय कै. श्री कुन्टे, व कै. घारपुरे, इत्यादि प्रतिष्ठित लोग सभासद तथा कै. नीलकण्ठ वि. छत्रे समाज के सेक्रेटरी थे। गवर्नर साहब ने सुन्दर भाषण द्वारा उच्च-उद्गार व्यक्त किये, तथा समाज के प्रति शुभ-कामना की। यह समारंभ पूना के कौंसिल हॉल में हुआ। इस पर जो राष्ट्र-गीत गाया गया था, वह हिंदुस्तान में कदाचित् पहला ही होगा। इससे पहिले मराठी राष्ट्र-गीत अन्यत्र कहीं भी नहीं गाया गया था, यह विशेषता थी। इसी समय गायन-समाज के एक आदरणीय सभासद श्री. अण्णा साहब घारपुरे, बीनकार की 'पूना गायन-समाज सीरीज़,' श्री. एम. शेषगिरी शास्त्री, एम. ए. की 'ट्रिटाइज़ ऑन इन्डियन म्यूज़िक' नामक अंग्रेज़ी पुस्तकें पूना गायन-समाज की ओर से प्रकाशित की गईं। इसी प्रकार 'हिन्दुस्तान में संगीत की उत्पत्ति और प्रगति' (Origin and Progress of Indian music) नामक अंग्रेज़ी की पुस्तक भी प्रकाशित हुई। इस ग्रंथ में संगीत-विद्या ने भरत-खंड में धीरे-धीरे किस प्रकार प्रगति की, बड़े ही अच्छे ढंग से वर्णन करके दरसाया गया है। इसी ग्रन्थ के आधार पर श्री. कुंटे ने संगीत पर व्याख्यान भी देना निश्चित किया था।

श्री. कुन्टे द्वारा लिखित ग्रंथों में प्रदर्शित संगीत संबंधी परिचय पढ़ने योग्य है। उसमें वर्णन की एक बात यदि यहां दी गई, तो अप्रस्तुत न होगी:—

कै. माधवराव साने
(साने मास्टर)
★

"ईसाई सन् १२०० से पूर्व संस्कृत-ग्रन्थों में—विशेषतः रामायण में, वीणा नामक वाद्य का विशेष रूप से वर्णन किया है और वादन के लिये सात प्रकार के ताल-निदर्शन वाद्य होते हैं। भरत के समय में शृंगारिक-पद्य व राग-गायन पाये जाते थे। ईस्वी सन् से पूर्व ५००वर्ष तक, अर्थात् बुद्ध-काल में राग-गायन था, इस प्रकार का उल्लेख पाया जाता है। ई. सन के ५०० वर्ष पूर्व व बाद में ई. स. १०० तक के काल में ग्रीक व रोमन संगीत यूरोप-खण्ड में फैला हुआ था। ई. सन् ७०० के बाद के जमाने में 'जल-तरंग' नामक वाद्य का प्रचार हुआ। ई. सन की१३ वीं शताब्दी में *'संगीत-रत्नाकर' नामक एक महत्व*-पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया। उसके पश्चात् ई. सन् १६०० के लग-भग, अर्थात् अकबर बादशाह के कीर्ति—काल में भारत में संगीत प्रगति-पथ पर चला जा रहा था। इसी समय तानसेन विशेष प्रसिद्ध हुआ।"

उपर्युक्त संदर्भ सन् १८८४ के 'डेली टेलिग्राफ़' एवं 'डक्कन हेरल्ड' नामक समाचार-पत्रों में छापा गया था, तथा उसका ही केवल सारांश मैंने ऊपर दिया है।

सन् १८८३ के सितम्बर मास में दि. २२ को पूना के हीरा बाग में, इस समाज की ओर से बड़े ठाठ-बाट के साथ एक जल्सा हुआ। जो लोग सहसा एकत्रित होकर नहीं आते,

ऐसे यूरोपियन स्त्री–पुरुष व अनेक बड़े–बड़े लोग इस प्रसंग पर सबसे पहिले आ उपस्थित हुए। उसमें मिसेज् बिअर्ड, कै. सॉमर-सेठ, सर जमशेद जी जीजीभाई बॅरोनेट, जनरल सर रॉस, मिस प्रेसले, खान बहादुर दोराब जी पदम जी, सर्जन जनरल ऑचि-न्लेक, रा. ब. महादेव गोविन्द रानडे, श्री. कुन्टे, रा. ब. जे. एच. देशमुख, रा. ब. एस. पी. पंडित, श्री. भाऊ साहब नातू हिज्हाइनेस अकबर खाँ, श्रीमंत बाबा साहब सांगलीकर, मि. रिचर्डसन, व कर्नल लॉइड, इत्यादि ६०–७० लोग उपस्थित थे। इन में से बहुत से पूना गायन–समाज के सभासद थे। यह मिश्र–समाज देख कर लोगों ने अपने आपको धन्य समझा। संध्या समय, ५ बजे के लग–भग गवर्नर साहब पधारे। सब लोगों के अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाने पर समाज का कार्य-क्रम आरंभ हुआ। कुछ सभासदों ने वाद्य बजाये, तथा लड़कों ने अनेक रागों के गाने गाये।

इसके पश्चात् समाज के एक कार्य-कर्ता, श्री. कुन्टे पूना हाई–स्कूल के हेड–मास्टर, ने समयोचित भाषण देकर, गवर्नर साहब से दो शब्द कहने की प्रार्थना की। गवर्नर साहब ने कहा, " यहाँ इस मिश्र–समाज को देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। हम इस ढंग से कभी इकट्ठे नहीं आते। इस प्रसंग पर यहाँ आकर समाज का कार्य देखने के संबंध में निवेदन करने वाले, मेरे मित्र लॉर्ड आर्कॅनेर का मैं आभारी हूँ। पूना गायन–समाज का कार्य देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। इस समाज की उत्तरोत्तर समृद्धि हो, यह मेरी शुभ–कामना है। आपने जो मुझे यहां आमंत्रित किया, उसके लिये मैं आप सब का आभारी हूँ।" (श्री. कुन्टे व गवर्नर सा० का मूल–भाषण बहुत बड़ा होने के कारण यहाँ केवल सारांश ही दिया गया है।)

दि० २० जून १८८७ को मद्रास–शाखा में पूर्व–निश्चय के अनुसार रानी विक्टोरिया की जुबली का समारंभ मनाया गया। मद्रास के. महाराजा गर्ल्स–स्कूल में ' नेशनल इन्डियन एसोसिएशन ' नामक संस्था की ओर से एक गायन–वर्ग आरंभ हुआ। जुबली समारंभ बड़े ठाट से मनाया गया। विजय–नगर के महाराज ने पहिले दिये वचनानुसार यशस्वी विद्यार्थियों को स्कॉलर्शिप्स देना स्वीकार कर लिया। इस प्रसंग के समय स्वयं विजयनगर के महाराज पी. रंगा नायडू, अर्काट बलकोंडे मुदलियार, कर्नल ऐच. मॉक्लिभार्थ, पी. त्यागराज चेट्टी, तथा टी. व्ही. तुलजा रामराव इत्यादि, बड़े–बड़े लोग उप-स्थित थे। इन लोगों ने ' पूना गायन–समाज ' की मद्रास–शाखा को अत्यन्त सहायता प्रदान की थी। इसी दिन ' पूना गायन समाज ' के उत्साही सैक्रेटरी श्री. बलवंत राव सहस्रबुद्धे द्वारा लिखित ' हिन्दु–म्युज़िक एन्ड दि गायन–समाज ' नामक अंग्रेजी में छपी हुई पुस्तक का प्रकाशन समारंभ हुआ। यह निश्चित किया गया था कि, इस ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त धन मद्रास–शाखा की सहायता के लिये दे दिया जाया। यह ग्रन्थ अनेकों दृष्टियों से पढ़ने योग्य है। यह पुस्तक सन् १८८७ में ' बॉम्बे गजट स्टीम प्रेस ' में छपी गई थी। इस में संगीत के विषय में बहुत सी जानकारी दी गई है। श्री. सहस्रबुद्धे और श्री. कुन्टे द्वारा भिन्न–भिन्न प्रसंगों पर दिये हुए भाषण तथा पढ़े हुए निबंध मनन करने योग्य हैं। परन्तु, स्थलाभाव के कारण देना संभव नहीं। इसी भाँति एम. वेंकटेश शास्त्री (मद्रास) ने बम्बई में सन् १८८६ की जनवरी में बम्बई शाखा के प्रति ' नेटिव म्युज़िक ' नामक विषय पर विद्वत्ता–प्रचुर व्याख्यान श्री. जगन्नाथ शंकर सेठ के बंगले में दिया था। इस प्रसंग पर सर विलियम वेडरबर्न अध्यक्ष के पद पर सुशोभित थे।

पूना गायन–समाज की वैभव-पुष्टि करने वाला प्रथम–श्रेणी का समारंभ ड्यूक ऑफ् कॅनॉट का पदार्पण था। सन् १८८६ के १ अक्टूबर को यह समारंभ हुआ था। पूना स्टेशन के पास, नसरवान जी माणिक जी पेटिट का विस्तीर्ण बंगला सजाया गया था। ड्यूक साहब का आगमन ६ बजे निश्चित हुआ था। दर वाज़े पर ' सुस्वागतम् ' के सुनहरी अक्षरों की एक पट्टी चमक रही थी। ठीक ६ बजे ड्यूक साहब व डचेस साहिबा आये। भोर के पंतसचिव, रा. ब. गोपालराव देशमुख, ना. सखाराम रास्ते, श्री. बलवंतराव पटवर्धन, व श्री. चिन्तामणराव नातू ने मेहमानों का स्वागत किया। अन्दर ड्राइंग हाल में प्रशस्त कोच पर वे बैठे। उनके साथ ही गवर्नर साहब लार्ड रे व लेडी रे भी अपनी जगहों पर बैठ गये। सर विलियम वेडरबर्न भी उपस्थित थे। समाज के विद्यार्थीयों ने स्वागतार्थ श्लोक कहे। ये श्लोक इस प्रसंग के लिये विशेषत: लिखे गये थे। नीचे उनका हिंदी अनुवाद दिया जाता है:—

प्रजा–संरक्षण के प्रति, समर में नरसिंह सम बली।
सम्राज्ञी ने भेजा निज तनुज, सेना–अधिपती ॥

साथ शोभित जिसके, रुचिर निजकांता प्रियतमा।
उपेंद्र संग सोहे परम रमणीया ज्यों रमा ॥ १ ॥
विश्वेश्वर ! हमारी प्रार्थना यह स्वीकार हो।
तीनों भुवन में इस वीर का जय-जयकार हो ॥
प्रेम का भूखा नृप, सौभाग्य से हमको मिला।
सुस्वागत इनका करें हम, उदित शुभ-दिन हुआ ॥ २ ॥

इस प्रकार के स्वागत-गान इत्यादि के पश्चात् गायन-शाला के विद्यार्थियों ने ध्रुपद, श्री-राग का एक गीत, टप्पा और हिंडोल-राग के गीत गाये। सुप्रसिद्ध बालकोबा नाटेकर ने यह गीत विद्यार्थियों को बड़ी ही अच्छी तरह सिखाये थे। नाटेकर स्वयं एक उच्च-कोटि के गवैये व बीनकार थे, यह बहुतसों को ज्ञात होगा। इसके बाद गोआ प्रान्त के उस्ताद मुरार बुआ (पूना गायन-समाज की प्रार्थना पर पधारे थे) ने 'स्वर-शृंगार' नामक पुरातन वाद्य पर भीम-पलास राग बजाकर दिखाया। हिंदु-लोग फिडिल बजाते समय जिस तरह बैठते हैं, वह यूरोपियन लोगों में बड़ी ही अनोखी मानी जाती है। वे लोग उसे खड़े रहकर बजाते हैं, तथा हमारे यहां के लोगों में बैठकर बजाने की पद्धति है। अतः वहाँ एकत्रित यूरोपियन महमानों को क्षणभर तो बड़ी मौज सी प्रतीत हुई। इसके पश्चात् स्वयं बालकोबा नाटेकर का भी गाना हुआ।

स्वर साम्राज्य के बाहर आने पर, श्री कुंटे स्टेज पर गये और अपना भाषण आरंभ कर दिया। इस प्रसंग पर उन्होंने 'हिन्दुस्तानी-संगीत तथा यूरोपियन-संगीत' नामक विषय पर सप्रयोग परिचय दिया। आर्यावर्त में संगीत-कला का दर्जा कितना ऊंचा है, यह उन्होंने भली-प्रकार लोगों को समझा दिया। वही प्रदर्शन श्री. नाटेकर के गायन द्वारा हुआ था।

आभार-प्रदर्शन के पश्चात् ड्यूक साहब ने विशेषतः श्री कुंटे साहब को बुलाकर हस्तान्दोलन किया व कुछ देर बातचीत भी की। इसके बाद भोर के अधिपति ने ड्यूक व डचेस को पुष्पहार अर्पण किये। अन्त में, समाज के लड़के-लड़कियों के 'देवि श्री विक्टोरिया' और 'देवा राखी राणी' नामक पद गाने के बाद वह अपूर्व समारंभ समाप्त हुआ।

पूना गायन-समाज की मद्रास-शाखा बहुत सी बातों में उत्तम प्रकार से चल रही थी। आर्थिक-दान भी अच्छे मिलते रहे। उपर्युक्त श्री. मनकोटि मुदलियार ने ६०० रुपये, पी. रंगा नायडु ने ५०० रुपये, कर्नल एच. मेकिन्सॉक ने २५० रुपये, पी. त्यागराज शेट्टी ने १०० रुपये, व टी. श्री. तुलजा रामराव से १०० रुपये वार्षिक समाज को मिलता था।

अन्य शाखाओं का काम भी अच्छी तरह ही चल रहा था। इस तरह से वार्षिक-समारंभ, साल-गिरह-समारंभ इत्यादि हर साल मनाये जाते थे।

सन् १९०४ में समाज के एक सभासद श्री. नारायण दासो बनहट्टी, बी. ए. ने बम्बई इलाके के विद्याधिकारी की सूचना पर विद्यार्थियों के लिये 'बाल संगीत बोध' नामक तीन पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कीं। पुस्तक-लेखन के समय समाज के शिक्षक श्री. बालकोबा नाटेकर ने बड़ा परिश्रम किया। पूना के ट्रेनिंग कॉलेज में संगीत सिखाना आरंभ हो जाने के कारण ऐसी पुस्तकें तयार करने का क्रम तो चल ही रहा था कि, इसी समाज का शिक्षक गायन सिखाता था, तथा वह प्रथम सम्मान श्री. बालकोबा नाटेकर को प्राप्त हुआ था। कै. पं. द. के. जोशी ने इसके लिये बड़ी ही महनत की थी।

'बाल-संगीत-बोध' में पहिले चीज़ें सरल स्वरों पर, फिर मराठी क्रमिक पुस्तकों में कवितायें ताल-स्वरों पर जमा कर लिखी गई हैं। इसी ढंग से पद, ध्रुपदें, ख्याल रागों के स्वरों पर शाला में सिखाये भी जाने लगे। इस पुस्तक के प्रत्येक भाग में लगभग २५ रागों में कवितायें तथा उनके नोटेशन भी दिये हैं। केवल कवितायें सादी अर्थात् बच्चों के लिये ही लिखी गई हैं। इस पुस्तक के तीनों भाग बच्चों की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त हैं।

पूना गायन-समाज के बढ़ते हुए व्यय को लक्ष्य में रखकर अब सरकारी सहायता की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अतः सरकारी कर्मचारियों से मिलना-जुलना आवश्यक हो गया। कै. पं. द. के. जोशी (जो समाज के एक सम्मान्य सभासद थे) की खट-पट यशस्वी हुई, तथा समाज के लिये सन् १९०७ से ३०० रुपये वार्षिक की स्वीकृति मिल गई। यही स्वीकृति कै. माधवराव साने व सरदार मजुमदार के प्रयत्नों से १२०० रुपये तक बढ़ सकी।

ई. स. १९१० में समाज की ओर से जयपुर के महाराज सवाई प्रताप सिंह देव महाराज द्वारा लिखित 'संगीत सार' नामक पुस्तक ७ भागों में प्रकाशित की गई। इस पुस्तक के प्रकाशक बलवंतराव सहस्रबुद्धे ही थे। ये सब पुस्तकें हिन्दी भाषा

में छापी गई हैं। सातों भागों के नाम निम्न-लिखितानुसार हैं:

[१] स्वराध्याय, [२] वाद्याध्याय, [३] नृत्याध्याय, [४] प्रकरणाध्याय, [५] प्रबंधाध्याय, [६] तालध्याय व (७) रागाध्याय। ये सातों भाग ई. स. की १३ वीं शताब्दी में काश्मीर के सारंगदेव के लिखे हुए 'संगीत-रत्नाकर' नामक संस्कृत ग्रन्थ का लगभग अनुवाद ही हैं। ये 'राधा-गोविंद संगीत-सार' के सातों भाग अब मिलना कठिन हैं। मेरे परम-स्नेही व समाज के माननीय व सन् १९२० से समाज के अध्यक्ष, सरदार मजुमदार के ग्रंथालय में इसका एक भाग मेरे देखने में आया।

पूना गायन-समाज की ओर से केवल ट्रेनिंग कॉलेज में ही नहीं, वरन् डेक्कन ऐज्युकेशन सोसायटी, महाराष्ट्र ऐज्युकेशन सोसायटी, पूना नेटिव इन्स्टीट्यूशन, शिक्षण--प्रसारक मंडली, तथा कैम्प ऐज्युकेशन सोसायटी इत्यादि विद्यालयों में भी शिक्षक लोग गाना सिखाने के लिये भेजे जाने लगे। इसी काल में समाज के सबसे पुराने और ट्रेनिंग कॉलेज के सबसे पहिले के गायन-शिक्षक श्री. बालकोबा नाटेकर का देहावसान हो गया। इनके पश्चात् पूना के एक विद्वान् संगीत शास्त्रज्ञ प्रो. गं. भी. आचरेकर की उस जगह नियुक्ति हुई।

पूना गायन-समाज के संस्थापक तथा कितने वर्षों तक आगे सेक्रेटरी के पद पर सुशोभित श्री. बलवंतराव सहस्त्रबुद्धे का लग-भग सन् १९१७-१८ में निधन हो गया, यह उनके पोते से ज्ञात हुआ। उनका चित्र ढूंढने का मैंने बड़ा प्रयत्न किया; किन्तु न मिल सका।

पूना गायन-समाज के संस्थापक एवं आधार-स्तंभ, श्री. बलवंतराव सहस्त्रबुद्धे के निधन से समाज की जो क्षति हुई, वह फिर पूरी न हो पाई। उन जैसा महनती व्यक्ति बिरला ही होगा। इस संसार में उनका अस्तित्व नष्ट सा हो गया। उनकी प्राप्ति से ही पूना गायन-समाज वैभव के शिखर पर पहुंचा था। वे दिन, समाज को फिर देखने को न मिले। कुछ समय के पश्चात् व्यवस्थापकों के अभाव के कारण मद्रास-शाखा भी बंद कर देना पड़ी, तथा सबका ध्यान केवल पूना की संस्था पर ही केन्द्रित हो गया।

व्यय बढ़ गया तथा आर्थिक-सहाय्य कम पड़ने लगा। चालकों के प्रयत्न से त्रावनकोर के महाराज की ओर से सन् १९१८ से ४०० रुपये वार्षिक मिलने लगा। पूना शहर की म्यूनिसिपालिटी की ओर से २०० रुपये, डेक्कन एज्यु० सोसायटी से २०० रुपये महाराष्ट्र एज्यु० सोसायटी से १०० रुपये तथा शिक्षक-प्रसारक मंडली की ओर से ५० रुपये मिलने लगे। इसी में से शिक्षकों के वेतन इत्यादि का व्यय होता।

समय की भाँति वृद्ध तथा अनुभवी लोगों का सदैव के लिये साथ छुटने लगा। बलवंतराव साहब सहस्त्रबुद्धे व श्री. छत्रे दोनों परलोक सिधारे। परन्तु समाज के सौभाग्य से न्यू इंगलिश स्कूल के हैडमास्टर श्री माधवराव साने, पूना के सर्दार मजुमदार इत्यादि, लोगों ने आगे कदम उठाया। समाज का कार्यभार अपने ऊपर लेकर आगे काम शुरू हुआ। पूर्ववत् इन दोनों ने सरकारी कर्मचारी, तथा गवर्नर इत्यादि बड़े-बड़े लोगों को आमंत्रित करके समाज के कार्यों के प्रदर्शन की प्रथा डाली। उस समय समाज के अध्यक्ष, सरदार नौरोजी पदम जी नामक एक बड़े गृहस्थ थे।

यह सन् १९१८ के पश्चात् का समय था पहिले-पहल समाज के वर्ग सरदार मातू के बाड़े में, उसके बाद छत्रे के बाड़े में, तथा, इसके पश्चात् शनिवार पेंठ के मैहुण पुरे में सरदार रास्ते के बाड़े में काम करने लगे, जो अन्त तक चलता रहा।

कै. सहस्त्रबुद्धे की ही भांति कै. साने मास्टर ने भी समाज के लिये बड़ा परिश्रम किया, जो मुझे स्वयं ज्ञात है। सन् १९१० से आगे, लगभग ७-८ वर्ष तक मैं भी पूना गायन-समाज में विद्यार्थी था, अतः इसके बाद की सब बातें मुझे याद हैं। १९११-१२ की बात का यदि उल्लेख किया गया, तो वह अप्रस्तुत न होगी। उस समय नवीन मराठी-शाला में गायन-समाज के एक शिक्षक, कै. गणपत बुआ भिलवड़ीकर हमारे गायन-मास्टर थे। किसी समारंभ के लिये, हम ५-६ लड़के शाला की ओर से साने मास्टर के साथ, पूना के शुक्रवार पेंठ वाले श्रीमान् कालूराम मन्साराम नाईक के बाड़े में गये थे। उस समय कै. डॉ. सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकर अध्यक्ष थे। हमने स्वागत—गान के पद गाये। मध्यंतरी भाषण-इत्यादि कार्य-क्रम समाप्त हुआ, तथा बाद में पारितोषक-समारंभ हुआ। इस प्रसंग पर मुझे पं. विष्णु शर्मा द्वारा लिखित 'हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति' नामक ग्रन्थ के ३ भाग मेरा नाम लिखकर पुरस्कार में दिये गये थे। (ये भाग ५-६ वर्ष पूर्व मैंने एक गृहस्थ को पढ़ने के लिये दिये थे; किन्तु न वे गृहस्थ ही हैं और उनके ही साथ पुस्तकें भी चली गईं।) अन्त में उस समय राष्ट्र-गीत का

भाँति माने जाने वाला 'श्री पंचम जॉर्ज भूप' नामक गीत हमने गाया और समारंभ समाप्त हुआ। यह प्रसंग मुझे अच्छी तरह स्मरण है।

सन् १९२१ में पंचम जॉर्ज बादशाह के चचा, ड्यूक ऑफ़ कॅनॉट पुनः हिन्दुस्तान आये थे, तथा उस समय समाज के अध्यक्ष सरदार आबा साहब मजुमदार व सेक्रेटरी माधवराव साने ने समाज की ओर से एक मान-पत्र स्वीकार करने के लिये आपसे प्रार्थना की। वे पूना गायन-समाज के आश्रयदाता तो थे ही। अतः उन्होंने यह स्वीकार कर लिया। उस समय समाज की ओर से एक चांदी का छोटा सा बीन तैयार करके, उसके अन्दर एक मान-पत्र रखकर ड्यूक साहब को अर्पण किया गया था। यह समारंभ, बम्बई के गवर्नमेंट हाउस में हुआ था। इस प्रसंग पर साने मास्टर भी वहाँ थे। सरदार मजुमदार कै. भास्कर बुआ को पूना से बम्बई लाये थे। सरदार साहब ने ड्यूक साहब से भास्कर बुआ का परिचय कराया था। जब भास्कर बुआ से हस्तान्दोलन हुआ तो बुआ साहब ने अपने को धन्य समझ कर कहा था, "मेरा बड़ा सौभाग्य है कि, राज-घराने के लोगों से आज मुझ जैसे गवैये का प्रत्यक्ष-परिचय हुआ। सरदार मजुमदार की कृपा से यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। हम ठहरे साधारण गवैये। कैसे हम राज-घराने के लोगों को देख पाते?" कितनी भारी विनती?

प्रमुखों को चाहिये कि, वे समाज के उपकारकों की स्मृति-सूची में सरदार दाजी साहब रास्ते का नाम रखें। वे पूना गायन-समाज के ख़ज़ानची थे। उन्होंने अपना प्रशस्त दीवान खाना व कुछ कमरे मुफ्त ही समाज के काम के लिये दे रखे थे। यहीं अन्त, अर्थात् १९३५ तक गायन के वर्ग होते थे।

कै. साने मास्टर की समाज पर उत्तम देख-रेख थी। शाला का काम संभाल कर समाज की ओर भी उनका बड़ा ध्यान था। वे अनुशासन के भक्त थे। वे गायन-शास्त्र सम्बंधी एक अक्षर भी न जानते थे। तो भी अच्छे-अच्छे गवैयों के गाने मानो उन्होंने गढ़ रखे थे। यही उनकी विशेषता थी। जिस समय ड्यूक साहब भारत में पधारने वाले थे, उस समय समाज में भी आने का कार्य-क्रम निश्चित नहीं हुआ था। परन्तु, साने मास्टर की इच्छा थी कि, वे अवश्य ही समाज में आयें। उन्होंने इंग्लैंड लौटकर गये हुए गवर्नर से पत्रव्यवहार करके, यह इच्छा पूरी की, यह हकीकत ऊपर बताई जा चुकी है।

साने मास्टर बड़ी सादा प्रकृति के थे। सरकार-दरबार के समय भी वे धोती व काली टोपी, इसी पोशाक को पहने रहते, सरदार रास्ते को यह अच्छा न लगता था। अतः उन्होंने साने मास्टर के लिये एक पोशाक तैयार कराई, तथा सरकारी कर्मचारी लोग जब आते, तब वह नई पोशाक ही पहनें, यह उनकी प्रेम-पूर्ण शर्त थी। साने मास्टर ने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्होंने वह पोशाक पहन ली।

लगभग इसी समय प्रथम महायुद्ध में ख्याति-प्राप्त व मेसोपोटामिया में सैनिक अधिकारी, सर विलियम मार्शल भी साने मास्टर की प्रार्थना पर समाज में पधारे थे।

साने मास्टर का महत्व-शाली कार्य, बड़े-बड़े गवैयों के गाने व वादनकारों का कार्य-क्रम जनता के समक्ष प्रदर्शित करके समाज का सभासद बना लेना था। इसमें उन्हें यश भी मिला। सरदार मजुमदार ने भी साने मास्टर की बड़ी सहायता की। गवैयों की बैठकें, रास्ते साहब के बाड़े में ही होती थीं। कै. भास्करराव बखले, कै. वझे बुआ, कै. केशवराव भोंसले, मास्टर कृष्णराव, कै. गणपत बुआ भिलवड़ीकर, श्री. गोविंदराव टेंबे, इत्यादि गायक व वादक लोगों का कार्य-क्रम हुआ।

इनका गाना इत्यादि, इस बाड़े में हुआ, यह मुझे याद है। लग-भग १९२७-२८ का साल होगा, इस समय गान्धर्व-महाविद्यालय की ओर से पूना में जो संगीत-परिषद हुआ, उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। पं. विष्णु दिगंबर उस समय प्रमुख थे। संगीत-परिषद् के निमित्त आये हुए महमानों को पूना गायन समाज ने सादर आमंत्रित किया, तथा इस प्रकार एकत्रित समस्त गवैयों का गाना बड़ी हँसी-खुशी से हुआ; यह पूना में बहुत से लोगों को याद होगा। इस निमंत्रण में 'भारत गायन-समाज' ने भी भाग लिया था। 'पूना गायन-समाज' तथा 'भारत गायन-समाज' दोनों के सरदार मजुमदार ही अध्यक्ष थे। यह अपूर्व समारंभ कसबा पेठ में सरदार पुरंदरे के भव्य दीवानखाने में हुआ था।

दुर्दैव से साने मास्टर को काल ने हम से सदा के लिये छीन लिया; तथा इसके पश्चात् से समाज का भाग्य-चक्र फिर गया। दिन-दिन अवनति की ओर अग्रसर होने लगा। उसका मुख्य कारण साने मास्टर का निधन था। उन जैसा अनुशासन-पूर्ण

कमाने के साथ, निरपेक्ष-बुद्धि से कार्य करने वाला न होने के कारण समाज के दिन फिर गये। लग-भग उसी समय अपने वर्ग की ओर से सरदार मजुमदार कौन्सिल में चुन लिये जाने के कारण, उस उत्तरदायित्व का भार संभालते हुए समाज की देख-भाल करने का उन्हें समय ही नहीं मिलता था। फिर समाज के सेक्रेटरी श्री. मल्हार दासो दफ्तरदार का भी निधन हो गया। दफ्तरदार साहब ने भी पूना गायन-समाज के लिये बड़े बड़े कार्य किये। मेरा उनसे अच्छा परिचय था; तथा उनके स्मरणीय कार्यों को विचार कर ही, उनके पश्चात् उनका एक तैल-चित्र मैंने स्वयं अपने व्यय से बनवाकर पूना गायन-समाज को मेरे स्नेही मास्टर कृष्णा राव फुलम्ब्रीकर के कर-कमलों द्वारा अर्पण किया था। इसके अतिरिक्त कै. श्री. पां. वा. बापट, सरदार बाबासाहब जुन्नरकर देशपांडे, श्रीमंत गणपतराव उर्फ़ नाना साहब नातू, व कै. पां. जोशी ने भी सेक्रेटरी का काम किया था। इसी समय में समाज की ओर से स्वर-शास्त्र, तालादर्श, बाल-संगीत, गीत-विलास, तथा अंग्रेजी भाषा में 'डिप इन्टू इन्फिनिटी' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध हुए।

कुछ दिन बाद, श्रीमंत दाजी साहब रास्ते का भी देहावसान हो गया। अब तो समाज बिल्कुल ही अनाथ हो गया। आर्थिक-सहाय्य मिलना बंद हो गया। समाज में कोई भी उत्साही कार्य-कर्ता न रहा। शिक्षण-संस्थायें भी परस्पर अपने आप स्वतंत्र-शिक्षक रखने लगीं, जिससे वह मदद भी बंद हो गई।

शिक्षक-वर्ग में पहले अण्णा साहब घारपुरे, वस्ताद मुरार बुआ गोवेकर, बालकोबा नाटेकर, शंकर भैया (गुरव), गणपत बुआ भिलवड़ीकर, प्रो. गं. भी. आचरेकर, बलवंतराव केतकर, विनायक बुवा ठाकुरदास, बिन्तु बुआ गंधे, तथा रा. गोले, ये लोग थे।

इसके बाद भी समाज में अच्छे शिक्षक-गण थे। 'भारत गायन-समाज' के शंकर बुआ अष्टेकर, बाबूराव फड़के; नवीन श्रीकृष्ण संगीत-विद्यालय के चालक द. मो. जोशी, धुंडिराज बुआ छाठे; 'संगीत-भवनम्' के चालक साम्बे शास्त्री; फिडिल-वादन पटु जोशी व फड़के, इत्यादि लोगों ने अपना-अपना काम बहुत ही अच्छा किया। परन्तु, कालान्तर में समाज की आर्थिक-परिस्थिति बिगड़ जाने के कारण यह शिक्षक वर्ग कम हो गया।

सन् १९३४ में श्रीमंत सरदार मजुमदार ने समाज का हीरक महोत्सव मनाया। इस वर्ष गायन-समाज के ६० वर्ष समाप्त हुए थे। इसमें बहुत से बड़े-बड़े लोगों को बुलाया गया था, तथा समारंभ भली-भाँति समाप्त हुआ था। इस प्रसंग पर सरदार आबा साहब मजुमदार ने एकत्रित सभी लोगों से समाज की बिगड़ी हुई आर्थिक-परिस्थिति के विषय में निवेदन की, तथा उदार हाथों से समाज को दान देने के लिये प्रार्थना भी की थी; परन्तु उसका कुछ विशेष उपयोग न हुआ।

अब समाज की दशा सुधरना असंभव हो गया। इस से छुटकारा पाने का एक-मात्र साधन, दूसरी किसी और संस्था के साथ मिलकर काम करना ही निश्चित हुआ। इसके अनुसार 'भारत गायन-समाज', ने यह योजना स्वीकार करके, इन दोनों संस्थाओं का एकीकारण करना निश्चित हुआ। दि. १८ मई, सन् १९४० को अध्यक्ष, सरदार मजुमदार ने एक सभा बुलाकर, 'दोनों संस्थाओं का एकीकारण किया जाय,' यह ठहराव पास करा लिया।

अब, चालकत्व किस को दिया जाय, यह समस्या खड़ी हुई? अतः निश्चित हुआ कि, पूना में हुए सुप्रसिद्ध हार्मोनियम-वादन-पटु श्री. गोविन्दराव टैम्बे को समाज का संचालन सौंपा जाय।

इस एकीकरण के पश्चात्, समाज का नाम 'पूना भारत गायन-समाज' रखा गया। इसके लिये श्री. रास्ते के बाड़े में एक समारंभ हुआ। इस समारंभ के अध्यक्ष, श्री. वी. एस. भिड़े, आई. सी. एस. थे, तथा इसमें पूना के समस्त रसिक-लोग उपस्थित थे। स्वयं श्री. टेम्बे का हार्मोनियम-वादन, मास्टर कृष्णराव फुलम्ब्रीकर व श्री. बापूराव केतकर का गायन, यह कार्य-क्रम हुआ।

श्री. टेम्बे ने कुछ शर्तों पर समाज का चालकत्व स्वीकार किया था। कुछ कारणों से कै. रास्ते का बाड़ा न मिल सकने के कारण नातू साहब के बाड़े में वर्ग काम करने लगे थे। श्री टेम्बे की इच्छा थी कि, संस्था रजिस्टर्ड हो जाय। वह भी पूरी हुई। दि. १० अक्टूबर १९४० को श्री. टैम्बे साहब ने अपने हस्ताक्षरों से एक बयान निकाल कर एक समारंभ किया। वह विजयादशमी का दिन था, तथा कु. पद्म' का गाना हुआ था।

इस प्रकार, लगभग ४-५ महिने बीते, परन्तु कुछ मत-भेद के कारण श्री. टेम्बे ने वह काम छोड़ दिया। तब से भारत गायन-समाज की ओर ही इस समाज का नेतृत्व आगया, तथा

'पूना गायन–समाज का कार्य 'भारत गायन समाज' में ही चालू है।

सबसे पुरानी संस्था, पूना गायन—समाज का इतिहास इस प्रकार है। कई स्थानों पर बड़े—बड़े भाषणों का केवल सारांश ही दिया गया है, तथा उसी के अनुसार उसका उल्लेख भी किया गया है। इस संस्था की कुसमय के कारण यह दशा व इसका यह इतिहास रहा, इसे संस्था का दुर्भाग्य ही कहेंगे, नहीं तो और क्या?

इस लेख को लिखने में मुझे सरदार मजुमदार साः की बहुमूल्य सहाय्य प्राप्त हुई है। उन्हीं के ग्रन्थालय के 'हिन्दू म्यूज़िक,' 'राधा गोविंद संगीत–सार' इन–ग्रंथों का बहुमूल्य उपयोग हुआ है। कै. साने मास्टर के ज्येष्ठ व कनिष्ठ बंधुओं ने भी बहुत सी उपयुक्त जानकारी बताई है। अतः सब का आभार मानकर यह लेख समाप्त करता हूँ।

दि. २९ अगस्त १९४८ को 'स्कूल ऑफ् इन्डियन म्यूज़िक' बम्बई में श्री. लक्ष्मणराव जी पर्वतकर (लय–भास्कर)—'खाप्रू मामा–का विशेष सत्कार–समारोह हुआ और आप को श्रोताओं इत्यादि रसिकों की ओर से एक थैली सादर समर्पित की गई।

सितंबर में 'विहार' को प्राप्त विशेष आर्थिक–सहाय्य

१. प्रो. शंकर गणेश व्यास—(बंबई)......रु. १०१
२. प्रो. नारायण गणेश व्यास—(,,)......रु. १०१
३. प्रो. बी. आर. देवधर—(,,)......रु. १२५

कुल रु. ३२७

बेंगुर्ले में 'संगीत–मन्दिर' की ओर से कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर की १७ वीं पुण्य–तिथि, दि. २२ अगस्त को गायन-वादन के विशेष कार्य–क्रम का आयोजन करके श्री. वि. कृ. नेरुल-कर की अध्यक्षता में मनाई गई थी।

मंडल–वृत्त

गांधर्व–महाविद्यालय–मंडल की ओर से गत अगस्त महिने में बंबई, सातारा, कऱ्हाड़, नासिक, मनमाँड, दिल्ली और आनंद केन्द्रों पर प्रवेशिका प्रथम–द्वितीय, विशारद प्रथम व पदवी और संगीत–शिक्षा विशारद की परीक्षाओं में व्यास संगीत–विद्यालय, ऐकेडेमी ऑफ् इन्डियन–म्यूज़िक, बम्बई; श्रीकृष्ण संगीत-विद्यालय, दादर; संगीत–वर्ग, डोंबिवली; पार्सी पेटिट आर्फनेज, बांदरा; संगीत–विद्यालय, मनमांड; गांधर्व–महाविद्यालय सातारा; सरस्वती संगीत–विद्यालय, सातारा; गांधर्व–महाविद्यालय, कराड, इन संस्थाओं की ओर से व बाहर के सब मिलाकर २१६ विद्यार्थी बैठे थे।

'संगीत–विशारद पदवी' परीक्षा का परिणाम

(१)	सौ. विमल कट्टी	१ ली श्रेणी	[व्या. सं. वि. दादर]
(२)	श्री. रा. ना. वादिकर	,, ,,	[Ex. दादर]
(३)	,, जगन्नाथ विद्यालड	२ री ,,	[ऐ. इं. म्यू. गिरगाँव]
(४)	,, नाथी राम	,, ,,	[Ex. मुज़फ्फरनगर]
(५)	,, माधव माईणकर	,, ,,	[Ex. कराड]
(६)	,, माधव इंगले	,, ,,	[Ex. सातारा]
(७)	,, नटवर नायक	,, ,,	[ऐ. इं. म्यू. गिरगाँव]
(८)	,, गंगाधर जोशी	२ ,, ,,	[Ex. नासिक]
(९)	,, रघु नाथ देशपांडे	,, ,,	[Ex. सातारा]
(१०)	कु. मालती चोकदार	,, ,,	[स. सं. वि. सातारा]
(११)	श्री. विष्णुराव अष्टपुत्रे	,, ,,	[Ex. सातारा]
(१२)	*नूरजहाँनबाई इनामदार*		[गां. म. वि. कराड]

संगीत–शिक्षा विशारद

श्री. गोविंद प्रसाद त्रिवेदी २ री श्रेणी [आनंद]

प्रो. वसन्तराव राजोपाध्ये
[सेक्रेटरी]

मेरी सुनी हुई महफ़िलें

[लेखक—श्री. कृ. मुजुमदार संगीत-विशारद देवास (सी.)]

(१)

लखनऊ की संगीत-परिषद (१९३५)

मरहूम मंजी खाँ का अप्रतिम कसबी-गायन !

संगीत-सम्राट रजब अली खाँ साहब का हृदयंगम उपसंहार !!

अपने इंजिनियरिंग के अध्ययन-काल-१९३३ से ३५ तक लखनऊ में, वास्तव में, मैंने 'गायन-देवता' की उपासना भी की और अनेकों कलावंतों के कौशल्य का भरपूर आस्वाद भी लिया। उस समय की अनेकों स्मृतियाँ रंजक व उद्बोधक हैं; परन्तु गंगा प्रसाद मेमोरियल हॉल में हुई १९३५ की 'म्यूज़िक कॉन्फरेन्स' व उसके अन्तिम-दिन चखे हुए उस संगीतामृत की मिठास तथा उसका आनंद पुनः प्राप्त होना, बस, असंभव सा ही है।

मेरी इंजिनियरिंग की परीक्षा हो चुकी थी, फिर भी मैं लखनऊ में ही रमा हुआ था। यह देख मेरे मित्रों व सगेसंबन्धियों को अत्यन्त आश्चर्य होता था; किन्तु बात लाइलाज थी। मॉरिस म्यूज़िक कॉलेज के प्रिंसिपल प्रो. रातंजनकर ने 'संगीत-परिषद' का आयोजन किया था, तथा उसकी स्वागत समिति के एक प्रमुख-कार्य पर मैं नियुक्त किया गया था। मैं कलावंतों की आव-भगत में भूख-प्यास तक भूल गया था, फिर घर की तो किसे याद आती? अनुभवी लोग स्वयं जान सकते हैं कि, गायन—रसिक को तरुणावस्था में कलावंतों के प्रत्यक्ष—सहवास का कितना आकर्षण होता है? तब वह मुझे एक पर्वणी सी यदि प्रतीत हुई, तो कुछ नवीनता एवं आश्चर्य नहीं।

मैं व मेरे आधीन काम करने वाले उत्साही विद्यार्थी स्वागत-समिति के कार्य में तन्मयता पूर्वक रंग गये। निवास-स्थानों को सुसज्जित रखना, खान-पान आदि देखना, स्टेशन पर स्वागतार्थ जाना, मेहमानों की आवश्यकताओं की कमी—बेशी का ध्यान रखना, इत्यादि कामों में हम निपट मग्न हो गये।

अल्लाउद्दीन [illegible], विलायत खाँ, रजब अली खाँ, [illegible] खाँ, उस्मान खाँ, अब्दुल अज़ीज़ [पटियाला], इत्यादि कलावंतों के आगमन की बातों मुझे कुछ विशेषतः न रिझा सकीं; क्योंकि उनमें से कुछ का गाना इत्यादि मैंने १९३४ के परिषद के समय इलाहाबाद में सुना था। रजब अली खां तो अपने ही थे। मेरे ही गाँव के। उनके सैकड़ों गाने मैंने सुने थे; किन्तु कोल्हापूर के मंजी खाँ आने वाले थे, इस बात ने मुझे अत्यंत ही उत्साहित किया था। मंजी खाँ की बड़ी तारीफ़ सुनी थी। रजब अली खाँ के सहवास के कारण मैं तानांगों का तो भक्त था। तान में यदि कोई लचकपन लगता तो मेरे माथे में तुरन्त एक ठनका सा बैठता था। उस समय मैंने अल्लादिया खाँ, केसरबाई तथा बड़े गुलाम अली, इन श्रेष्ठ कलावंतों का नहीं सुना था। केवल, रजब अली खाँ की तान बाज़ी क्या थी, इसका ही मुझे ज्ञान था। किन्तु, जब मैंने मंजी खां के अप्रतिम तानांग सुने, तब मैं बड़ा उत्कंठित हुआ।

कलावंतों के रहने का प्रबंध 'मौरिस म्यूज़िक कॉलेज' व उसके समीपवर्ती वसति-गृह में किया गया था। समस्त कमरों में सब साधनों की सुविधा हमने की थी। स्टेशन पर मेहमानों का आगमन शुरू हुआ; किन्तु, मैं तो मंजी ख़ाँ को देखने के लिये उत्सुक था। उन्हें स्टेशन पर पहचाना कैसे जाय, यह प्रश्न उत्पन्न हुआ? लखनऊ में उन्हें किसी ने भी न देखा था। उत्तर हिन्दुस्तान में उस समय उनका नाम भी विशेष प्रसिद्ध न था। इस समय तक फैयाज़ खां, अल्लाउद्दीन सरोदिये; हाफ़िज़ अली खां; इनायत हुसैन सतारिये; मुश्ताक हुसैन, रामपुर, तिरकवा तबलिये; ये ही लोग विख्यात थे। बम्बई में श्री. नारायण राव व्यास पं. ओंकारनाथ, श्री. विनायक राव पटवर्धन, बस इतने लोगों को ही जानते थे। स्त्रियां तो परिषद में भाग नहीं लेती थीं। अस्तु, लखनऊ में रहने वाले एक महाराष्ट्रीय विद्यार्थी ने मंजी खां के विषय में

हिन्दुस्तानी गायक-पद्धति के जन्मदाता

ना. प्र. योगी श्री. स्वामी हरिदास जी

[लेखक—पं. दिलीप चन्द्र वेदी]

[मई मास के अंक से आगे]

......यूँ तो न जाने स्वामी जी से, कितनों को सङ्गीत-प्रसाद मिला होगा; परन्तु, जिन व्यक्तियों को अपार—ख्याति प्राप्त हुई उनके शुभ नाम हैं; बाबा रामदास, (गायक व कवि सूरदास जी के पिता) पञ्जाब के पं. दिवाकर, सोमनाथ तथा बैजू बावरे, संयुक्त प्रान्त के बाबा मदनराय, गोपाल लाल तथा संसार प्रसिद्ध श्री पण्डित तानसेन जी।

श्री. स्वामी जी की सेवा में रहकर इन प्रतिभाशाली शिष्यों ने गायनाभ्यास के साथ-साथ सं• शास्त्र के गूढ़ भेदों को भी समझा। वर्तमान शुद्ध स्वर सप्तक का निर्णय भी यहीं पर हुआ। २२ श्रुतियों में से "१८ ही गानोपयोगी हैं" यह भी निश्चित हुआ। मुख्य छः रागों के मिश्रण से अनेक रागों की, उत्पत्ति कैसे हुई, मूर्छना, ग्राम, आरोहावरोह, वादी, संवादी, अंश, न्यास, ग्रह इत्यादि का, 'रागालाप' तथा 'तालबद्ध—गायन' में, किस स्थान पर, क्या आवश्यकता तथा महत्व है, यह सब स्वामी जी ने अपने सुयोग्य शिष्यों को बतलाया था। रसानुकूल गायन की शिक्षा भी स्वामी जी ने इन सुपात्रों को दी और इन्हीं संगीत-प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा हिन्दुस्तानी गायन-पद्धति का प्रचार, भारतवर्ष में हुआ।

श्री बैजू नायक, प. सोमनाथ, प. दिवाकर द्वारा पंजाब-प्रान्त में, हि. गा. पद्धति का प्रचार हुआ। बाबा रामदास, व बाबा मदन राय, ने ग्वालियर तथा राजस्थान में ध्रुपद गान को प्रचलित किया। पहिले बुन्देलखंड के रीवां-राज्य में, फिर अकबर के साम्राज्य में, श्री तानसेन जी ने हिन्दुस्तानी गाने की विजय-पताका फहराई। एशिया-भर के गायक वादकों के दिलों पर हिन्दुस्तानी गायन की छाप, सदैव के लिये लगा दी। यहां तक कि सम्राट अकबर को श्री तानसैन जी के पूज्य गुरु स्वामी हरिदास जी का अद्भुत गायन सुनने के लिये स्वयं वृन्दावन की यात्रा करनी पड़ी। इसी ध्रुपद-गायन का आश्रय लेकर बंगाल में कीर्तन-गान की नींव पड़ी।

मद्रास-प्रान्त को छोड़ कर शेष सारे भारत में जो शास्त्रोक्त गायन-वादन हो रहा है, इसका श्रेय भी स्वामी हरिदास जी तथा उनके शिष्य-वर्ग को ही है। स्वामी जी के यह सुयोग्य शिष्य, केवल कुशल गायक ही नहीं थे; अपितु, श्रेष्ठ कवि भी। अर्थात् ये गायन तथा राग-वागेयकार (composer) दोनों ही थे।

इन संगीताचार्यों ने भी, हजारों नवीन ध्रुपद, धमार, त्रिवट, चतुरंग तराने, पटताल, धीरू, राग मालायें, स्वर मालायें इत्यादि की रचना की, जिन्हें वर्तमान गायक-समाज अब भी बड़ी श्रद्धा तथा चाव से गा रहा है।

(ख्याल गायन)

इसी ध्रुपद, आलाप तथा धमार गायन का प्रतिबिंब "हिन्दुस्तानी ख्याल गायन" है। आप कहेंगे कि ये कैसे! "ख्याल तो अमीर खुसरो की ईजाद (Invention) है।" यदि आप शान्तचित्त होकर विचार करें तो यह बात असत्य प्रमाणित होगी, क्यों? इसलिये कि अकबर के दरबार में हिन्दुस्तानियों के अतिरिक्त ईरानी व अर्बी गायक थे। उस समय के ग्रंथों में तथा आईने-अकबरी' में ध्रुपद-गायकों का वर्णन बार-बार मिलता है; परंतु हिन्दुस्तानी ख्याल-गायकों "की चर्चा नहीं दिखती। ऐसा ख्याल गायक अभी तक नहीं सुना जो कि अमीर खुसरो या सुल्तान मुहम्मद शर्की के रचे हुए हिन्दुस्तानी ख्याल गाता हो। यह तो केवल अर्बी व ईरानी संस्कृति अनुरागियों की आत्मवंचना व लोकवंचना है। आज भारत में जो 'ख्याल गायन' लोक प्रिय हो रहा है यह, किसी अर्बी, ईरानी अथवा मुग़ल गायक की देन नहीं है। यह तो हिन्दी ध्रुपद, धमार और अलाप गायन का एक मिश्रण है। वही राग हैं, वही आरोहावरोह, वही अस्थाई, वही अन्तरे, वही वादी सम्वादी, वही ताल वही लय के दर्जे हैं। आप कहेंगे कि, फिर भिन्नता क्या है?

श्री तानसैन जी की बेटी के वंशज, श्री न्यामत खाँ नामी प्रतिभाशाली गायक हुए हैं। ये मुहम्मदशाह (रन्गीले) के दरबारी गायक थे, और अब 'सदारंग' जी के उपनाम से प्रसिद्ध हैं। 'सदारंग' जी स्वयं कुशल आलापिये तथा धृपद गायक थे। उन्होंने पुराने धृपदों का आश्रय लेकर नये बोल बाँधे और उनका नाम "अस्थाई व ख्याल" पड़गया। धृपद गीतों के "अस्थाई व अन्तरा" के भाग तो ले लिये; परन्तु 'संचारी व आभोग' छोड़ दिये। धृपद की गम्भीर गमकों के अतिरिक्त मुर्की व ज़मज़मा भी स्थान-स्थान पर रख दिये। शृंगार-रस की कविता तथा उसके साथ राग-विस्तार भी उचित मान लिया गया, अतः ये ख्याल-गीत शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये। सर्व साधारण लोग तथा सामान्य बुद्धि के कलाकार नई चीज़ (Composition) की ओर शीघ्र आकर्षित हो जाते हैं और उसकी नकल (Emulate) करने लगते हैं। अनेक ख्याल-गीतों की स्वर-रचना बहुधा धृपदों पर ही है; बोल (शब्द) बदले गये हैं।

इसके लिये कुछ ठोस प्रमाण देना ज़रूरी है। सुनिये प्राचीन धृपद "आयो री जीत रामचन्द्र" और अब देखिये ख्याल "बाजे झन नन पायलिया मोरी" और "जोबन दुपहर की छैयाँ" तथा 'नेवरिया झांज री'। स्वर-रचना वही है, केवल बोल नये हैं। अब देखिये स्वामी हरिदास-कृत धृपद "है तू ही आदि-अन्त गुप्त-प्रकट" और अब सुनिये ख्याल "हे मा पी संग खेलें फाग।" अब देखें धृपद "घन घन घावो री" और ख्याल "धन धन भाग जाग।" ऐसे असंख्य प्रमाण दिये जा सकते हैं। "ख्याल" शब्द तो फ़ारसी भाषा का है; परन्तु कविता हिंदी है और स्वर रचना, तथा गायकी हिंदुस्तानी है। अरब ईरान अथवा मंगोलिया में कोई भी गायक यह गायकी नहीं गाता, जो कि हिंदुस्तानी ख्याल गायक गाते हैं।

अनेक प्राचीन धृपदों की बन्दिश (स्वर-रचना) किंचित हेर-फेर कर के उन्हें विलम्बित ख्याल कह कर गाया जा रहा है। अनेक प्राचीन झपताल के धृपद अब 'सादरे' कह कर पुकारे जाते हैं। प्राचीन 'त्रिताले' तथा 'द्रुत-ख्याल' के नाम से पुकारे जा रहे हैं। हमारे तथाकथित आधुनिक सुशिक्षित ग्रन्थकार भी इस वास्तविकता को समझने का प्रयत्न नहीं करते, या फिर इस भ्रम का निवारण करने का साहस ही नहीं कर पाते। प्राचीन धृपद अधिकतर रसानुकूल ही रचे जाते थे। शान्त-रस, वीर-रस, भक्तियुक्त शृंगार-रस इत्यादि का आविर्भाव धृपद-गीतों में ही भली प्रकार हो पाया है।

संगीत पर ग्रन्थ लिखना यद्यपि अच्छा कार्य है; परन्तु संगीत साधना द्वारा अशांत मानव समाज की सेवा करना, तथा उत्तम गायक, वादक तैयार करना ग्रन्थ लिखने से कहीं अधिक हितकर है। संगीत ज्ञानप्रधान नहीं अपितु, कर्मप्रधान है। संगीत के समूचे ग्रन्थ का पाठ कर लेने पर भी वो सुख नहीं मिलता, जो कि एक मिनट के सुरीले गायन-वादन से प्राप्त होता है। संगीत का आनंद उस की जन्म-कुंडली देखने से प्राप्त नहीं हो सकता। सच्चा संगीताचार्य वह ही है, जो कि वास्तविक मधुर-गायन या वादन कर सके।

नाद ब्रह्मयोगी स्वामी हरिदास जी पहले स्वयं महान् संगीताचार्य बने फिर अनेक गायनाचार्य तैयार करने में उन्होंने अपना जीवन व्यतीत कर दिया। उन्हीं अद्वितीय संगीताचार्यों की हिन्दुस्तानी गायन-पद्धति आज हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है।

प्रातः स्मरणीय संत कवि तुलसीदास जी ने जिस प्रकार हिन्दी साहित्य द्वारा मर्यादा धर्म की रक्षा की, उसी प्रकार श्रीयुत स्वामी हरिदास जी ने हिन्दुस्तानी गायन-पद्धति का अविष्कार करके भारतीय-संगीत की रक्षा की। स्वामी जी केवल महान् संगीताचार्य तथा कवि ही नहीं थे। वो तो नादब्रह्मयोगी, सरस्वती-मन्दिर के पुजारी, महायोगी भगवान कृष्ण के अनन्त—भक्त थे। किसी एक ही व्यक्ति के लिये महान् गायक, श्रेष्ठ-कवि और योगी होना महा दुर्लभ है। शताब्दियों बाद करोड़ों में कोई बिरला ही होता है।

यह उसी संगीत-महात्मा व निःस्वार्थ संगीत-प्रचारक के प्रति एक साधारण सी श्रद्धांजलि है।

ऑल इन्डिया रेडियो, बंबई केन्द्र पर दि. २१ अगस्त को कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर की १७ वीं पुण्य-तिथि के निमित्त विशेष कार्य—क्रम में भाग लेनेवाले कलाकार।

प्रो. देवधर के स्कूल आफ इंडियन म्यूज़िक में गु. कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर की १७ वीं पुण्य तिथि समारंभ के समय श्री. पन्नालाल जी घोष फ्लूट बजा रहे हैं।

गां म. वि. मंडल, दादर की ओर से कै. पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की १७ वीं पुण्य तिथि बड़ी धूम-धाम से मनाई गई।

संगीत-समाज कानपूर की ओर से स्व. गु. पं. विष्णु दिगंम्बर जी की १७ वीं पुण्यतिथि स्थानीय म्युनिसिपल गर्ल्स हाई स्कूल के हाल में रविवार दिनांक २२ अगस्त को मनाई गई। प्रयाग के श्री. वामन नारायण ठकार, श्री. महेश नारायण सक्सेना और कु. माधव ठकार, पुण्यतिथि में सम्मिलित होने के लिये विशेष रूप से आये थे।

★

समाज की ओर से शुक्रवार दिनांक ३ सितम्बर को सायंकाल में बालिका-विद्यालय इंटर कॉलेज के हॉल में पूना के प्रसिद्ध गायनाचार्य पं विनायकराव पटवर्धन, बनारस के श्री. (छोटे) रामदास जी का सुमधुर गायन और झांसी के उस्ताद बफ़ात खाँ का ढोलक-वादन इत्यादि कार्यक्रम हुये।

इस मास में [सितंबर] स्व. गु. पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी की पुण्यतिथि समाज की ओर से मनाई जारही है।

मंत्री —**संगीत-समाज** कानपूर

★

ऐकैडेमी ऑफ इन्डियन म्यूज़िक की ओर से श्री. नवरंग नागपूरकर ने कै. पं. विष्णु दिगंबर जी पलुस्कर की १७ वीं पुण्यतिथि के भव्य-समारोह का आयोजन दि. २८ अगस्त को लक्ष्मी बाग, बम्बई ४, में किया था।

★

पूना में खप्रू जी मामा (लयभास्कर) के सत्कार के समय भाग लेने वाले रसिकगण एवं कलाकार

संगीतकार का जीवन

मूल लेखक—श्री. प्राणलाल वी. शाह
अनुवादक—श्री. बिहारीलाल जी

सच्चा कलाकार अपनी कला में अहर्निश मस्त रहता है। उसे अपनी कला के विकास के अतिरिक्त और किसी विषय से दिलचस्पी नहीं होती। सामन्यत: लोग ऐसे मस्त कलाकारों को धुनी कहते हैं। अत: प्रत्येक कलाकार दुन्यवी दृष्टि से धुनी ही कहा जाता है। उसमें भी संगीत कलाकार की धुन याने हद हो गई। उनकी धुन का मुक़ाबिला करना असंभव है। इच्छा न हो, मन न हो, तो हज़ारों रुपये देने पर भी वह अपनी कला-प्रसादी प्रदान न करेगा, अर्थात् अपना संगीत किसी को भी न सुनावेगा। किन्तु कभी कोई आकस्मित एक चाय के प्याले की मुहब्बत में, पान सीगारेट की लहर में मशगूल बने तो घण्टों तक गाया करें। आग्रह न हो, श्रोताजन का अभाव हो, तब भी वह गाया करे। ऐसे धुनी होते हैं संगीतकार!

संगीत साधक:—हर एक संगीतकार ज़िन्दगी के अन्त तक संगीत साधक होता ही है; किन्तु यहाँ पर संगीत सीखना आरंभ करने वाले, जिसे भविष्य में महान् संगीतकार बनने की महत्वकांक्षा है, उसके जीवन का निरीक्षण करें।

संगीत–साधक को प्राय: तीन प्रकार की आवश्यकतायें होती हैं:- (अ) कुदरती अनुकूलता (ब) सच्चा गुरु याने उस्ताद (स) सच्ची महनत याने रियाज़।

(१) कुदरती अनुकूलता:—किसी भी कला में निपुण होने के लिये पहले कुदरती अनुकूलता की आवश्यकता होती है। गायक बनने की ख्वाहिश रखनेवाले विद्यार्थी को कुदरत ने मधुर, बलेदार फिरतयुक्त आवाज़ याने कंठ दिया हो, तो वह अपने ध्येय का बहुत आसानी से विकास कर सकता है। उसी भाँति वाद्य में प्राविण्य प्राप्त करने वाले को कुदरत ने हलका फुल्का हाथ दिया हो, नृत्यकार को कुदरत ने मरोड़दार अंग दिये हों, तो वह नि:संदेह अपनी प्रगति अच्छी तरह से कर सकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, कुदरत ने हर एक को कला समझने के लिये योग्य बुद्धि दी हो।

(२) सच्चा गुरु [उस्ताद]:—कुदरती अनुकूलता हो; किन्तु जिस कला को साध्य करना हो उसकी राह बतानेवाला सच्चा उस्ताद न हो, तो किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। सद्भागी को ही सच्चे उस्ताद से विद्या प्राप्त हो सकती है; लेकिन कोई ऊट पटाँग लेभगू गुरु के हाथ में अगर फँस गये तो बस बड़ी भारी उलझन में फँसे।

सच्चे संगीत-गुरु की प्राप्ति के पश्चात् भी उनसे विद्या प्राप्त करना कोई मामूली बात नहीं। गुरु के घर रहकर विद्यार्थी, गुरुजी जो काम बतायें, नि:संकोच करें। पुराने ख्यालात के उस्तादोंसे अगर विद्या प्राप्त करना हो, तो मानो लोहे के चने चबाना है। रात दिन याने चौबीसों घण्टों तक उनकी तबियत को सम्हाले रहना, हुक्का पानी भर देना, थूँकदानी को साफ़ करना, पान बीड़ी इत्यादि अनेक तरह की आदतों को ठीक-ठीक सम्हालते रहना, फिर भी, न जाने उस्ताद जी कब प्रसन्न होकर विद्या प्रदान करेंगे, यह कहना अनिश्चित है। प्रथम एक दो वर्ष उस्ताद जी के पीछे बैठकर तुंबूरे को छेड़ना और उसके मधुर संगीत का सिर्फ़ पान करते रहना पड़ता है। कभी किसी वक्त ग़लती भी हो जाय तो अच्छी तरह से प्रसादी भी मिल जाये, ऐसे कठिन वर्ष गुरज़ने के पश्चात् गुरु भक्ति से प्रसन्न उस्ताद जी सच्चे दिल से विद्या प्रदान करें तो बस उसका नसीब जग उठे। इतना करते हुए भी वे दिली से ही शिक्षा देते हैं। इसीलिये सच्चे गुरू की आवश्यकता है, जो सच्चे दिल से विद्या प्रदान करे।

(३) सच्ची महनत—गुरू से प्राप्त की गई विद्या या प्राप्ति के समय के बाद उसका योग्य रियाज़ चार २ छ: २ घण्टों तक किया जाये, तभी वह विद्या हज़्म हो सकती है। नहीं तो सब भूल जायें। महनत भी सच्ची होनी चाहिये। उल्टी महनत से प्राप्त की गई विद्या व्यर्थ जाती है। गायन या वादन विद्या में छ:-छ: घण्टे की महनत तो सच्चे साधक के लिये कुछ नहीं। कहा जाता है कि, पं. विष्णु दिगंबर जी जब

के. गुरुवर्य बालकृष्ण बुआ के पास सीखते थे, तब बारह–बारह चौदह-चौदह घण्टे की सतत महनत करते थे।

इसी तरह बारह-बारह या पंद्रह–पंद्रह वर्ष की अखण्ड संगीत-साधना के पश्चात् उस विद्या का सच्चा मर्म प्राप्त होता है और गायक, वादक अथवा नृत्यकार के नाम से ख्याति संपादन हो पाती है।

निवास स्थान:— संगीतकार को अपनी कला की साधना के लिये एकांतवास निहायत जरूरी है। अच्छे संगीतकार अपने जीवन निर्वाह के लिये अधिकतर शहरों में वास करते हैं। बड़े शहरों में रहना आर्थिक दृष्टि से जितना योग्य हो उतना ही किराया देकर गुज़ार करना पडता है। घनी आबादी में यह वास असंभव है। इस लिये कम आबादी वाली बस्ती में रहना पड़ता है। उसमें भी अगर पडौसी संगीत-प्रेमी हो, तो उसके साथ रहना सुलभ होता है नही तो हमेशा झगड़ा बना रहता है; क्योंकि संगीतकार की दुनियां याने आवाज़ की दुनियां। बधिर के सिवाय हर एक के कानों तक आवाज़ पहुंचती है। इस आवाज़ से जो प्रफुल्लित होता है, वही उसका दोस्त होता है। हमेशा दोस्तों की दुनिया में रहना ही सबको अच्छा लगता है। दूसरे कलाकारों से अधिकतर संगीतकार को अपनी आवाज़ की दुनिया के कारण वास का प्रश्न अति जटिल हो जाता है। दिन हो या रात, चाहे जिस समय गाना बजाना हो। जलसा हो, तो समय बेसमय आना-जाना होता है, जिससे पड़ौसी कारण अकारण मुसीबतों का अनुभव करते हैं। बम्बई में एक-आध वर्ष पूर्व एक ऐसी घटना हो चुकी है। एक मंजिल पर दो पड़ौसी रहते थे। एक को संगीत का शौक़ । वह रात को भोजन के बाद हार्मोनियम छेडकर यथाशक्ति गाता। पाड़ोसी उसके संगीत से पसीजा नहीं उसे सिर्फ चिल्लाहट लगी। दो चार बार संगीतकार को अपनी चिल्लाहट बंद करने के कहा; लेकिन एक बार बात बढ़ गई और संगीत को चिल्लाहट मानने वाले ने उत्तेजित होकर उस संगीत शौक़ीन का ख़ून कर दिया। मतलब यह कि, ख़ासतौर पर संगीतकार के लिये निवास का प्रश्न अत्यावश्यक उपस्थित होता है।

B. B. Sitar Maker

बाबू बालासाहब

सितार, तंबूरा, ताऊस, दिलरुबा, बीन आदि

तंत साज़ों के पुराने कारीगर

पता— स्टेशन रोड, मिरज (S.M.C.)

निवासस्थान का प्रश्न सुलझ जाने के बाद दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है। रियाज कैसा ही बड़ा संगीतज्ञ हो उसे; किन्तु उसके लिये भी नियमित रियाज़ निहायत–लाजिमी है। अगर रियाज़ नियमित नहीं, तो गायक वा वादक के लिये कला विसर्जन का भय होता है; कई संगीतज्ञों के जीवन में यह हुआ है। मास्टर कृष्णराव ने कै. भास्करराव बखले के पास से संगीत विद्या प्राप्त की थी। वे महानुभाव नाटक कंपनी में गये, तत्पश्चात् प्रभात फिल्म कंपनी में म्यूज़िक डायरेक्टर हुए। इस व्यवसाय में गुरू से प्राप्त की हुई विद्या क्षीण होती गई और ऊपर ऊपर की गायकी ने सच्ची विद्या का स्थान ले लिया है, ऐसा ख्याल बड़े बड़े संगीतज्ञों में उत्पन्न हुआ है। हर एक गायक को चाहिये कि, नियमित शुद्ध स्वर साधना एवं महनत करें; ताकि उपर्युक्त कथन उसके जीवन में न कहा जा सके। इसी तरह ज़िन्दगी के अन्त तक हर एक संगीतकार को स्वर की आराधना करते ही रहना पड़ता होता है।

आश्रय:—जो राजाश्रित बनकर दरबार–गायक की तौर पर रहते हैं, उनका जीवन आसान हो जाता है। वे आजिविका की चिंता से विहीन हो जाते हैं, जिससे अपना गुज़ारा शांतिपूर्वक कर सकते हैं और स्वेच्छा से दूसरों को विद्या प्रदान कर सकते हैं। अगर राजा संगीत की क़द्र करने वाला हो, तो संगीतकार राजा का भी राजा बन सकता है और उच्च मान प्राप्त कर लेता है। लोकाश्रित संगीतकार का जीवन सिर्फ़ विद्यालय में और अन्य शिक्षण संस्थाओं में व्यतीत होता है, जिससे आश्रय का कोई नियम या धारा धोरण नहीं होता अपने–अपने नसीब के मुताबिक़ अर्थोपार्जना करते रहते हैं।

स्मारक–ध्वनि मुद्रिका (Record) और शिष्य परंपरा द्वारा संगीतज्ञ का स्मारक रह सकता है; लेकिन दूसरे कलावंतों की तरह तो नहीं। उसका कारण यह है कि यह कला प्रत्यक्ष है। एक चित्रकार व शिल्पकार अपनी सच्ची

प्रतिभाशाली कृति को जगत के समक्ष रख कर अपना नाम मशहूर कर सकता है। अपनी उस श्रेष्ठ कलाकृति द्वारा वह दुनिया के समक्ष अपने संस्मरणों को सतेज कर सकता है; लेकिन संगीतकार के लिये यह संभव नहीं है। तानसेन, स्वामी हरिदास इत्यादि महान् गायक थे; किन्तु आज उनके प्रत्यक्ष प्रमाण के लिये हमारे पास क्या है? उनकी कला का कौनसा अंश हमारे पास है कि, जिसे हम अच्छा कह सकें या प्रमाण दे सकें? दंतकथाओं का न आदि है न अंत। एक के बाद अनेक दंतकथाओं की हारमाला चली आ रही है। तानसेन के वंशपरंपरागत गायक किसी भी मौजूद हैं; लेकिन उनके द्वारा हम क्या तानसेन की उच्च गायकी को प्रामाणित सकते हैं?

ध्वनि-मुद्रिका द्वारा कुछ स्मारक रह सकता है, पूर्ण तो नही संगीत एक प्रकार की हवा है। जो इस हवा को पूर्णतया बाँध सकता है, वही सच्चा संगीतकार हवा तो आई सो आई और गई सो गई। हर एक संगीतकार एक ही महफ़िल में एक सरीखा रंग क्यों नहीं जमा सकता कारण अनेक होते हैं। गायक, वादक तथा श्रोतागण इन तीनों की उस वक्त की मानसिक स्थिति पर ही यह ज्यादातर निभर है। हम अनेक बार सुनते हैं, कि कल गवैये ने एक बैठक में जैसा गाया, सा दूसरी बैठक में कभी नही गाया। बात ठीक है। तो फिर अब उसके कोई गीत का रेकार्डिंग किया गया हो, तब पूर्ण रंग से, पूर्ण कला को उस वक्त प्रदर्शित की है, ऐसा क्यों कर माना जाय? सामान्यतः अच्छे-अच्छे गवैये एक राग को डेढ़ घण्टे तक गाते रहें व इस में आरंभ से अंत तक प्रत्येक अंग को पूर्ण कला से प्रदर्शित कर सकें, यह नामुमकिन है। तो रेकार्डिंग में सिर्फ पांच-सात मिनिटों में अपनी कला का प्रदर्शन क्या संभव है? तात्पर्य यह है कि, कोई भी संगीतकार का स्मारक अपने गुणों को पूर्णतया प्रदर्शित नहीं कर सकता। प्राचीन समय से आज तक हर एक देश के अच्छे से अच्छे शिल्पकार, चित्रकार या अन्य कलाकारों के स्मारक उनकी कला के नमूने के द्वारा चिरव्यापी है; लेकिन हिंदी संगीतज्ञ के स्मारक, सिवाय दंतकथा के और क्या है?

अभिप्राय

'कोलंबिया' की ओर से माणिक दादरकर की रागदारी संगीत की ध्वनि-मुद्रिका (G. E. 8007) प्रकाशित हुई है। एक ओर मारवा व दूसरी ओर ठुमरी का सुन्दर संयोग है। माणिक दादरकर, एक उदयोन्मुख गायिका होने के कारण, उन्होंने 'मारवा' राग को अच्छा रंगा है। मारवा की कुछ हरकतें नया हैं। समस्त ध्वनि-मुद्रिका में एक भी बोल-तान नहीं है, यह एक नवीनता है। ठुमरी भी बड़ी अच्छी है। मधुर-कण्ठ से निकले हुए भावपूर्ण आलाप श्रोताओं का मन मोह लेते हैं। चलत-बाज़ को अन्त में बहुत ही थोड़ा सा समय मिला, जिससे ध्वनि-मुद्रिका अपूर्ण सी प्रतीत होती है। चलत-बाज़ के मज़े को चखते-चखते ही बीच में जो तांता टूटा सा लगता है, उसे छोड़कर सम्पूर्ण ध्वनि-मुद्रिका संग्रह हैं। माणिक दादरकर के गाने में जो अभाव रह गया होगा, उसे यह ध्वनि—मुद्रिका अवश्य पूर्ण कर देगी।

—'रसिक'

पंढरीनाथ
ब्रिलियन्टाईन, आवळेल तेल, निलगिरी, आयडिन
मेण व कुंकू डबी, गंध वगैरे भरपूर स्टॉक
पंढरीनाथ डिपो बंबई नं. २८

(सूचना)

सितम्बर के अंक में जिस 'राष्ट्रीय गीत' का नोटेशन दिया गया था, उसके 'मूल-स्वर-रचयिता' के विषय में जो हमें शंका थी, उसका समाधान पं. रविशंकर जी ने किया। आप ने बताया कि, 'सारे जहाँ से अच्छा' नामक गीत की मूल-स्वर-रचना आप ने स्वयं (पं. रविशंकर जी ने), जब आप इन्डियन पीपुल्स थिएटर्स में थे, की थी।

पुरानी ख़ानदानी चीज़

(१)

राग मालकौंस (झपताल)

" नीचे दी हुई चीज प्राचीन है, तथा वह भिन्न-भिन्न घरानों में गाई जाती है। यह मुझे खां साहब सिंधी खां से मिली है। म. खां अल्लादिया खां यह चीज गाते थे; किन्तु उनके अंतरे की अन्तिम पंक्ति थोड़ी भिन्न है। वह भी नीचे दी गई है। "

बी. आर. देवधर

मालकौंस राग भैरवी थाट में से निकलता है। उसमें ऋषभ व पंचम ये दो स्वर वर्ज्य हैं; अतः जाति औडव-औडव है। गांधार, धैवत, व निषाद, ये स्वर कोमल हैं। वादी मध्यम व संवादी षड्ज है। गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है।

आरोहावरोह-स्वरूप

नी सा ग , म, ध नी सां | सां नी ध म, ग म ग सा

चीज के शब्द

हम भये जोगी अंगस जगत छांड | महरबानी करो
दरशन दो प्रभु, तुम हो रूप अनूप जगत सार।

(अंतरे का दूसरा पाठ)

महरबानी करो—दरशन दो प्रभु, तुम हो अखिल ब्रम्हांड ॥

अस्थाई

			नी नी
नी सा	ग म ध नी सां	सां —	ध ध म
ह म	भ ऽ ऽ ऽ ये	जो ऽ	गी ऽ ऽ
×		२	३
म	सां म		ग
नी ध	नी सां नी	ध म म ग	नी सा सा
ज	ग म अ	ग ऽ त ऽ	छां ऽ ड
×		०	३

अंतरा

म म	नी	सां	
ग ग	म ध —	नी सां	सां सां —
म ह	र बा ऽ	नी ऽ	क रो ऽ
×	२	०	३
	नी		म
सां सां	ध — म	ध नी सां	नी ध म
द र	श ऽ न	दो ऽ ऽ	प्र भु ऽ
×	२	०	३
	मं		
ध नी	सां गं मं	गं नी	सां — गं
तु म	हो ऽ ऽ	रू ऽ	प ऽ अ
×	२	०	
	नी म		सा
सां —	ध म नी	ध म म ग	नी सा सा
नू ऽ	प ऽ ज	गं ऽ त ऽ	सा ऽ र
×	२	०	३

(प्रो. देवधर के संग्रह से प्रस्तुत)

★

पुरानी ख़ानदानी चीज़

(२)

राग जौनपुरी

" टोंक संस्थान के अधिपति म. नवाब इब्राहीम साहब गाने के बड़े शौक़ीन थे, तथा उन्हें चीज़ों की शब्द-रचना से भी शौक़ था। उनकी बनाई हुई चीजें शृंगार एवं भक्ति-रस-प्रधान हैं और उनमें उत्तम संस्कृत-प्रचुर शब्द पाये जाते हैं। उनकी चीजें में हमेशा ' इब्राहीम ' यह नाम मिलता है। खां साहब अली बख्श (जर्नैल) ने ये शब्द लेकर उन पर सुन्दर स्वर-रचना की है। ऐसी बहुत सी चीजें प्रचलित हैं। उन्हीं में से एक 'जौनपुरी' की चीज नीचे दी है। यह मुझे खां साहब सिंधी खां से प्राप्त हुई है।"

बी. आर. देवधर

यह राग असावरी अंग का होने के कारण असावरी-थाट में से ही निकलता है। चढ़ी ऋषभ की असावरी से यह राग बचाकर गाने का ध्यान रखना पड़ता है। वादी धैवत व संवादी गांधार है। गायन-समय दिन का दूसरा प्रहर है।

स्वर-स्वरूप

सारे मप नी ध प, मपग-रे-म-प, म- पधनीसां नी
धप, मपग, -रे-सा।

चीज़ के शब्द (मध्य लय)

अरी एरी साजन के कुंजन में, दरसन को तरसत, नाहीं बालम

भँवरे मनको चैन ना परत है, 'इब्राहीम,' लाख जतन कर, कैसे होवे पिया को मिलन ॥

म म | पध नीसां ध ध | प म पम प
अ रि | एऽ ऽऽ री फि | र त साऽ ऽ

म ग रे रे | म म प – | धम म प ध | नी सां सां सां
ख म के कुं | ज न मे ऽ | दऽ र ब न | को ऽ त र
× २

नी सां नीसां रेंगं | रें सां ध म |
स त नाऽ ऽऽ | हि बा ल म |
× २

अंतरा।

नी नी नी नी
| ध ध पध नी | ध ध प म
| भ व रेऽ ऽ | म न को ऽ
३

नी नी नी नी
ध ध नी नी | सां सां सां – | ध ध ध नी | सां सां सांरें गं
चै न ना प | र त है ऽ | इ ब्रा ऽ ही | ऽ म लाऽ ऽ
× ० ३

रे नी
रें सां नी सां | ध म म – | प ध नी सां | सां – सांरें गं
ख ज त न | क र कै ऽ | से ऽ हो ऽ | वे ऽ पिऽ या
× २ ० ३

रे नी ध नी नी ध
रें सां नी सां | ध म म म | पध नीसां ध ध | प म पम प
को ऽ मि ल | न ऽ अ री | एऽ ऽऽ री फि | र त साऽ ऽ
× २ ० ३

म म सा म प प
ग ग रे रे | म म प – |
ज न के कुं | ज न में ऽ |
× २

(प्रो. देवधर के संग्रह से प्रस्तुत)

★ राष्ट्रध्वज—गीत ★

काव्य: रचना......' विमल राम ' सातारा
स्वर—रचना......म॰ रा. दांडेकर ' संगीतालंकार '

राग–देसकार (त्रिताल.)

उंच फडके नभि भारत झेंडा
नवलहरी फुलवि मनीं दिव्यतेजा ॥ धृ० ॥

प्रभात अभिनव आज उदेली
स्वातंत्र्याची भेरि वाजली
सनइ चौघडा नभि दुमदुमली
अशोक चक्रांकिता ध्वजास्तव ललकारी गर्जेली
कैक पिढ्यांचें सुतक संपलें
युगायुगांचें दास्य लोपलें
नव्या मनूचें राज्य उदेलें
बलिदानांची होइ सांगता आस पुरी जाहली
भारत अमुचें स्वतंत्र झालें
ऐकुनवार्ता गगनीं नमले
अनंत आत्मे सभोवताले
उधळिति सुमनें मंगल समयीं दिव्य प्रभा प्रगटली.

' —विमल राम '

ध ऽ प ग प | ध ऽ सां ध प ऽ म ध प
उं – च फ ड | के – – न भि – भा र त
० १ ३

रे सा ऽ सा रे ग रे | ग ग प ध प ध
झें डा – न व ल ह | री फु ल वि म नीं
+ ० १ २

प ध सां सां ध प रे ऽ सा ग प | ध ऽ सां ध प
दि – – – व्य – ते – जा फ ड | के न भि
+ ० १

ऽ ग ध प रे सा | उंच फडके | धृ० |
उ भा रं त झें डा |
+

प ध ग प ध ध सां ध प | ध सां सां सां
प्र भा ऽ त अ भि न – व | आ – ज उ
+ ० १

रे ध ऽ सां सां ध ऽ सां ध ऽ सां सां | सां रें गं रें सां
दे – ली स्वा – तं – त्र्या चीं | भे – – रि वा
२ + ० १

ध सां ध प ग प ग रे ग प ध सां | ध प
उ ज ली ऽ स न इ चौ – घ डा – | न भि
२ + ० १

ग प ध प ग रे सा सा सा रे म रे म म
दु – म – दु म ली अ शो – – क च क्रां
३ + ०

[शेष पृष्ठ ४० पर]

राग—मियांमल्हार ताल—आड़ा चौताल

शब्द—स्वर योजना—स. आ. महाड़कर (सुधर)

—गीत—

बादरवा घन गरजे, उमड़ि घुमड़ि घन घोर घोर, बिजली चम चमके, दामनि कौंध अत मन लरजे ॥ ध्रु. ॥ बरसे मेहरवा रुम झुम झरझर लागी झरियां, जियरवा " सुधर, " मोरा तरसे पिया मिलन वा ॥ १॥

स्थायी

म रे	प प	निनि मप	धनि सां	नि प	ग म	रे सा
बा ऽ	द र	वा ऽ ऽऽ	ऽऽ ऽ	घ न	ग र	जे ऽ
x	२	०	३	०	४	०
म़ नि़	ध़ नि़	सा नि़	सा सा	नि सा	रे ध	नी़ प
उ म	ड़ि घु	म ड़ि	घ न	घो ऽ	र घो	ऽ र
	२	०	३	०	४	०
म प़	नि़ ध़ नि़	सा ऽ	मरे प	म प	निध नि	सां ऽ
बि ज	ली ऽ ऽ	ऽ ऽ	चऽ म	च म	के ऽ ऽ	ऽ ऽ
	२	०	३	०	४	०
म नि	ध धनी	सां सांनि	सांरें सांसां	नि प	ग म	रे सा
दा मि	नि कौंऽ	ऽ धऽ	अऽ तऽ	म न	ल र	जे ऽ
x	२	०	३	०	४	०

अंतरा

म रे	प प	नी ध	नि ऽ	सां ऽ	सां सां	ऽ सां
ब र	से मे	ह र	वा ऽ	रू ऽ	म झू	ऽ म
x	२	०	३	०	४	०
नि नी	नि नी					
ध ध	ध ध	नि नि	सां ऽ	सां रें सां सां	ध नीं	म प
झ र	झ र	ला ऽ	गी ऽ	झ ऽ री ऽ	यां ऽ	ऽ ऽ
x	२	०	३	०	४	०
म प						
प नी	ध नि	सां ऽ	ग म	रे सा	ऽ सा	सा रे सा सा
जि य	र वा	ऽ ऽ	सु ध	र मो	ऽ रा	त ऽ र ऽ
x	२	०	३	०	४	०
नी़ ध़	नी़ ध़	नि़ सा	रे सा	ऽ प म	ग म	रे सा
से ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	पि या	ऽ मि –	ल न	वा ऽ
x	२	०	३	०	४	०

संगीत में ताल का प्रतिबंध

लेखकः—गोविंद देवराव गुरूजी, बुरहानपुरकर

विचार–पूर्वक समालोचना करने से मालूम होगा कि, समाज में सभ्यता का प्रचार होने के साथ–साथ मानव–समाज ने, समाजोन्नति के मार्ग को सुगम बनाने के लिये अपने ऊपर कई एक सामाजिक–प्रतिबंध स्वेच्छा से जिस तरह स्थापित किये हैं, उसी तरह संगीत–कला की उन्नति करने में संगीत–कला के विद्वानों ने भी स्वयं संपूर्ण समझदारी के साथ उन्नत भारतीय–संगीत–कला को चिरस्थायी रखने के लिये अनेक प्रतिबंध स्थापित कर दिये हैं।

अर्थ–शास्त्र और इतिहास के ज्ञाता इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि, प्रतिबंधों का शुभ परिणाम जैसा चाहिये वैसा ही हुआ है। संगीत–कला के क्षेत्र में भी यही बात है। यदि संगीताचार्यों ने संगीत विद्या प्रतिबंधित न की होती, तो उन्नत भारतीय संगीत–की चिरंजीविता संशयात्मक ही रहती। समय के प्रवाह के साथ, संगीताचार्यों के स्थापित किये हुए वे प्रतिबंध, संगीत में जल तरंगवत् आपस में ऐसे घुल गये हैं कि, प्रतिबंध और प्रतिबंधित में भिन्नता कहीं भी मालूम नहीं पड़ती और हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते कि, बिना प्रतिबंध के प्रतिबंधित्त जीवित रहेगा या नहीं। वह यहां तक कि, एक दूसरे में अंतर ही मालूम नहीं पड़ता। सब यही समझते हैं कि, प्रतिबंध और प्रतिबंधित एक ही वस्तु है।

मानव-समाज के विकास की अनेक श्रेणी हैं; क्योंकि वर्तमान मानव समाज यकायक उछलकर उन्नत अवस्था पर नहीं पहुँचा। यदि कोई इस अवस्था को उन्नत न माने, तो उस मान्यता के बारे में कहना होगा कि, प्रत्येक शताब्दी में एक न एक विभूति का आविर्भाव होते हुए भी इस अवस्था को अवनत मानना शंकास्पद है और ऐसी मान्यता को अवकाश देकर अवनति स्वीकार करना बालिशता है।

अब प्रस्तुत विषय, ताल के प्रतिबंध पर विचार करना चाहिये। वर्तमान समय में कई एक वादक ऐसे भी हैं, जो मात्रा प्रतिबंधित ताल में प्रतिबंध तोड़कर कमी–वेशी मात्राऐं बोलकर अपनी प्रवीणता बताने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रवीणता में; मेरी बराबरी कर सके ऐसा कोई नहीं, इस तरह आडंबर–पूर्ण प्रचार करते हैं; किंतु जब उनका वादन आरंभ होता है तब, विचक्षण संगीतज्ञों को मालूम हो जाता है कि, 'मृदंग पर किस तरह थापियाँ देना, किस समय कौन सी लय रखना, किस लय से आरंभ किया और बजाते–बजाते किस लय पर चले गये, फिर अन्त में किस लय पर ठहरे, इत्यादि बातों का उनको होश नहीं। ऐसी कार्रवाइयों से वे वादक "अल्पविद्या महद् गर्वः" वाली कहावत के पात्र माने जाते हैं। ऐसे वादकों के लिये भला या बुरा अभिप्राय देना समय को नष्ट करना है।

संगीत–कला में, किस समय कौन सी चीज़ [साधना–पूर्ण वर्णन से प्रबंध], कौन सा राग, किन–किन स्वरों के संमिश्रण से, तालबद्ध–पूर्वक किस रीति से गाना, इस जानकारी को ही प्रतिबंध कहते हैं। यदि संगीत के पूर्वाचार्यों ने महान् तपश्चर्या के फलस्वरूप स्थापित किये हुए, लय, ताल, स्वर, संवाद, इत्यादि प्रतिबंध अनिवार्य न किये होते, तो निःसंशय, यह उन्नत भारतीय संगीत स्वेच्छाचारी गायकों के द्वारा अज्ञानांधकार की किस गर्त में पतित होजाता, यह कहना मुश्किल होता। ऐसे गायक वादकों से उन्नत संगीत की आशा रखना व्यर्थ होता है।

प्रस्तुत लेख में और प्रतिबंधों का विचार न करके केवल ताल के प्रतिबंधों का परामर्श करना मुझे स्वानुभव से दृढ़ विश्वास हुआ है कि, संगीत–कला में ताल का प्रतिबंध एक बहुत ही उपयोगी और सुगमताकारक प्रतिबंध है; क्योंकि बगैर प्रतिबंध के संगीत सागर में तैरने वाला व्यक्ति चाहे वो गायक, वादक या नर्तक हो, किस तरह प्रगति करना, कहां विश्राम करना, कहां समाप्त करना, इत्यादि आवश्यकीय बातों का ठिकाना नहीं पा सकता।

बारीकी से देखा जाय, तो ताल का तज्रुबा सब को रोज़ाना होता ही रहता है। दुनियांदारी के सभी काम ताल में ही चलते हैं, रास्ता चलने में भी सब के पैर बराबर वक़्त पर ही पड़ते हैं। रेलगाड़ी और घड़ी वगैरह मशीनों में भी जो खटका होता है, वह भी ताल में ही बँधा हुआ होता है। इसी तरह आसमान में उड़ने वाले परिन्दे और ज़मीं में रहनेवाले साँप वगैरह दरिंदे भी अपना रोज़ाना का काम उड़ना–चलना वगैरह तालबद्ध ही करते रहते हैं। यह सब जानकारी बारीक तौर पर जाँच करने से समझदार को खुद हासिल होती है। मतलब यह कि, "ताल' सब के रोज़ाना बर्ताव में आनेवाली चीज़ है। मगर उस तरफ़ हम लोगों का ध्यान न होने से समझ नहीं सकते।

जन-समाज में छंदोवृत्तहीन कविता जिस प्रकार आदर नहीं पाती, उस प्रकार मात्रा-बद्ध तालहीन संगीत भी आदर नहीं पाता। गीत वाद्य, और नृत्य का ताल से अत्यंत घनिष्ठ संबंध है चित्तवृत्ति अथवा कोई विशिष्ट प्रकार का स्वभाव उत्पन्न करने में भी ताल का प्रभाव विषमानुकूल भिन्न-भिन्न प्रकार का रहता है। यथा-ध्रुवद, धमार, ख्याल, टप्पा, होरी [दीपचंदी] कीर्तन वगैरह प्रकार चित्तवृत्ति के अनुकूल उत्पन्न हुए हैं।

ऊपर किये हुए विवेचन से वाचकों को मालूम हो गया होगा कि, संगीत (गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते) में ताल का स्थान, अत्यंत महत्वपूर्ण है। अमर-कोष-कार पं. अमरसिंह ने ताल की परिभाषा " तालः कालक्रियामानम् " इस प्रकार की है। अर्थात काल-क्रिया [समय—गति] के नाप को ताल कहते हैं। शब्दार्थ-चिंतामणि में " करतले ताड्यते—तड आघाते, कर्मणि अच हस्तलः तल एव तालः अणस्वार्थं, " इस प्रकार निर्देश है। मृदंग, तबला, ढोल, ताशे, मंजीरा, करताल वगैरह से ताल का निर्देश होता है। हाथ की अंगुलिओं से, तथा हाथ से ताली देने से भी ताल का निर्देश होता हैं। ताल के दो कार्य हैं—आघात करना और भिन्नता दिखलाना। ताल सृष्टि का एक मात्र कारण कालमान और लय है। यदि संगीत में से ताल को अलग कर दिया जाय, तो वह संगीत निष्प्राण शरीर जैसा प्रतीत होगा। ज़रा भी बेताला होने से भला मालूम नहीं होता। अगर संगीत की सभी क्रिया बेताली हों, तो कैसा मालूम होगा। बेताले गायन को रुदन कहना अत्युक्ति न होगी; क्योंकि रोने में स्वर तो स्वाभाविक लगते ही हैं; किन्तु ताल का अभाव होता है।

संगीत को नियमित करने के लिये ताल की आवश्यकता हुई और ताल से संगीत में जीवन संचार हुआ, उस ताल बद्ध संगीत में जिस महत्व पूर्ण प्रतिबंध की आवश्यकता हुई, वह प्रतिबंध " लय " के नाम से प्रतिष्ठित हुआ।

लय का वर्णन फिर कभी यथावकाश दिया जायगा।

[पृष्ठ ३७ का शेष]

ग ग प　ध प ध　ध प　ग प ग रे　ग प ध प
कि ता –　– ध्व जा स्त व　ल ल का　री – ग र
१　२　+　७

ध सां ऽ　सां रें गं रें गं ऽ गं रें गं ऽ गं | ध प ध ऽ ध
ज को –　ग – – जैं लों – ज य हिं द | ज य हिं – द
१　२　+　७　१　२

सां ध सां ऽ सां ध ऽ प ग प | ध ऽ सा || १ |
ज य हिं – द उं – च फ ड | के – –
+　७ | १

सतारा के म्यूज़िक-सार्कल का दूसरा वर्ष आरंभ होने के कारण श्री. जगन्नाथ बुआ पंढरपुर तथा श्री. राम भाऊ गुळवणी के सुश्राव्य कार्यक्रम का आयोजन किया गया था।

★

गुरू संगीत-विद्यालय सतारा की ओर से डॉ. मोरोपंत आगाषे की आयु के साठ वर्ष पूर्ण होने के निमित्त सत्कार समारंभ पर मास्टर बसवराज जी का श्रवणीय गायन हुआ।

★

संगीत कला विहार

वर्ष–प्रथम] वार्षिक–शुल्क { ६–०–० वी. पी. विना / ६–६–० वी.पी. सहित [अंक १२ वाँ

★ अनुक्रमणिका ★

मुख–पृष्ठ चित्र... ... उस्ताद बुन्दु खाँ .... (ऑल इन्डिया रेडियो, देहली के सौजन्य से प्राप्त)

कै. पं. विष्णु दिगंबर...... 'प्रो. न. र. पाठक'

गवयांच्या गोष्टी......... (कला कारों के किस्से)

कलावन्ताची आस...... (मराठी) 'का. न. केलकर'
(हिन्दी भाषन्तर– कलावन्त की आस'......
'रा. कि. भटनागर')

उस्ताद बुन्दु खाँ...... 'प्रो. बी. आर देवधर'

सुप्रसिद्ध संगीत–दिग्दर्शक......'राम किशोर भटनागर' (अनिल बिस्वास)

काल्पनिक-संगीत–नगर (नोटेशन)......
'एस. एस. बोड्स'

विविध–समाचार, इत्यादि

'संगीत कला विहार' के प्रतिनिधि:—

—एजेंटों की आवश्यकता है—
नियमों के लिये पत्र–व्यवहार करें

श्री. एस. एस. बोड्स
'संगीत—सदन'
सिविल लाइन्स, कानपुर

श्री. भा. द. खांडेकर
१८७, कस्बा-पेठ,
पूना २.

B. B. Sitar Maker

बाबू बालासाहब

सितार, तंबूरा, ताऊस, दिलरुबा, बीन आदि
तंतसाज़ों के पुराने कारीगर

पता— स्टेशन रोड, मिरज (S.M.C.)

स्वर–संगीत–विद्यालय, मनमाड का वार्षिकोत्सव–समारंभ 'संगीत–चूड़ामणि पं. विनायक बुआ पटवर्धन की अध्यक्षता में शनिवार दि. २३–१०–४८ को मनाया गया। श्री. अध्यक्ष महोदय ने एक बोध–प्रद उत्तम भाषण दिया और उन्हीं के कर–कमलों द्वारा 'गांधर्व–महाविद्यालय–मण्डल' के 'प्रशस्त–पत्र' एवं पारितोषक वितृत किये गये। तदूनंतर; मल्हार, वसंत–बहार, हिंडोल–बहार, अडाणा, नंद व मालकौंस रागों के सुश्राव्य गायन का ऐसा समा बँधा कि, यह पता भी न चला कि, चार घंटे कब बीत गये।

प्रेषक,
द. म. अभ्यंकर (संचालक)

लेखकों को सूचनायें

१–लेख कागज़ के एक ही ओर सुवाच्य अक्षरों में, दूर-दूर, केवल ½ फुल-स्केप साईज़ पर लिखकर भेजिये।

२– लेख की पसंदगी या नापसंदगी का जवाब पंदरह दिन के बाद लेखकों को मिल सकेगा।

३– पसंद किए हुए लेख यथावकाश प्रकाशित किये जायेंगे।

४ नापसंद लेख वापस मंगाने के लिये पोस्ट–टिकिट भेजिये।

विज्ञापन का शुल्क

कव्हर पेज नं. ४	रु. १२५–०–०
„ नं २ और ३	रु. १००–०–०
संपूर्ण पृष्ठ	रू ७५–०–०
अर्ध „	रू. ४०–०–०
पाव „	रू. २५–०–०
अर्धपाव पृष्ठ	रू. १५–०–०

प्रतिसमय

मुद्रित पृष्ठ ६" × ८" दो कॉलम में

कव्हर-पेज विज्ञापन के लिए व्यवस्थापक को लिखिये। विज्ञापन हमारे पास प्रति मास की १५ तारीख के पहिले पहुँचना चाहिये।

व्यवस्थापक:—संगीत कला विहार कार्यालय,
स्कूल ऑफ इंडियन म्यूजिक,
फ्रेंच–ब्रिज–गिरगाँव, बम्बई

निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार कीजिये।

परीक्षा और दूसरा काम

प्रो. व. य. राजोपाध्ये,
१४८ हिंदू कॉलोनी,
दादर.

★

मासिक–पत्रिका

प्रो. बी. आर. देवधर.
स्कूल ऑफ इंडियन म्यूज़िक,
फ्रेंच ब्रिज गिरगाँव,
बम्बई ४

मिरज के मशहूर फ़रीद साहब सितार–मेकर के नातू का तंतू-वाद्यों का कारखाना–

इस कारख़ाने में सितार, तंबूरा, बीन सुर–बहार दिलरुबा वग़ैरह साज सुरेल और खूबसूरत बनते हैं; इसीलिये संगीत–तज्ञों की तरफ से मैडिल और सर्टीफिकेट मिले हैं। ज्यादह मालूमात के लिये लिखें:—

पता —

प्रो. अब्दुल करीम इस्माईल साहब ॲन्ड सन्स

सितार–मेकर, शनिवार-पेठ, मिरज।

रेडियो डिज़ाईन हार्मोनियम एवं महाराजा. फ्लूट

(रजिस्टर्ड)

मन–पसंद डिज़ाइन में

सोल प्रोपायटर:—डी एस रामसिंह एन्ड ब्रदर्स
ट्यून स्पेशिलिस्ट मंछाराम बिल्डिंग
पारिख हॉस्पिटलके समीप
सैन्डहर्स्ट रोड—बम्बई, नं ४.

संपादक—प्रो. बी. आर. देवधर

सह-संपादक—पं. विनयचंद्र जी व प्रो. प्राणलाल शाह .... व्यवस्थापकः—प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये

★ संपादकीय ★

स्वातंत्र्य—वायुमंडल में विचरण करने वाला समस्त देश, अब राजकीय—क्षेत्र में उज्ज्वल—भविष्य की ओर अपने सफल कदम बढ़ा रहा है। राष्ट्र का एकीकरण हो रहा है, तथा आशा है कि, देश—भर में समान राज्य—सूत्र, निकट भविष्य में, शीघ्र ही स्थापित हो जायगा। भारतीय—संघ के अन्तर्गत, अन्य समस्त संस्थान आ जाने पर भी, हैदराबाद का प्रश्न बहुत दिनों तक अनिश्चित सा रहा; किन्तु भारत—सरकार के कुशल सूत्रधारों ने अपने अद्वितीय—कौशल द्वारा प्रस्तारित युक्तियों के बल पर, अपने वीर सिपाहियों की जग—प्रसिद्ध वीरता के सफल शस्त्र द्वारा, वह घातक-जाल, जिसमें निःसहाय हैदराबाद—वासी भारतीयों का दम घुट रहा था, काटकर उन्हें मुक्त कर दिया। अस्तु, भारतीय लोक—हित के मार्ग से वह कण्टक भी दूर होगया। वास्तव में, इस यश का सिर—मौर नेहरू-सरकार के ही सिर बँधा; अतः हम हृदय से भारत-सरकार का अभिनंदन करते हैं।

भारतीय—संघ में विलीन होने वाले प्रायः सभी संस्थानों में लोक—प्रिय एवं प्रजा—पक्ष के मंत्री—मंडल स्थापित हुए हैं। इन नवीन मंत्री—मण्डलों ने उन संस्थानों के शासकों के अनावश्यक व्यय बन्द कर दिये हैं, यह उचित ही किया; किन्तु इसमें कुछ आपत्तियाँ भी खड़ी होने की संभावना है। यथा—कुछ संस्थानों ने पुश्तों से चली आई, कई संस्थाओं को अभी तक आश्रय प्रदान किया; तथा कुछ ने अनेकों गुणी लोगों का जीवन—भार स्वयं आज तक संभाले रखा है; उदाहरणार्थ:—बड़ौदा में फैयाज़ खाँ; रामपुर में मुश्ताक़ हुसैन; ग्वालियर में पं. कृष्णराव एवं उस्ताद हाफ़िज़ अली, इत्यादि। छोटे—छोटे संस्थानों में भी अनेकों कलाकारों की उदर—पूर्ति के प्रबंध की प्रथा प्रचलित रही है। संभव है कि, इन कलाकारों के निमित्त होने वाला यह व्यय, निरर्थक सिद्ध करके, ये नवीन मंत्री-मंण्डल बेचारे कलाकारों तथा उनकी कला पर तुषार—पात सा करने पर उतारू हो जावें। इसी शंका के कारण प्रायः समस्त कलाकारों में एक क्षुब्ध—वातावरण उत्पन्न हो गया है। अतः हम इन समस्त मंत्री—मण्डलों से नम्र—निवेदन करते हैं कि, इस आवश्यक एवं अटल परम्परा पर वज्राघात करने की कृपा न करके, अपनी उदारता एवं योग्यता का परिचय दें।

इस सम्बंध में कुछ विशेष विभूतियों को धन्यवाद देकर, उनके उदार एवं उचित कृत्यों की सराहना करना, एक बड़े हर्ष का विषय है। मिरज, दक्षिण—भारत में एक छोटा सा संस्थान है। वहाँ पं. बालकृष्ण बुआ के एक शिष्य, पं. वामनबुआ चाफेकर दरबारी गवैये थे। मिरज—अधिपति, श्रीमंत तात्या साः पटवर्धन ने अपने पिता जी के समय के कितने ही प्राचीन खाते बन्द कर दिये; किन्तु दरबारी—गवैये का खाता जैसा का तैसा ही रखा। इतना ही नहीं; वरन् राजकीय—संम्मिश्रण के समय, उन्होंने बुआ साहब को पेन्शन देकर एक प्राचीन एवं वृद्ध कलाकार की उदर—पूर्ति की चिन्ता जीवनभर के लिये दूर कर दी। वैसे ही, मध्य—भारत के नवीन मंत्री—मंडल ने, देवास [सी.] के महाराजा सा. द्वारा, खाँ साः रजब अली को दी जाने वाली १५० रु. मासिक पैन्शन क़ायम रखी है। अतः इन संस्थानों के

क्रमशः अधिपति एवं मंत्री—मण्डल के इन उदार—कृत्यों की जितनी भी सराहना की जाय वह कम है।

हमें आशा है कि, भारतीय—संघ में सम्मिलित समस्त संस्थानों के मंत्री—मण्डल, कलाकारों के प्राचीन खाते, इसी प्रकार अवश्य क़ायम रखेंगे; क्योंकि कला देश की संस्कृति का मुख्य—अंग होने के नाते, कलाकार एक सच्चा देश—सेवक होता है।

गायनाचार्य कै. पं. विष्णु दिगंबर

व

उनके कार्य

(उत्तरार्ध)

लेखक :—प्रा. नरहर र. पाठक, बम्बई

" यह जानकर हमें हर्ष हुआ कि, प्रो. न. र. पाठक का, सितंबर के अंक में प्रकाशित, लेख वाचकों को रुचिकर प्रतीत हुआ। इस लेख का पूर्वार्ध समाप्त हो जाने के पश्चात्, जब मैं श्री. पाठक जी से मिला, तो आप कहने लगे, " मेरी विचार-धारा प्रवाहित होते ही मुझे पंडित जी की इतनी बातें याद आने लगीं कि, मैं एक ही लेख में वे पूर्णतया नहीं लिख सका। " अतः मैंने उनसे एक और लेख लिख कर वह सम्पूर्ण करने की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार करके उन्होंने यह उत्तरार्ध लिखा है। आशा है, वाचक इसका भी उचित स्वागत करेंगे। "

संपादक—सं. क. विहार

लाहौर में 'गांधर्व महा विद्यालय' तथा उसी से संबंधित एक छात्रालय स्थापित होने के पश्चात, सबको अत्यन्त ही कड़े अनुशासन का पालन करना पड़ता था। पंडित जी इस बात का बड़ा ध्यान रखते थे कि, उनके आश्रित रहकर संगीत सीखने वाले विद्यार्थियों से संबंधित कोई भी उपद्रव अथवा घर में अथवा बाहर, कहीं भी उत्पन्न न होने पाये। किसी तुच्छ अपराध के लिये भी कब भारी दण्ड भोगने का अवसर आजाय, यही भय सब विद्यार्थियों के मन में सदैव जागृत रहता था। यही कारण था कि, १९०५ से १९०७ के अन्त तक, मुझे तो याद नहीं कि, किसी भी विद्यार्थी से कोई विशेष अपराध हुआ हो। केवल एक ही आख्यायिका का उदाहरण दिया जा सकता है और वह यह कि, जब मार्गशीर्ष (अगहन) के महिने में पंडित जी दत्तोपासना की गड़बड़ से उलझे हुए थे, तो आप से आप उन्हें अपने कुटुम्ब की किसी अल्प-व्यस्क कन्या के साथ किसी विद्यार्थी द्वारा अति-प्रसंग-पूर्ण कुकर्म किये जाने का समाचार ज्ञात हो गया था। यह बात, दूसरों को तब मालूम हुई, जब कि इस अपराध का दण्ड उस विद्यार्थी को दिया गया !

उपासना के उद्यापन के उपलक्ष में होने वाला भोज इत्यादि समाप्त हो चुकने के दूसरे रोज़ उस प्रकरण की जाँच, प्रगट-रूप से, एक दीवानख़ाने में आरंभ हुई। अपराधी के कुकर्म का वृत्तान्त, पंडित जी ने पहिले ही स्वयं उस नासमझ कन्या द्वारा मालूम कर लिया था; अतः उसके आधार पर ही, उस मूर्ख विद्यार्थी से उल्टे-सीधे अनेकों प्रश्न पूछे गये। वह विद्यार्थी, उस समय के सब विद्यार्थियों में बुद्धि और शिक्षण के नाते अत्यंत चतुर माना जाता था। पंडित जी भी, उसके मैट्रिक तक पाये हुए शिक्षण एवं अंग्रज़ी में पत्र-व्यवहार, कर सकने के विशेष गुण पर मुग्ध थे। उस विद्यार्थी को भी घमंड था कि, उसके अतिरिक्त कोई भी, विद्यालय-भर में अंग्रज़ी का कार्य नहीं कर सकता। वह विद्यार्थी गौर-वर्ण; सुंदर नाक-नक्शे का; कुछ गुलाबी सी मस्ती-भरी आँखों; हृष्ट-पुष्ट शरीर तथा चटक-मटक की पोशाक पहिनने वाला था। उसने इस जाँच-पड़ताल के समय अपना अपराध छिपाने का भरसक प्रयत्न किया और पंडित जी को दुखी करने वाले शब्दों का भी यहाँ-वहाँ प्रयोग किया। हर-बार उसने गोल-मोल उत्तर, प्रायः इसी आशय का दिया कि, पंडित जी कानों के कच्चे थे, अपनी अनेकों बातें गुप्त रख सकने का उन्हें गर्व था, वे पक्षपात-पूर्ण व्यवहार करते, तथा उन पर अवलंबित विद्यार्थियों को दास (गुलाम) की भाँति समझते थे। सच्ची बात कहने और सीधा-सादा उत्तर देने की अपेक्षा, जब उस विद्यार्थी ने अपने अपमान के अपराध का आरोप, उल्टा पंडित जी पर ही लगाना आरंभ कर दिया, तो पंडित जी को क्रोध आगया और उन्होंने उसे दो बार कुछ मिनिट का अवकाश दिया कि, वह सच्ची-सच्ची बात बतादे; किन्तु वह अपनी हरकत से बाज़ न आया और जो जी में आया, वही अनुचित बकवास करने लगा। बस, दूसरी बार दिया हुआ समय ज्यों ही समाप्त हुआ कि; पंडित जी ने उसे

बरछे के हण्टर से सूड़ना आरंभ कर दिया । मार के आगे भूत भी भाग खड़े होते हैं । उसकी झूठ कब तक चलती । ज्यों ही वह ज़ोर–ज़ोर से चिल्लाता हुआ, अपनी जगह से उठ कर चलने लगा कि, हण्टर की मार सारे शरीर पर यहाँ–वहाँ और भी तेज़ी से तथा बुरी तरह पड़ने लगी । जितने लोग वहाँ जमा थे, उनमें से किसी की भी हिम्मत न हुई कि, उसे बचा सके । चार–पांच मिनिट में ही वह पंडित जी के पैरों में गिर कर क्षमा के लिये गिड़गिड़ाने लगा, तथा अपनी समस्त करतूत सही-सही बताने की सौगंध खाकर, उसने कुछ भी न छिपाने का विश्वास दिलाया । वह इस तरह व्याकुल हो कर जब रोने लगा तो पंडित जी ने उसे पीटना बंद कर दिया । रोते हुए, सिसकते–सिसकते, किसी तरह उसने सब बात कह सुनाई । सत्य बात पर पंडित जी को क्रोध न आता था, अतः वे भी शांत हो गये । उन्होंने फिर उसे बहुत–कुछ समझाया–बुझाया और जितने लोग वहाँ जमा थे, सबको चेतावनी दी कि, किसी ने भी यदि कोई ऐसा कुकर्म किया, अथवा उसके विषय में उनके कानों में भनक तक भी पड़ी तो, उसे इससे भी कठोर-दण्ड भोगना पड़ेगा । अन्त में, उस मूर्ख विद्यार्थी के अंग पर चोट के स्थानों पर शीघ्र दवा इत्यादि, लगाने के लिये कह कर, उसे अपनी आँखों के सामने से टल जाने की आज्ञा दी । उस विद्यार्थी की सारी शान व साख धूल में मिल गई ।

‘ पानी गये न ऊबरे, मोती, मानुष, चून । ’

बस, वह अपने एक हित–चिन्तक सहपाठी के साथ विद्यालय से भाग खड़ा हुआ । पास में एक छदाम भी न थी, फिर यदि किसी के पास माँगने जायें, तो वह पंडित जी से कब तक छिप सकता था । अस्तु, उन्होंने लाहौर छोड़ दिया । पंडित जी ने उनकी इस करतूत की सूचना पुलिस को दे दी थी ।

जब कुछ ही दिनों में, उन्हें यह कटु–अनुभव प्राप्त हुआ कि ‘ पंजाब में जान–पहचान अथवा द्रव्य के बिना कुछ भी काम सधना असंभव है, तो वे दोनों चार–पाँच दिन पश्चात्, फिर पंडित जी के पास विद्यालय में ही शरण पा सके । पंडित जी ने यद्यपि उनके पलायन के लिये, फिर से कोई नया दण्ड नहीं दिया; किन्तु फिर कभी उनके साथ विश्वास–पूर्वक व्यवहार न करने का उन्होंने प्रण कर लिया था । उस अपराधी विद्यार्थी का जॅक्सन–हत्याकांड से गुप्त सम्बंध होने के कारण, पुलिस को पता लगते ही, पंडित जी को उस संकट का भी सामना करना पड़ा । परिणाम यह हुआ कि, उस विद्यार्थी को बरबस, अन्तिम-प्रणाम करके विद्यालय छोड़ना पड़ा ।

अनुशासन–पालन के निमित्त प्रयुक्त दण्ड के विषय में एक दूसरी कथा इससे भी अधिक महत्व–पूर्ण एवं शिक्षा–प्रद है । लाहौर की हीरामण्डी में विद्यालय का बाड़ा बहुत ही बड़ा था । अतः, अलग–अलग कमरों में अवकाशानुसार छात्रालय के विद्यार्थी गायन–वादन का व्यक्ति–गत अभ्यास करते थे, क्योंकि सुबह–शाम प्रत्यक्ष–शिक्षण और दुपहर को छापेखाने से संबंधित तथा अन्य कार्य करना पड़ते थे । जिन्हें ये काम नहीं करना होते थे, वे फुर्सत के समय अभ्यास करते रहते । पंडित जी की निजी देख-रेख तथा उपस्थिति में यह अभ्यास कभी भी स्थगित न हो पाता था । एक दिन, यह सोचकर कि, पंडित जी विद्यालय में नहीं हैं, सब लोग एक जगह एकत्रित होकर तबले का अभ्यास करने लगे । किन्तु, उस दिन पंडित जी रोज़ की अपेक्षा कुछ जल्दी ही वापस आ गये, जिसका इन विद्यार्थियों को पता भी न था । ‘ धि धि नागी त्रिक तूना कत्ता धिं त्रिक, बोल बजाने वाले विद्यार्थियों ने अज्ञानता–वश इन शब्दों का रूपान्तर ‘ चूना कत्था पान सुपारी ’ करके मनोरंजनार्थ बार–बार कहना आरंभ कर दिया । लड़कपन ने उन सबको नासमझी की शरण पहुँचा दिया और वे सब उसमें तल्लीन हो गये । वे लोग ताल के साथ तालियाँ बजा–बजा कर, वे रूपान्तरित बोल प्रसन्न होकर कहने लगे । वे जब इस तरह आनन्द–मग्न होकर खिल खिला रहे थे, उसी समय पंडित जी आ पहुँचे और उन सबके नायक, एक नट–खट विद्यार्थी के पीछे खड़े रह कर कुछ देर तक वे चुप–चाप सब सुनते रहे । अचानक जब चटा–चट चाटों की आवाज़ आने लगी, तो सब का ध्यान पंडित जी की उपस्थिति और उस विद्यार्थी के संकट की ओर आकर्षित हुआ । वे सब घबरा गये और पंडित जी को क्रोध से लाल हुआ देखकर सब लोग उठ खड़े हुए । पंडित जी ने ‘ चूना कत्था ’ कहने वाले का कान ज़ोर से पकड़ कर ऐंठते हुए कहना शुरू कर दिया, “ तू तो योग्यता में मूल––बोल बनाने वाले ऋषि मुनियों से बढ़ा–चढ़ा मालूम होता है । फिर से तो कह यह अपनी स्फूर्ति के बोल । ” उस बेचारे के मुंह से अब तो सरल–शब्द भी उल्टे–सीधे तक न निकल पाते थे । उसने घबराते हुए गिड़गिड़ाकर, नम्र––निवेदन की; “ ग़ल्ती हुई; क्षमा करें । फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा । ” यह सुनकर, पंडित जी ने उसका कान तो छोड़

दिया; किन्तु अपने संताप का सच्चा-रहस्य, पंडित जी ने सबको अपने कमरे में बुलाकर, उपदेश देते हुए, इस प्रकार प्रकट किया; "जिस विद्या के बल पर तुम सब, कल अपने पेट भरोगे; तथा यश कमाओगे; उसी विद्या की यह हँसी और विडम्बना करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती! जिस विद्या की तुम इस प्रकार हँसी उड़ाते हो, वह तुम पर क्योंकर प्रसन्न होगी और तुम्हें पेट-भर अन्न कैसे मिलेगा? केवल, तुम्हारी विद्या की आराधना के मंत्र हैं। उनका अनादर करके, वे सिद्ध नहीं हो सकेंगे। संसार में भीख माँगते फिरना पड़ेगा। आज जो जीवन का अमूल्य समय तुम सब यहाँ व्यतीत कर रहे हो, वह सब व्यर्थ ही चला जायगा और कुछ भी हाथ न लगेगा।" फिर उस अपराधी की ओर संकेत करते हुए, उन्होंने कहा; "तू अन्य विद्याओं के लिये अयोग्य सिद्ध हुआ, अतः तेरे पिता ने तुझे यहाँ भेजा। यहाँ भी जिस विद्या के कारण तुझे खाने के लिये अन्न मिलता है, उसके ही साथ ऐसा भ्रष्ट-व्यवहार करना तुझे कैसे शोभा देता है? केवल संगीत-विद्या के सम्बन्ध में ही मैं नहीं कहता। सारी विद्याओं के सम्बन्ध में, मेरा यही कहना है। ध्यान में रहे कि, अन्नदात्री विद्या से मनुष्य को सच्ची-लगन होना चाहिये; तथा उसके लिये सदैव गौरव-पूर्ण एवं पवित्र भावना ही हृदय में रहना चाहिये।" यही उनके उपदेश का सारांश है। वह विद्यार्थी अजमेर का था। शरीर से हृष्ट-पुष्ट, तथा व्यवहार में इतना उजड्ड कि, उसे यदि गुण्डा कहा जाय तो ग़लत नहीं होगा। उसके उपद्रवों से दुखी आकर ही उसके पिता ने, उसे पंडित जी के हवाले कर दिया था। मार-कूट कर, उसने कुछ दिन विद्यालय में बिताये; किन्तु शीघ्र ही विद्यालय भी छोड़ दिया। अस्तु, व्यवहार अथवा बुद्धि संबंधी शिक्षा इत्यादि नित्य-प्रति इसी प्रकार दी जाया करती थी।

लाहौर में सब विद्यार्थियों तथा पंडित जी के भोजन की व्यवस्था अलग-अलग थी। पंडित जी के साथी, वाइस-प्रिन्सिपाल, पं. गुरुदेव जी पटवर्धन, उनकी व्यवस्था में स्थायी-भागीदार थे। उसके अतिरिक्त यदि कोई अति योग्य मेहमान आजाता तो, उसका समावेश भी उन्हीं के साथ किया जाता था। स्त्रियों तथा अन्य परिवार के लोगों के विषय में तो कुछ बताने की आवश्यकता ही नहीं। सब लड़कों को, फिर चाहे वे उनके संबन्धी भी क्यों न हों, अन्य विद्यार्थियों के साथ ही भोजन करना पड़ता था। आश्रित विद्यार्थियों में जो बिल्कुल ही नवीन होते, उन्हें रसोई बनाने, खाने-पिलाने, तथा भटके समय पर बर्तन इत्यादि स्वच्छ करने के कार्यों में यथोचित सहायता करना पड़ती थी। कुछ सीख चुकने के बाद, उसकी योग्यता तथा विश्वास-पात्रता में जैसी ही वृद्धि होती; उस पर यह कार्य-भार नहीं डाला जाता था। मध्यम-श्रेणी के सुख-साधन तथा मन चाहा भोजन मिलने के कारण किसी को सहज ही तकरार करने का अवसर न मिलता था। सारे विद्यार्थियों को नियम से व्यायाम कराने के लिये, सेन्डो के डम्बैल-शास्त्र-प्रवीण, एक महाराष्ट्रीय गृहस्थ नियुक्त किये गये थे। ये नट-विद्या में भी पारांगत थे, जिसके लिये उन्हें अनेकों प्रमाण-पत्र मिले थे और समस्त बम्बई में, वे एक आशाजनक-नट के नाम से विख्यात थे। उस प्रकार प्रसिद्ध हो चुकने पर, वे ग्वालियर गये; तथा वहाँ से आज इस शहर में, तो कल दूसरे, में इस प्रकार भटकते-भटकते वे लाहौर आ पहुँचे। वहाँ आप विद्यालय में व्यायाम-शिक्षक के नाते से कुछ समय तक रहे। इन्होंने, कड़ी ठंड के दिनों में बांसरी के बैंड की स्वर-गति पर, सैना की भाँति, समस्त विद्यार्थियों को बड़ी सुबह शहर के बाहर सैर के लिये ले जाना आरंभ किया था; किन्तु लगभग ८-१० दिन में बहुत से लोग बीमार हो जाने के कारण, यह प्रभात-फेरी बंद करना पड़ी।

विद्यालय की इमरात में मैदानी-खेलों की सुविधा नहीं थी। रावी नदी के किनारे की एक छोटी सी मठ जैसी इमारत, जिसके आस-पास बहुत से वृक्ष, कुँआ, तथा पर्याप्त खुली जगह, इत्यादि थे; किसी साधु-पुरुष ने पंडित जी के गुणों पर मुग्ध होकर, अपने शरीरांत के समय, पंडित जी को ही दे दी थी। यह बात उस समय के पुराने विद्यार्थियों ने मुझे बताई थी। वह स्थान 'आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध था। आठ-दस दिन में विद्यालय के लोग वहाँ जाकर, खुली हवा में मैदानी खेल खेलने की इच्छा पूर्ण कर लेते थे। कभी-कभी तो स्वयं पंडित जी मैदानी-खेलों में भाग लेकर छात्रों को उत्साहित करते थे। गर्मी की छुट्टियों में महिने-पन्द्रह दिन के लिये सब लोग उसे ठंडी जगह मानकर आश्रम में रहते थे। पंडित जी के बम्बई में ही स्थायी-रूप से रहने लग जाने के कारण, हीरा-मण्डी की इमारत में से हटाकर, विद्यालय उस आश्रम में ही ले जाया गया। १९०५-०६ में, आश्रम को जाने वाला रास्ता, इतना भयानक एवं विजन था, कि दिन में भी अकेले जाने में डर लगता था। रात्री के समय तो, कोई वहां फिर भी

लाहौर जाने का अवसर आया, तो आश्रम के आस–पास विशाल एवं विद्युत–प्रकाश से जग मगाने वाली अनेकों इमारतें दिखाई दीं और उनके जमघट में आश्रम को ढूंढ़ना पड़ा; किन्तु आश्रम के भीतर, दिखाई देने जैसा कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ था।

विद्यालय की संतोष–जनक व्यवस्था व पंडित जी की धाक के कारण आपसी छोटे–मोटे झगड़ों में यद्यपि मार–पीट की नौबत नहीं आती थी; फिर भी यह अधिकारपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि, मार–पीट कभी भी नहीं हुई। एक बार होली के त्यौहार पर शहर के गुन्डों ने विद्यालय के लोगों पर, पिछले बैर का बदला लेने के लिये हमला किया, तो मार खाकर उल्टा उन गुण्डों को ही भागना पड़ा। पंडित जी के पास इस मार–पीट की शिकायत पहुँची; परंतु अपने शिष्यों के मराठों को शोभा देने वाले पराक्रम को सुनकर, उस झगड़े की अधिक पूछ–ताछ तो क्या, उसकी तनिक भी चिन्ता न की। पंडित जी को महाराष्ट्रियों तथा महाराष्ट्र पर बड़ा गर्व था, इसी का यह एक उदाहरण मात्र है। मार–पीट का एक और उदाहरण विद्यार्थियों, तथा पंडित जी के विश्वास–पात्र कोठारी में हुए झगड़े का है। उस समय लाहौर में, दो आदमी पंडित जी के विशेष कृपा–पात्र थे। एक तो आचार्य व दूसरा कोठारी (यह विद्यार्थियों के खाने–पीने व कपड़े–लत्ते इत्यादि, की व्यवस्था करता था। यदि यह कहा जाय कि, शिक्षण के कार्य को छोड़ कर, शेष समस्त कार्यों का वही व्यवस्थापक था, तो अतिशयोक्ति न होगी। खाने–पीने व भोजन के कच्चे सामान का कोठार उसी के अधिकार में था, इसीलिये उसे कोठारी कहा है)। जो उसकी बात न मानता, उसे सताने के लिये वह कोठारी सदैव उद्यत रहता था। वह समझता था कि, विद्यालय में उसका दर्जा भी पंडित जी के ही बराबर का था; छात्रों का रोज़ का सुख–दुख उसी के हाथ में था; अत: विद्यार्थियों को उसका काम भी उतनी ही तत्परता से करना चाहिये जितनी तत्परता से कि, वे पंडित जी के काम करते थे। किसी विद्यार्थी से यदि तनिक सा भी नुकसान हो जाता, तो वह उसे गालियें देने में भी न चूकता। पंडित जी से उसका निकटतम–सम्पर्क होने के कारण; उसे ऐसे विद्यार्थी की, जिससे वह अप्रसन्न होता, चुगली करने का अवसर मिल जाता था। एक दिन, जब कि सब लोग आश्रम पर थे, सुबह–सुबह उसने कुँए पर नहाने के लिये झगड़ना शुरू कर दिया। उसने अकड़कर एक छोटे लड़के के, अपने लिये, कुँए में से पानी भरने की आज्ञा दी। उस विद्यार्थी ने कुछ अनसुनी सी की, इस पर उस कोठारी ने, उसे खींच कर धकेलने तक का साहस भी कर दिखाया। इस पर, प्रौढ़–विद्यार्थियों में से, लक्ष्मणसिंह मुधोलकर ने, उचित व्यवहार करने के लिये संकेत मात्र ही, कोठारी से कुछ कहा बस, वह मुधोलकर को भी गालियाँ देने लगा। भला यह अनुचित व्यवहार लक्ष्मणसिंह मुधोलकर कैसे सह सकते थे। उन्होंने क्रोध में, आकर, सिंह की भाँति झपट कर, एक हाथ से उसकी लम्बी चुटिया पकड़कर उसे ज़मीन से अधर उठा लिया और दूसरे हाथ से चटाचट चाटों की मार भी शुरू कर दी। वास्तव में इन दोनों के इस झगड़े की जड़ कुछ पिछला वैमनस्य था। कोठारी ने असह्य पीड़ा और घबराहट के कारण ज़ोर–ज़ोर से चिल्लाना आरंभ कर दिया। मुधोलकर ने दो–तीन मिनिट में ही उसे छोड़ दिया; परन्तु इतनी ही देर में उस कोठारी का सारा मुँह सूज गया और मुँह एवं आँखों से रक्त बहने लगा। भाग्य-वश उस समय आश्रम में गुरुदेव जी थे। उन्होंने, कोठारी की उदंडता देखी व गालियाँ सुनी थी, अतः कोठारी कुछ झूठा-षडयंत्र न रच सका। बस, इसी कारण, इस अवसर पर पंडित जी का निर्णय कोठारी के विरुद्ध हुआ। चोटी पकड़कर उठाने और इस प्रकार का अमानुषी दंड देने के अपराध में मुधोलकर को भी बड़ी फटकार सुनना पड़ी।

इस झगड़े का स्वरूप सार्वजनिक नहीं। उस प्रकार भी घटना तो जालंधर में हुई थी। इस शहर में, हरसाल एक ऐतिहासिक पुरुष, तानसैन गुरु–की पुण्यतिथि का समारंभ लगभग ८ दिन तक हुआ करता था; यह पिछले लेख में बतायाजा चुका है। इस उत्सव पर, एक दिन सुबह ग्वालियर के एक प्रसिद्ध गवैये–बुआ का गाना होना निश्चित हुआ था। पंडित जी के प्रौढ़ शिष्य, एक गुट बनाकर बुआ सा: के व्यासपीठ के ठीक सामने, सब श्रोताओं के आगे बैठे हुए थे। ये बुआ सा: षड्ज–मन्द्र स्वर–में गाने के लिये प्रसिद्ध थे। अपना गाना शुरू करके, वे बस रंग में आये ही थे। कि, पंडित जी के शिष्यों ने, उनके गाने में वर्ज्या–वर्ज्य संबंधी कुछ गल्ती पहचानते ही, उसकी ओर बुआ साहब का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया। उन बुआ साहब को अपने कभी भी न चूकने अथवा गल्ती न करने पर पूर्ण विश्वास था; अत, उन्होंने सगर्व कहा, "जो कुछ भी गल्ती है, वह मेरे बराबर में बैठकर दिखाइये, वहीं से क्या हँसी उड़ा रहे हैं ?" इसे एक प्रकार की चुनौती समझकर, लक्ष्मण सिंह तुरन्त व्यासपीठ पर, उन बुआ सा: के पास जा बैठे।

बुआ सा: के साथीदारों ने इस पर क्रुद्ध होकर उन्हें मंच पर से धकेल दिया और सिर पर तबला उठाकर दे मारा। किन्तु लक्ष्मणसिंह क्षण–भर में ही सँभलकर मुक़ाबले के लिये खड़े होगये। उन्होंने धक्का देने वाले, साथीदार, को एक ही झटके में मंच से नीचे पटक दिया और फिर पंडित जी के एक दूसरे शिष्य ने, उस तबले–द्वारा प्रहार करने वाले की खूब ही कुगत की। दोनों ही दलों के लग–भग पचास-साठ लोग वहाँ जाँच पड़ताल करने, आकर जमा होगये। बड़ा कोलाहल शुरू हो गया। अन्त में कुछ प्रभाव-शाली लोगों ने बीच–बचाव करके वह झगड़ा शान्त किया। समारंभ–स्थान से कुछ-दूर, पंडित जी अपने मित्रों के साथ टहल रहे थ। अतः उनके कानों में भी उस झगड़े की भनक जा पहुँची। वे तुरन्त, अपने निवास-स्थान पर आ पहुँचे और तब उन्हें सारी बात, वहाँ उपस्थित लोगों से सुनकर ज्ञात हुई। प्रति-पक्षी को चुनौती देकर, योग्य–व्यवहार करने की बजाय, उसका अपमान करना कौनसा मत है? पंडित जी का यही अटल–मत था; अतः उन्होंने इस प्रकार का हठ पकड़ लिया कि, यदि वे गवैये-बुआ स्वयं नहीं, तो समारम्भ के व्यवस्थापकों को खेद–प्रदर्शन एवं क्षमा–याचना अवश्य करना चाहिये। अन्यथा, उन सहित, विद्यालय का कोई भी प्रतिनिधि समारंभ में न ठहरेगा, यह उन्होंने समारंभ के चालकों को सूचित कर दिया। इस घटना से यह पता चल सकता है कि, पंडित जी के प्रति लोगों में कितनी श्रद्धा थी। यदि दूसरा और कोई गवैया होता तो चालकों ने उसे भले ही चला जाने दिया होता; किन्तु पंडित जी के चले जाने से समारंभ के नाम को बट्टा लगता। अतः समारंभ-संचालकों ने दुपहर के कार्य–क्रम को आरंभ करने से पहिले, सुबह की घटना के प्रति बड़ा खेद प्रकट किया। पंडित जी ने भी, उन गवैये बुआ से मिलकर उनके मन का मैल दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया। गवैयों के अपमान को पंडित जी कभी भी न सह सकते थे; किन्तु उन्हें केवल आव्हान स्वीकार करने की पराक्रम–शीलता के ही कारण अपने शिष्य के प्रति गर्व प्रतीत हुआ, यह बिलकुल सत्य ही समझा जा सकता है।

जालंधर का काम समाप्त करके, पंडित जी अमृतसर गये। पंडित जी नित्य फ़र्स्ट–क्लास में ही प्रवास करते थे। कभी–कभी तो वे फ़र्स्ट–क्लास शानदार पोशाख पहनकर राजसी–सौन्दर्य के साथ, स्पेशल-रूप से सफ़र करते। इस ठाट–बाट से देखकर, प्रायः पुलिस वाले तथा अन्य हाकिम लोग, उन्हें कोई राजा अथवा राज-कुमार समझ, उसी प्रकार से सन्मान प्रदर्शित करते थे। फ़र्स्ट क्लास में, वे शान के लिये सफ़र नहीं करते थे; किन्तु फ़र्स्ट–क्लास के यात्रियों को जो रेल्वे की ओर से सुविधायें मिलती हैं, उसके कारण अपने साथ के सामान तथा लोगों की ठीक–ठीक व्यवस्था होजाती थी। यद्यपि उसमें रुपये ज्यादा खर्च होते थे; परन्तु जगह–जगह की खट–खट तो मिट जाती थी। इसके अति-रिक्त, गायक–वर्ग कोई कमतर वर्ग तो नहीं। देश की संस्कृति की उन्नति तथा उसे अमर बनाने के कठिन कार्य को सफल बनाने का पर्याप्त–श्रेय उसे भी है। उनकी धारणा थी कि, उन्हें अपना दर्जा बढ़ाना और उसकी ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना ही चाहिये; तथा इसके लिये पहिले–दर्जे के डिब्बे में ही यात्रा करना अवश्यक था। जालंधर से अमृतसर तक पंडित जी पहिले–दर्जे के डिब्बे में ही गये और स्टेशन पर उतरते ही, उनके आगमन की सूचना पाकर आये हुए, बड़े–बड़े लोग उनके चारों ओर जमा होगये। उनके इस आदरमय–व्यवहार, तथा पंडित जी के ठाट बाट को देखकर, एक पुलिस–ऑफ़िसर ने उनके पास आकर सैल्यूट किया और स्टेशन के बाहर जाने के लिये बने हुए रास्ते पर की भीड़ को भी हटा दिया। जब उस ऑफ़िसर को यह मालूम हुआ होगा कि, वे कोई राजा अथवा युवराज नहीं, वरन् एक गवैये थे; तो उसके दिल में जो भी भाव उत्पन्न हुए हों, वही जाने इसमें सन्देह नहीं कि, ऐसी घटनायें अनेकों बार होतीं थीं। महाराष्ट्र में पुनः पदार्पण करते ही, पंडित जी की रुचि भक्ति–मार्ग की ओर दिन–दिन बढ़ती जाने के कारण, उनका पंजाब जैसा रहन–सहन धीरे–धीरे छूट गया। अगस्त के अंक पर मुद्रित, उनका चित्र देख कर, अनेकों व्यक्तियों को यह शंका हुई थी कि, वास्तव में वह चित्र पंडित जी का ही है उन्होंने कदा-चित् पंडित जी को, उनके साधु–वेष में ही देखा होगा; अतः इस प्रकार की शंका होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

पंडित जी, विद्यालय में बड़े सादा ढंग से रहते थे। विद्यार्थी, शिक्षक तथा स्वयं पंडित जी के सम्बंधों में योग्यता एवंअधिकार का अंतर अवश्य था; किन्तु किसी को उसका भास नहीं हो पाता था। आश्रित–विद्यार्थियों से गुरु के नाते, वे जो सेवा–कार्य कराते थे; उसे देखकर प्राचीन काल में प्रचलित गुरु–शिष्य–सम्बन्ध की यद्यपि याद आती थी, तो भी उसमें कोई ज़बरदस्ती और आधिक्य की

झलक तक नथी । पिछले वर्णन में, गुरुदेव पटवर्धन जी का उल्लेख आया है। वे मृदंग-वादन में निपुण थे। पंडित जी, इस बात का सदा ध्यान रखते थे कि, विद्यार्थी-वर्ग में, उनका अपना जैसा ही यथोचित सत्कार किया जाय; किन्तु, यहाँ यह तर्क उपस्थित होता है कि, हर काम में पंडित जी ही आगे आ जाते थे, अतः लोगों को अपनी योग्यता तथा अपने स्वतंत्र तेज का अनुमान न हो सकने के कारण, गुरुदेव के चित्त में कुछ कसक सी अवश्य रहती होगी।

गुरुदेव शांत प्रकृति के थे, वे तथा बोलते भी बहुत कम थे। १९०५ में वे विधुरावस्था में थे; किन्तु पंडित जी ने, कुछ दिनों में अपनी भतीजी के साथ उनका विवाह कर दिया था। लगभग इसी समय, पंडित जी के बड़े भाई, लाहौर में ही रहते थे। ये एक कीर्तन-कार थे, अतः पंडित जी ने पन्द्रह दिन में (बहुधा एकादशी को) एक बार कीर्तन-भजन करने का काम, उन्हें सौंप दिया था। उनके पीछे, साथी के लिये, विद्यार्थी खड़े रहते थे। मुझे याद नहीं कि, यह कीर्तन-प्रथा बहुत दिनों तक चली हो।

ग्रीष्म-काल आरंभ होते ही, पंडित जी अपने शिष्य-समुदाय के साथ, खुली हुई छत पर सोने के लिये आते; तथा सोने से पहिले, सहृदयता-पूर्वक वे सबको अपने हृदयोद्गार एवं अपनी आकांक्षा सुनाते रहते। भारतीय-संगीत की विजय-दुंदुभी समस्त संसार में शंखनाद करे, शास्त्रीय-दृष्टि से उसमें संशोधन हो; तथा दीपक-राग से दीपक जल उठते हैं और मेघ-मल्हार राग से वर्षा होने लगती है, इन आख्यायिकाओं का परीक्षण, इत्यादि अवश्य कर दिखाना चाहिये। राग-रागनियों के लिये, विशेष समय नियुक्त हैं; क्या राग-रागनियों के स्वरों का उस विशेष समय पर पाई जाने वाली मानवी-मनोवृत्ति से कुछ सम्बंध है अथवा परंपरात्मक बलात्कार के कारण पड़ी हुई, वह एक रूढ़ि है? इस के शोध के अतिरिक्त, संगीतोन्नति का अन्य उपाय ही नहीं इस प्रकार के विषयों पर, पंडित जी सदैव अपने विद्यार्थियों से चर्चा किया करते थे। मोर, बैल एवं कोकिल, इत्यादि की आवाज़ को भारतीय-संगीत-शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक को सात स्वरों में से एक-स्वर दिया गया है।

उसमें कुछ सत्य भी है कि, वह सब प्राचीन-संगीतज्ञों का कल्पना-विलास मात्र ही है। आवाज़ के प्रभाव से दीपक भक-भकाने लगते हैं, इस पर से संशोधन के लिये आधार-मार्ग-प्रदर्शन होना संभव है। इन सब विषयों का इस गुरु-शिष्य सम्वाद में उपयुक्त स्थान रहता था। इस विषय के संशोधन-कार्य को पूरा तो क्या, आरंभ करने भर की भी, पंडित जी को फ़ुरसत न मिलती थी और कहीं उन्हें इतना अवकाश, भाग्य-वश मिल सकता, तो न जाने इस संशोधन-कार्य का रूप ही क्या होता. समस्त विद्यार्थियों के हृदय में, केवल यही प्रबल आकांक्षा प्रज्वलित करना कि, भारतीय-संगीत का उद्धार व जय-जय कार हो; इस सम्भाषण का सार था। लाहौर में, शास्त्रीय-संशोधन का, केवल एक ही साधन व चिन्ह उपलब्ध था। वह एक ताल-यंत्र था। जिस प्रकार घड़ी में. १५ मिनिट, आध-घंटे अथवा एक घंटे के अन्तर से घन्टी सी बजती है, उसी प्रकार इस यंत्र की एक विशेष चाबी को भर दिया कि, उसमें से मात्राओंके निश्चित एवं ठीक अन्तर पर घंटी सी बजने की योजना थी। यह यंत्र, त्रिकोण की आकार का था; तथा उसका बाहरी ढाँचा लकड़ी का और उसके अन्दर मशीन। वह यंत्र, कभी-कभी दिखा दिया जाता था; परन्तु उसका कभी प्रयोग किया गया हो, यह देखने में नहीं आया। पंडित जी के संगीत-शिक्षण में स्वर-साधन पर विशेषतः ध्यान दिया जाता था। स्वरों में किसी प्रकार का भी दोष उत्पन्न न हो, अतः उसके पूर्णतः अभ्यास में छात्र-गण जितना भी समय व्यतीत करें, उतना ही श्रेयस्कर; यह उनका मत था। वे गर्व-पूर्वक कभी-कभी यह कहते थे, "मेरी हड्डी-हड्डी में स्वर इतने रम गये हैं कि, यदि मृत्यु के पश्चात् भी कोई उन अपनी अँगुलियों से टिक-टिक करने का प्रयत्न करेगा, तो अवश्य वे स्वर उन मृत्य-हड्डियों में से निकलकर सुनाई देंगे। उनके मृत्यु के समय, जो उनके शिष्य-गण उपस्थित थे, उनका कहना है कि, उनकी मृत्यू के पश्चात्, वास्तव में पंडित जी का वह गर्व यथार्थ सिद्ध हुआ। जब पंडित जी का स्वास्थ बहुत ही बिगड़ जाने के कारण, शरीर अत्यंत क्षीण हो गया; तो के. बाला साहब मिरजकर, उन्हे अपने यहाँ ले गये और उनके औषधोपचार की उचित व्यवस्था भी उन्होंने की। पंडित जी की शुश्रुषा के लिये, उनके पास कुछ शिष्य थे। उनके स्वास्थ्य के सुधरने की कोई आशा नहीं थी। अन्त में वे बार-बार मूर्च्छित से हो जाते थे। पंडित जी ने इच्छा प्रकट की थी कि, उनके प्राणान्त—काल तक, दिन—रात 'रघुपति राघव राजा-राम, पतित पावन सीताराम' का अखंड कीर्तन किया

जाय। अतः समस्त शिष्यों ने वैसा ही बारी-बारी से करने की व्यवस्था की थी। इस ईश्वरीय—मंत्र के गायन की निरंतरता का तानिक भी खंडन होते ही, बेसुधी में भी उनके चित्त को एक प्रकार की घबराहट और बेचैनी सी होने लगती थी। फिर इस गायन के स्वर कानों में पड़ते ही वह शारीरिक–वेदना बंद होकर उनके क्षीण कंठ से केवल 'राम' शब्द निकलता था। जब मिरजकर सा: को यह बात प्रतीत हुई तो, उन्होंने इस बात की परीक्षा की कि, पंडित जी की बेसुधी वास्तविक थी अथवा मिथ्या। सच–मुच बेसुध होते हुए भी उन पर स्वरों का प्रभाव पड़ता था; जब यह सिद्ध होगया तो फिर कभी भी मिरजकर सा: ने परीक्षा के लिये पंडित जी को कष्ट नहीं दिया। जिस समय, पंडित जी के निधन के निमित्त पहली शोक-सभा बम्बई में हुई थी, तो उनके मरण–समय, पंडित जी के पास उपस्थित शिष्यों में कहा था कि, उनकी इच्छानुसार ही मृत्यु–पर्यन्त, 'रघुपति राघव' का गायन–युक्त अखंड–परायण हुआ था। एक वक्ता ने, अपने भाषण में पंडित जी की 'हड्डियों में भी स्वर रमगये थे' इस बात पर विशेष ज़ोर दिया था।।

स्वर–साधन जितना ही, पंडित जी ताल पर भी ध्यान रखते थे। उनका सदैव यही उपदेश था कि, 'गाने में अलौकिक निपुणता, यदि साध्य न हुई, तो उसके बिना चल सकता है, किन्तु स्वर और ताल के मेल में ग़ल्ती नहीं होना चाहिये। उस उपदेश के अनुसार यद्यपि उन्होंने अपने गुरू जी के पास विद्या-दान प्राप्त करते समय पर्याप्त अभ्यास किया था, तो भी विद्यालय में वे, वर्ष में लग-भग दो महिने, बहुत ही सुबह उठकर अथवा रात को, दो-तीन घंटे किसी नौ-सिखिये की भाँति अपने गायन को अवश्य दोहराते रहते थे। यह समय प्राय: मार्च–अप्रेल का होता था। मई के महिने में, दौरे पर जाने से पूर्व, यह तैयारी होती थी। इस से प्रौढ़–विद्यार्थियों को स्वभावतः बहुत ही लाभ होता था। अन्यथा उन्हें, पंडित जी, जो कुछ भी थोड़े से समय में सिखा पाते थे, उसी पर निर्भर रहना पड़ता था। किन्तु, पंडित जी जब तैयारी करने बैठते, तो चीज़ों की विपुलता एवं गाने की कुशलता का जो भंडार उनके सामने, उपयोगार्थ खुल जाता, तथा उस समय जो अध्ययन होता था, उसका जैसा बरसों के शिक्षण में भी नहीं होता था। इस समय पंडित जी जो, अपनी गायन–कला की विशेषतः तथा अपने दौरे में जगह–जगह नामांकित गवैयों के गायन से सम्बंधित अनुभवों की व्याख्या करते थे, वह प्रौढ़–विद्यार्थियों को विशेषतः रुचिकर लगता था, यह कोई, आश्चर्य की बात नहीं।

विद्यालय के रहन–सहन में, व्यसन का कोई स्थान न था। पंडित जी को, स्वयं सुपारी तक खाने की भी आदत न थी, वर्ष भर में, जो दो–चार विशेष भोज्य इत्यादि होते थे। केवल उसी अवसर पर विद्यार्थियों को पान–सुपारी के दर्शन हो पाते थे। उप-युक्त कोठारी को तम्बाखू खाने का व्यसन था। इसी प्रकार, किसी एक को अफीम खाने की आदत थी। केवल उन्हें, वह नशा करना मना नहीं था। विद्यालय में शुद्ध–शाकाहारी–भोजन करना पड़ता था। लक्ष्मणसिंह को, कभी–कभी, जब इच्छा होती, तो विद्यालय के बाहर जाकर, आठ–दिन में एक बार, मांसहारी–भोजन करने की स्वीकृति मिली हुई थी। पंडित जी का खाना–पिना दूसरों की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न तथा पौष्टिक होता था। बचपन में, विद्यार्जन के समय उनके खाने—पीने की व्यवस्था राजपुत्र की सी होने के कारण उनके खाने के साथ बहुत सी स्वादिष्ट चीज़ें [अचार, मुरब्बे वं चटनी इत्यादि] अवश्य होती थीं। इसके अतिरिक्त भोजन का प्रमाण भी अच्छा–ख़ासा था। बाला साहब मिरजकर को मल्ल–विद्या से बड़ा प्रेम था, अतः उन्होंने पंडित जी को भी बचपन से ही व्यायाम कराना शुरू कर दिया था। उस समय की कमाई हुई तंदुरुस्ती स्वभावतः जवानी के दिनों में, जब वे लाहौर में थे; तो मानों, बस खिल उठी थी। विद्यालय में सुबह—शाम चाय–काफ़ी पीने की प्रथा नहीं थी। लाहौर में, यदि कोई पुकारे, तो, 'जी' शब्द द्वारा उत्तर देने की प्रथा है। वहाँ के लोगों को दक्षिणी ढंग के अनुसार 'ओ' कहना उजड्डपन मालूम होता है। अतः जब यह बात पंडित जी को ज्ञात हुई तो, उन्होंने भी 'जी' कहकर उत्तर देने की प्रथा डाल दी थी।

सन् १९०६ में, ब्रिटिश–युवराज के आगमन का एक प्रसंग पहिले बताया जा चुका है। उसके पश्चात्, दूसरा स्मरणीय–प्रसंग श्री. ना. गोखले का आगमन है। संयुक्त–प्रान्त का राजकीय–दौरा, समाप्त करके, सन् १९०७ की फ़रवरी के महिने में, श्री. गोखले लाहौर आये। लाहौर के नागरिकों ने उनका जो सत्कार किया, वह लाहौर के समस्त राजकीय–जीवन के इतिहास में एक अभूत–पूर्व ही था। पंडित जी उनसे मिलने गये और श्री. गोखले से, विद्यालय में पधारने तथा जल–पान करने के लिये निवेदन की। श्री. गोखले ने, इस निवेदन के कारण, अन्य कामों की अधिकता के होते हुए भी, विद्यालय को भेंट के निमित्त, एक घन्टे का समय निश्चित किया। श्री, गोखले के सम्मान के लिये, पंडित जी द्वारा निमंत्रित लग–भग २५–३० चुने हुए

नागरिक भी आये थे। उनमें, लाहौर में रहने वाले महाराष्ट्रियों की ही संख्या अधिक थी। 'गान्धर्व महा विद्यालय' एक महाराष्ट्र के महाराष्ट्री ने स्थापित किया था, यह बात, श्री. गोखले को कुछ अजीब मालूम हुई। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि, मातृ-भाषा के प्रति, श्री. गोखले को जो प्रेम था, वह इस संस्था में आने पर ही जागृत हुआ। जब सब लोग जल-पान के लिये बैठे, तो पंडित जी ने श्री. गोखले से आग्रह किया कि, वे मातृ-भाषा, मराठी में ही बात-चीत करें। अतः, उन्होंने कहा, 'बहुत दिनों से मराठी बोलने का अवसर ही नहीं आया है।' जल-पान के लिये, बनाई गई वस्तु मटर व गोभी के मिश्रण से बनाये हुए गोले पोहे, असली महाराष्ट्रीय-ढंग के होने की कारण, श्री. गोखले को आहार का तानिक भी ज्ञान न रहा। यद्यपि, देवधर जी ने, बारंबार उसकी ओर श्री. गोखले का ध्यान आकर्षित किया, तो भी उन्होंने न माना और देवधर जी के उस संकेत के विरुद्ध, पंडित जी और भी आग्रह करते जा रहे थे। श्री. गोखले इतने प्रसन्न हुए कि, उनके बस की बात होती तो, वे वहीं अपना डेरा जमा देते। किन्तु, संध्याकाल के निमित्त नियुक्त अन्य कार्य—क्रमों की याद आते ही, उन्होंने जल-पान समाप्त कर दिया और तब वे पहिली मंज़िल के दीवानख़ाने में गये। ५-७ मिनिट तक, उन्होंने विद्यालय के सम्बन्ध में गौरव-युक्त शब्दों में एक छोटा सा भाषण दिया और फिर किसी दूसरी जगह चले गये। दो महान्-महाराष्ट्रियों की यह, पर-प्रांतीय भेंट अनेक प्रकार से बोध-प्रद थी। जिस समय जल-पान चल रहा था, उसी समय हिंदुस्तान के भवितव्य का अनुलक्षण करके, श्री. गोखले ने पंडित जी के कार्यों के विषय में जो श्रद्धा-पूर्ण उत्तेजनात्मक विचार प्रकट किये, उन्हें सुनकर, कृतज्ञता-वश पंडित जी की आँखों में आँसू भर आये और कण्ठ रुंध गया। किसी तरह, पंडित जी ने आभार-प्रदर्शन करके, उस समय काम चला लिया। श्री. गोखले की अपेक्षा, पंडित जी के मन में, श्री. तिलक के प्रति, सदैव अधिक अभिमान दिखाई देता था। किन्तु, उस दिन के अनुभव से, श्री. गोखले के हृदय की दर्यादिली का पंडित जी के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि, फिर कभी भी श्री. गोखले की उस मुलाक़ात की चर्चा होते ही पंडित जी गद्-गद् हो जाते थे।

अब तक पंडित जी के चरित्र एवं उनकी कर्तव्य-परायणता का परिचय कराने के लिये उपर्युक्त वर्णन ही, जो कुछ भी जल्दी—जल्दी व थोड़े में बन सका, मैंने किया है। इस विषय में, मैं अभी कुछ और नम्र-निवेदन कर सकता हूँ; किंतु कहीं तो इस अविरल स्मृति-धारा को स्थगित करना ही पड़ेगा। पंडित जी के अपना घर छोड़ने के पश्चात् के अनेकों अनुभव वर्णनीय है। उस समय का बहुत सा उल्लेख प्रो. देवधर के लेखों में आचुका है और वह बिल्कुल ही भिन्न है, अतः उसका यहाँ फिर वर्णन न करना ही उपयुक्त होगा। उनमें से दो बार के अनुभवों का विशेष तात्पर्य है। एक सतारा के वकील का व दूसरा नृसिंहवाड़ी के देव के कपड़ों का। मिरज छोड़ने के पश्चात्, पंडित जी ने सतारा के एक वकील सा: के यहाँ गणेशोत्सव के अवसर पर गाना स्वीकार कर लिया। वे बहुत नामी वकील थे। उन्होंने पंडित जी को बिल्कुल ही तुच्छ बिदायगी दी। जब पंडित जी ने यह कहा कि, वह रक़म वास्तव में पर्याप्त नहीं थी, तो उन्होंने उत्तर दिया, "जनाब! आपको अभी पैसा कमाने का अनुभव नहीं। जब वह प्राप्त हो जायगा, तो आप समझ सकेंगे कि, मेरी दी हुई यह बिदायगी भी बहुत ज्यादा है; अतः आप बुरा न मानिये। यह बिदायगी, आप संतोष-पूर्वक स्वीकार कीजिये।" पंडित जी को उन वकील सा: पर बड़ा क्रोध आया और वे कह बैठे, "यह बिदायगी आप अपने ही पास रखें। अब मैं पैसा कमाने के अनुभव को प्राप्त करके ही आपके पास बिदायगी माँगने आऊंगा।" पंडित जी ने इस प्रकार स्वाभिमान प्रदर्शित करके, वह रक़म लेने से इन्कार कर दिया। उत्तर-हिन्दुस्तान में संस्था-स्थापित करके और कीर्ति-लाभ प्राप्त करके, लग-भग १२ वर्ष पश्चात्, पंडित जी पुनः सतारा गये और उन वकील सा: के पास सन्देशा भेजा, "गाने का एक जलसा फिर कीजिये।" वे वकील सा:, पंडित जी के इस हेतु को ध्यान में रखकर, पिछली बार की बिदायगी की उपयुक्त रक़म अपनी जेब में डालकर, उन्हें दूसरे जलसे का निमंत्रण देने के लिये गये। वे पंडित जी के सामने पहुँच कर कहने लगे, "पंडित जी! उस समय मैं आपकी योग्यता का ठीक-ठीक अनुमान न लगा सका। अब वास्तव में विश्वास हुआ कि, आप एक महान् गुणी विभूति हैं। अतः यह लीजिये पिछली बार की बिदायगी।" यह कह कर, उन्होंने पहले से दस-गुनी रक़म पंडित जी के सामने रखदी और नवीन जलसे के लिये सानुरोध आमंत्रित किया। १२ वर्ष के पश्चात्, उस रक़म का भी, पंडित जी की नज़र में कोई विशेष मूल्य नहीं था। उन्होंने, वकील सा: को और भी शर्मिन्दा करने के लिये, वकील सा: के घर पर हुए, इस नये जलसे की बिदायगी भी लेने से इन्कार

कर दिया। इस पर वकील सा: ने, विद्यालय को दान-स्वरूप, एक भारी रकम देकर, उस दोषारोप से अपने आपको मुक्त कर लिया। प्रो. देवधर के लेख में, इस घटना का वर्णन आया है; किन्तु वर्णन में कुछ थोड़ा सा अन्तर होने के कारण फिर से यहां स्पष्टतः दर्शाया गया है।

नृसिंहवाड़ी के देव पर के पुराने वस्त्र नदी में फेंक दिये जाया करते थे। वे किसी भी मनुष्य को काम में नहीं लाने दिये जाते थे। इस अख्यायिका की सत्यता पर ही आगे आने वाली हक़ीक़त की सत्यता अवलंबित है; क्योंकि उसके बाद का आधार, दूसरों की मुख-परम्परा है। बाला साहब मिरजकर को कीर्तन का शौक था। आज से कोई २५ से भी अधिक वर्ष पहिले की बात होगी, पंडित जी एक बार, जब उनके सामने कीर्तन करने के लिये खड़े हुए, तो श्री. मिरजकर ने कहा, "वैसे कीर्तन-कार तो बहुत से देखे हैं; किन्तु तुम यदि, दत्तात्रेय के वस्त्रों की कफ़नी पहनकर ही कीर्तन करके बताओगे, तभी मैं तुम्हें ईश्वरीय-प्रसाद प्राप्त कीर्तनकार समझूँगा। नहीं तो मैं यही कहूँगा कि, तुम केवल एक कीर्तन-कार का हू-बहू स्वांग रचते हो।" श्री. मिरजकर के इन हृदय-वेधी वाक्यों को सुनकर, पंडित जी ने भी नृसिंहवाड़ी में मोंचा जमा दिया। वहाँ रामायण पर प्रवचन किये। जब वह अवधि समाप्त हो गई, तो उद्यापन के नाम से एक ब्रह्म-भोज एवं अन्न-वितरण किया। व्यवस्थापकों ने प्रसाद के रूप में कुछ रकम उनके भेंट की। पंडित जी ने नम्रता पूर्वक उनसे कहा, 'देव के वस्त्रों का दान लेने की आशा से यहाँ आया था। फिर यदि आपके मन में आप से आप वह देने की प्रेरणा उत्पन्न न हुई, तो अपने पुण्यों का अभाव समझ कर मैं यहाँ से चला जाऊँगा और फिर ईश्वर की इच्छानुसार आकर, अपनी इच्छित वस्तु के लिये याचना करूंगा। ईश्वर कृपा से प्राप्त सोने और चांदी से तो मैं तृप्त हो चुका हूँ, अतः उस प्रकार का दान अब नहीं चाहिये!" पंडित जी के इस उत्तर से निराश होकर, वाड़ी के व्यवस्थापक एक उलझन में पड़ गये। वे वस्त्र केवल एक दो महा-पुरुषों को ही मिले थे। ब. भू. वासुदेवानन्द सरस्वती को वे मिले थे।' यह जान लेने पर भी, जब व्यवस्थापकों ने देखा कि, पंडित जी अपना हठ नहीं छोड़ते हैं; तो उन्होंने, इस पर विचार करने के लिये कुछ समय की मोहलत माँगी। इस अवधि में पंडित जी ने पुनः रामायण-प्रवचन आरंभ कर दिया। अवधि समाप्त होते ही, फिर से प्रवचन-व्रत का पारण किया। अब तो व्यवस्थापकों के मन में वस्त्रों को प्रसाद-स्वरूप देने की सम्वेदना उत्पन्न हो चुकी थी। इससे पहिले जिन विभूतियों को, वे वस्त्र प्रसाद-स्वरूप मिल चुके थे, पंडित जी भी योग्यता में उन्हीं के समान थे, तथा उन्हें वे वस्त्र प्रसाद-स्वरूप देने में, किसी अयोग्य व्यक्ति को दे देने के आरोप के लिये जब कोई जगह न रहने के बारे में उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया, तो वे देव-वस्त्र प्रसाद के रूप में, पंडित जी की भेंट कर दिये गये। श्री. मिरजकर भी इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि, पंडित जी उन्हीं वस्त्रों सहित उनके पास आयेंगे; अतः उन्होंने अपनी बात रखने के लिये, पंडित जी का बड़े गौरव के साथ स्वागत किया। इस सब कथा की, वस्तु-स्थिति के विषय में, प्रारंभ में ही यह कहा जा चुका है कि, वह द्वितीय-श्रेणी का प्रमाण है; अतः उसे सर्व-साधारण रूप से ही समझना आवश्यक है। यह कथा अक्षरशः सत्य हो अथवा न हो; किन्तु पंडित जी के समस्त चरित्र में यदि उनकी विचार-दृढ़ता तथा उनका आत्म-विश्वास देखा जाय तो, इसमें किसी को भी संशय नहीं होगा कि, वे देवताओं द्वारा धैर्य व साहस की परीक्षा किये जाने वाले एक महापुरुष थे।

१९२२ में, कॉंग्रेस के अधिवेशन के लिये, पंडित जी अपने सब साथियों सहित गया गये थे। जिस रोज़ वे गया से वापस लौटने वाले थे, उसी रोज़ वे खादी-प्रदर्शन देखने के लिये गये। किसी ने वहाँ उनकी ऊपर की (छाती के पास वाली) जेब काट ली। इस प्रकार लग-भग ४०० रुपये, तिजोरी की चाबियाँ, रेल के टिकिट; इत्यादि चीज़ें चोरी हो गईं। जब पंडित जी, स्टेशन पर जाने के लिये निकले, तो उस चोरी का पता चला और बम्बई के लिये निश्चित प्रयाण स्थगित हो गया। इस घटना के पश्चात् जब, पंडित जी से मिलने का अवसर आया, तो वे हँसते-हँसते कहने लगे, "कल एक मन्दिर में खड़ाऊँ चोरी चली गईं, तो आज रुपये-पैसे भी चले गये। ईश्वर ने छाती से लेकर पैर तक तो स्वच्छ (पवित्र) कर दिया; परन्तु अभी सिर और गला, साबित, व वैसे के तैसे मौजूद हैं। यद्यपि, बम्बई जाने में देर होगई है, फिर भी राम जी की कृपा से दूसरी और बातों का अभाव नहीं है।" पंडित जी की चोरी का समाचार सुनकर, गया के कई धनिक-व्यक्ति; जो उन्हें चाहते थे, पंडित जी से मिलने के लिये आये, तथा रामायण-सप्ताह करने की योजना के विषय में उनसे सादर-निवेदन की। योजना के अनुसार एक

(शेष पृष्ठ १८ पर)

कलाकारों के क़िस्से

(१) ख़ाँ साहब रजबअली ख़ाँ [देवास, सीनियर]:—

ख़ां साहब रजबअली ख़ां के विक्षिप्त स्वभाव के विषय में अनेकों मनोरंजक सत्य–कथायें प्रसिद्ध हैं:

ऐन जवानी के दिनों में, उनका कार्य–क्रम इस प्रकार रहता था। वे देवास के बाहर दौरे पर जाते। आठ--दस महिने भिन्न-भिन्न गाँवों व राजे–रजवाड़ों से अपने गायन द्वारा ८-१० हज़ार रुपये एकत्रित करके, वापस देवास आ जाते; फिर उनका रियाज़ आरंभ होता। आठ--दस घंटे तक गाने के बाद, जब गायन से मन ऊब जाता, तो फिर वे बीन बजाते। संध्या--समय मित्र-मंडली एकत्रित होती, तथा नित्य–प्रति खाने-पीने का समा रहता।

जब तक उनके पास रुपये–पैसे रहते, तब तक वे किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करते थे। ज्योंही जेब ख़ाली होती कि, कुछ चुने हुए व्यापारियों से वे चीज़ें उधार मँगाने लगते। ये व्यापारी भी उन्हें एक विशेष मर्यादा तक ही उधार दिया करते थे; किन्तु उस मर्यादा तक पहुँचते ही, वे ख़ां साहब को सूचित कर देते कि, उससे अधिक उधार सामान नहीं मिलेगा। बस, ख़ां साहब फिर दौरे पर चल देते और रुपये--पैसे फिर एकत्रित करके, देवास वापस आकर, सारा ऋण चुका देते; तथा पिछली बार की तरह, फिर से उधारी शुरू हो जाती। ऐसी परिस्थिति भी आ पहुँचती थी कि, कभी–कभी तो नक़द एक--दो आने भी पास न होते थे।

[अ]

एक बार ऐसी ही दशा के समय, उनके यहाँ कोई महमान आया। ख़ाँ साहब ने अतिथि का यथोचित सत्कार किया और उसके घोड़े को भी घर के बाहर, एक ओर छाया में बँधवा दिया। अब परिस्थिति कुछ ऐसी बिकट थी कि, घोड़े के लिये घास मँगाने भर को उनके पास नक़द पैसे नहीं थे। अतः यह भेद छिपाने के लिये, उन्होंने अपने एक शिष्य को बुलाकर कहा, "अरे! अपने हलवाई के पास से एक मन जलेबी तो ले आओ!" यह सुनकर अतिथि को बड़ा आश्चर्य लगा और उसने ख़ाँ साहब से कहा, "ख़ाँ साहब इतनी जलेबियाँ किसलिये?" ख़ाँ साः ने उत्तर दिया, "आपके घोड़े के लिये?" अतिथि ने सहज ही ख़ाँ साः से फिर कहा, "अरे! ख़ाँ साः मेरा घोड़ा तो घास खाता है, जलेबी नहीं!" ख़ाँ साः ने सगर्व कटाक्ष करते हुए कहा, "मेरे घर आकर, आपका घोड़ा घास खाये; यह सरासर हल्की बात है। मैं तो अपने महमान के घोड़े को अपनी हैसियत के हिसाब से जलेबी ही खिलाऊँगा।" बस, घोड़े को, उस दिन जलेबी ही खिलाई गई। इसके अतिरिक्त और उपाय ही क्या था? घास के लिये आठ–दस आने पैसे जो चाहिये थे, सो कहाँ से आते? जलेबी तो उधार मिलगई थीं।

[ब]

ख़ाँ साहब बड़े स्वात्माभिमानी हैं। उन्हें अपनी तनिक सी भी मान—हानि सहन नहीं। लखनऊ–कन्नौज का रहने वाला एक फेरीवाला इत्र-फ़रोश, ख़ाँ साहब के पास प्रायः आया करता था; क्योंकि वे उसके ख़ास ग्राहक थे। जब भी ख़ां साहब के पास रुपये–पैसे होते, तो अच्छी ख़ासी ख़रीदारी होती थी। वे अपने व अपने मित्रों के कपड़ों में ख़ूब इत्र चुपड़ा करते थे; यहाँ तक कि, नये व क़ीमती कपड़े भी उन्होंने इत्र के रंगों से चित्र-विचित्र कर दिये थे। ख़ां साहब के कपड़ों में से २५-३० फ़ुट की दूरी पर से ही इत्र की सुगन्ध का भास होने लगता था। उन्हें इत्र से इतना अधिक शौक था!

संयोग--वंश, इत्रवाले की इस फेरी के समय, उनके पास रुपये नहीं थे। पहिली बार ख़ां साः ने सारे इत्रों की जाँच की; किन्तु ख़रीदा ज़रा सा भी नहीं। दो-चार दिन पश्चात् वह फिर आया। ख़ां साः ने फिर इत्रों की जाँच की और 'अच्छे नहीं हैं' कह कर, सारे इत्र नक़ली इत्यादि बता कर कटु--आलोचना कर डाली। पाँच--छः दिन बाद, इत्र वाला फिर अच्छे-अच्छे इत्र लेकर आया; किन्तु ख़ां साहब ने फिर पहिले की भाँति इत्र ख़रीदने से इन्कार कर दिया। इस पर उस फेरी वाले को क्रोध आगया और वह कहने लगा, "ख़ां साः इत्र को क्यों आप बेकार में नाम रखते हैं? आप साफ़-साफ़ क्यों नहीं कह देते कि, आपके

पास ख़रीदने के लिये रुपये ही नहीं हैं ? ' खां साहब अपनी इस मान-हानि को न सह सके। उन्होंने तुरन्त सारी इत्र की पेटी की क़ीमत पूछी। इत्र वाले ने प्रसन्नता-पूर्वक कहा, " आठ सौ रुपये। खां साहब ने एक क्षण में आठ सौ रुपये के नोट लाकर, इत्रवाले के सामने, लापरवाही से फेंक दिये और अपने जूतों में तथा घर के दियों में सारी इत्र की शीशियाँ खाली करवा लीं। तत्पश्चात् ख़ाँ साहब ने इत्र-फ़रोश से कहा, " तेरा इत्र, जूतों में लगाने के तेल जैसा ही है ! अब यहाँ से तुम चलते बनो। " ख़ाँ साहब ने अपने अपमान का बदला इस प्रकार लिया।

असली बात यह थी कि, इत्रवाले की दूसरी फेरी के बाद ही खां साहब को इन्दौर में, गाने के लिये, वे ८०० रु. मिल चुके थे और उन्हीं को, ख़ाँ साहब ने इत्र वाले को नीचा दिखाने में यों ख़र्च कर डाला था।

खां साहब, वृद्धावस्था के कारण आज-कल देवास में ही रहते हैं। देवास (सीनियर) के महाराजा ने, उनके महिने-भर के व्यय के निमित्त पर्याप्त पेन्शन कर दी है, जिससे उनका बुढ़ापा सुख एवं शांति से व्यतीत हो रहा है। इस उदार-कृत्य के लिये, देवास-नरेश का जितना भी आभार माना जाय, वह थोड़ा ही है।

(श्री, कृष्णराव मजुमदार एवं खां सा: के अन्य शिष्यों से सुनी हुई)

बी. आर. देवधर

(२) विलायत में हिंदुस्तानी-संगीत का कार्य-क्रमः-

एक बार, किसी बड़े संस्थान के शासक, अपने लवाज़मे के सहित विलायत की सैर को गये थे। अन्य दरबारियों के साथ ही, वे अपने एक सर्व-प्रिय सारंगी वाले को भी ले गये थे।

वहाँ, एक अन्तर-राष्ट्रीय संगीत का जलसा होना निश्चित हुआ, तथा हिन्दुस्तानी-संगीत के लिये, इन खां साहब के सारंगी-वादन का आयोजन किया गया था। कार्य-क्रम में प्रत्येक राष्ट्र के केवल १५ मिनिट ही रखे गये थे। इटली, फ्रान्स व नार्वे इत्यादि, देशों का कार्यक्रम हो चुकने के बाद, हिन्दुस्तानी-संगीत की बारी आई। खां साहब स्टेज पर जा बैठे, तथा धीरे से अपनी सारंगी निकाल कर, उसके तार मिलाने लगे। सब तरफ़ मिलाने के बाद, उन्होंने मुख्य तारों को मिलाया। सारंगी-वादनार्थ बैठक मारकर, तथा हाथ में गज़ लेकर वे बजाना आरंभ करने ही वाले थे कि, पर्दा गिरा दिया गया। यूरोपियन-समाज सभ्य होने के नाते, समस्त श्रोताओं ने तालियों की गरज द्वारा इस हिन्दुस्तानी कार्य-क्रम की प्रशंसा की। इस पर भी ख़ाँ साहब स्टेज पर ही बैठे रहे, तब व्यवस्थापक ने खां सा: के पास जाकर कहा, " आपका संगीत बहुत ही अच्छा है। तारों की वह ' ठुन-ठुन ' व बीच-बीच में ' ढुई-ढुई ' हमें अत्यन्त ही नवीन प्रतीत हुई। हमारा श्रोता-वर्ग आपके वादन पर मुग्ध होकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ है। आपके लिये नियत समय अब समाप्त हो चुका है, अतः आप अब भीतर चलिये; क्योंकि स्टेज पर अभी दूसरा कार्य-क्रम होना बाक़ी है।

बी. आर. देवधर

(३) सारंगी की हू-बहू साथः—

एक समय, कराची में एक महफ़िल शुरू हुई। साथी के लिये बैठा हुआ सारंगीवाला एक गुणी वादनकार था। खां साहब ने बड़ा ही प्रयत्न किया; परन्तु गाना न जमा। हर बार, सब लोग केवल सारंगी वाले को ही उसके वादन के लिये वाह वाह देते। खां साहब इस पर चिढ़ गये और उस सारंगी वाले को वे बार-बार टोकने लगे- ' अबे ! बराबर साथ कर, अपना कुछ मत बजाओ।' इस प्रकार वे सारंगी वाले को तंग करने लगे। अन्त में, सारंगी वाला भी, यह अपमान सहन न कर सका और उसने अपनी करामात दिखाने का संकल्प कर लिया। थोड़ी ही देर में, खां साहब ने कहा— अबे ! ' सारंगी वाले ने भी ' चूं-चूं ' शब्द बजा कर उनकी साथ की। फिर खां साहब ने कहा—' अरे बत्तमीज़ ! सारंगी वाले ने फिर वैसी ही आवाज़ सारंगी पर बजाई। खां सा: चिढ़ कर गालियाँ देने लगे, तथा सारंगी वाला भी उन गालियों जैसी ही आवाज़ बजाकर, निकालने लगा। यह द्वन्द ३-४ मिनिट तक हो चुकने पर, दूसरे लोगों ने वह झगड़ा निपटाया, तथा महफ़िल समाप्त कर दी गई।

(४) संगीत के कारण लगी हुई आग :—

भिन्न-भिन्न गवैयों को, गाते समय हाव-भाव प्रदर्शित करने की भिन्न-भिन्न आदतें होती हैं। कोई तान मारते समय सोये हुए की भाँति आड़े पसर जाते हैं, घुटनों के बल बैठते हैं, तो कुछ आगे खड़े हो जाते हैं। पंजाब के एक प्रसिद्ध गवैये को ज़मीन पर थपकी देकर व मुट्ठी मारकर, तान भरने की आदत है (बिछी

(शेष पृष्ठ १७ पर)

कलावन्त की आस !

(लेखकः—श्री. का. न. केलकर, पूना)

" निम्न लेख पढ़कर, वाचकों के मन में यह शंका होना सम्भव है कि, श्री. का. न. केलकर मूलतः एक साहित्य–कार है अथवा चित्रकार। साहित्यिक–विरासत, उन्हें स्व. श्री. न.सिं. केलकर, 'साहित्य-सम्राट' से, जन्म लेते ही मिल गई है; किन्तु शौकिया तौर पर, पिछले कुछ वर्षों से, आपने उत्कृष्ट चित्रकारी करना भी आरम्भ कर दिया है। इतने पर भी, वे स्वभावतः 'गायक' ही हैं। व्यवसाय से साहित्यिक, शौक की खातिर चित्रकला–व्यासंगी; किन्तु स्वभाव से गायक; इस प्रकार यदि उनके गुणों का वर्णन किया जाय, तो वे एक विचारशील एवं चिकित्सक कलाकार हैं। प्रस्तुत लेख में आपने जिस समस्या को उत्पन्न किया है, वह सभी कलाकारों के लिये रुचिकर होगी।

इस प्रश्न के अनेकों पहलू हो सकते हैं। कलात्मक मृग–तृष्णा को तृप्त करने के लिये भटकते–भटकते, सुदूर जा पहुँचने के पश्चात् संभवतः कुछ की स्थिति ऐसी हो जाय कि, विश्रांति–स्थान पर लौट आने की प्रबल लालसा होते हुए भी मार्ग दृष्टि–गोचर न हो; किन्तु जिनके जीवन में कला को कोई स्थान नहीं, उनके लिये तो कहीं भी विश्रांति–स्थान मिल सकता है; फिर उनका मार्ग ही कैसा ? आत्म–विस्मृति एवं 'आत्म–नाश' के बीच वियोजक सीमा–रेखा कौन सी है ? जिसे साधारणतः 'आत्म–नाश' समझा जाता है, वह वास्तव में, कहीं आत्म–प्राकट्य तो नहीं ? समस्त भगवद्–भक्त, कलाकार ही थे। ज्ञानेश्वर महाराज ने अठारहवें वर्ष ही में समाधि लेली थी, तो फिर क्या उसे 'आत्म–नाश' समझा जाय ? संत तुकाराम सांसारिक–व्यवहारों से विरक्त थे; तथा उन्हें भूख–प्यास तो क्या, अपनी देह की भी सुध नहीं थी। अतः क्या हम कह सकते हैं कि, उन्होंने 'आत्म–घात' किया था ? इसके अतिरिक्त, कला व्यासंग द्वारा प्राप्त आनंद, तथा सामान्य भोग–लालसा तृप्त कर लेने पर उत्पन्न आनन्द, क्या एक ही हैं ? ऐसे अनेकों प्रश्न उत्पन्न होते हैं।

श्री. केलकर के कथनानुसार, प्रत्येक कलाकार की अनुभूति एवं लगन भिन्न ही होगी; तथा उन्होंने अपने जीवन–भर की जटिल समस्याओं एवं गुत्थियों को स्वयं अवश्य ही सुलझाया होगा। इस प्रश्न पर वाचकगण यदि अपने–अपने विचार लिखकर भेजने का कष्ट करेंगे, तो वे अनेकों अध्ययन–शील व्यक्तियों के लिये मार्ग–दर्शक सिद्ध होंगे; तथा उन्हें 'विहार' में अवश्य स्थान मिलेगा।"

—'संपादक'

'गायन शास्त्र है अथवा कला'—यह समस्या मैंने, गत सितंबर के अंक में वाचकों के समक्ष, यथा–शक्ति प्रस्तुत की थी। वैसी ही एक दूसरी समस्या 'कला व जीवन'—मैं इस अंक में वाचकों के निर्णयार्थ प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ। ऐसी समस्यायें ही, सदैव एक प्रकार की मानसिक-अशांति एवं व्याकुलता की जननी बन जाती हैं। मानसिक–दुःख चाहे कला के ही कारण उत्पन्न क्यों न हो; वह आखिर दुःख ही तो है। वह दुःख, एक क्षीण एवं शुष्क अल्प कुश–कण्टक सा, जीवन–भर शूल की भाँति, वेदना–प्रद बना रहता है। कला के विषय में आज तक, क्या थोड़े लोगों ने तात्विक–चर्चा की है ? किन्तु मानव–जीवन की विशेष हिलोरों के कारण कलाकार के हृदय में जो अनेकों विचार–तरंगें, इधर से उधर अठखेलियाँ करती हुई एक दूसरे से टकराती रहती हैं; उन सबका समाधान केवल पुस्तकीय–अध्ययन से किस प्रकार संभव है ? पुस्तक में न पाई जाने वाली; किन्तु प्रत्यक्ष–जीवन में, पग–पग पर आ उपस्थित होने वाली, जटिल–समस्यायें, अनेक हैं। केवल कलाकार ही, दूसरे कलाकार के मानसिक–दुःख को समझ सकता है। किसी दूसरे को कदाचित् ही उसका अनुभव हो सके। अतः मैंने भी कला से संबंधित तात्विक–साहित्य अधिक न पढ़ने का संकल्प कर लिया है। किसी बात का स्वयं जो अनुभव प्राप्त हो, वही सच्चा एवं चिर–स्मरणीय है। इस समस्त संसार की नश्वरता को, अनुभवी विभूतियों ने, अपने प्रत्यक्ष–प्रमाण द्वारा स्पष्टतः सिद्ध कर दिया है; फिर भी सांसारिक–मनुष्य,

संसार–सागर में ग़ोते खाकर अपत्तियाँ मोल लेना ही पसन्द करता है। ऐसे उदाहरणों के ही आधार पर, कलाकार भी अपने जीवन की यात्रा की योजना करता, तथा आवश्यक युक्तियाँ जुटाता है। किन्तु, कोई बात यदि विचित्र सी प्रतीत होती है, तो वह यही कि—कला का क्या अर्थ है, उसका स्थायी–भाव क्या है; तथा उसका निपट अन्त कब और कौनसा होता है? इन सब जटिल–प्रश्नों का सही उत्तर, कला की आजन्म आराधना करने वाला भी नहीं दे पाता क्या कला कोई मृग–जल है? किसी भी जन्म में कला पूर्णतया साध्य नहीं हो पाती; तो फिर, क्या वह अनन्त है? बस, ऐसे अनेकों प्रश्न हृदय में बिजली की सी कौंध तथा ज्वार–भाटे की सी हलचलें पैदा कर देते हैं। दिन-भर जी–तोड़ परिश्रम करने के उपरान्त, वे कलाकार के आशावादी हृदय में अंकुश की भांति छिदकर, उसे जो भारी संताप पहुँचाते हैं, उसका वर्णन मैं यहाँ नहीं करना चाहता।

मेरे मित्र, श्री. वामनराव देशपांडे को बड़ा आश्चर्य हुआ कि, मैंने अपना समस्त पूर्व–जीवन एक लेखक के रूप में व्यतीत करके, किस प्रकार तथा क्यों, गत दो वर्षों से चित्रकार, का पेशा स्वीकार किया। अस्तु, उन्होंने सॉमर सेट माउधम का 'दि मून एण्ड सिक्स पैन्स' (The moon and six pence) नामक उपन्यास मेरे पास भेज दिया। इस उपन्यास के, लंदन के शेअर–बाज़ार में ब्रोकर का धंदा करने वाले, नायक ने, अपनी आयु के ४७ वें वर्ष में, चित्र–कला का श्री–गणेश किया। समस्त संसार से अपना नाता तोड़कर उसने अपना शेष जीवन केवल चित्र–कला की सेवार्थ व्यतीत किया। अंत में, दृष्टि में विकार उत्पन्न हो गया, रक्त–पित्त नामक भीषण रोग ने आ घेरा; तो भी उस कला–प्रेमी ने प्राणांत अपने कार्य को स्थगित न किया। उस कलाकार की उस अद्वितीय तूलिका द्वारा निर्मित 'गार्डन ऑफ् एडन' Garden of Eden) नामक भव्य चित्र यदि बच सका होता; तो समस्त संसार उसकी प्रशंसा कर उठता। किन्तु, उसे नष्ट कर डालने की तमन्ना उसी कलाकार ने अपने अंत–समय पर प्रगट की थी। इस चित्रकार को यश अवश्य मिला, परंतु मृत्यु के पश्चात्।

कोई भी साहित्यिक यह नहीं चाहता कि उसकी रचना को नष्ट कर दिया जाय। उसे अपनी स्वयं की रचना से अप्रतिम–प्रेम होता है। अपनी संतति का पालन–पोषण, जिस प्रकार मनुष्य दारिद्र में भी दिन बिता, तथा किसी भी आपत्ति का सामना कर के, करता है; उसी प्रकार कलावंत भी स्वयं अज्ञात-वास, दुःख तथा भूख-प्यास सब सहन करके अपनी कला रूपी 'साकी–शाला' का वैभवमय पोषण करता है। किन्तु, इस चित्रकार की भावना ने तो, इससे भी बाज़ी मार ली। नन्दन-वन (गार्डेन ऑफ् एडन,) नामक चित्र, चित्रित करते समय उनकी आत्मीयता इतनी जागृत हो गई कि, मानो वह साक्षात् उन के जीवन का चित्र हो। चित्रण करने में वह इतना तन्लीन हो गया कि शरीर क्षीण होते–होते प्राण पखेरू उड़ने की बाट जोहने लगे। फिर भी वह अपनी मानस–सृष्टि में जागृत ही था। वह चित्र मन चाहा बन चुकते ही उसका जीवन–कार्य समाप्त हो गया। तत्पश्चात्, उसे उस अप्रतिम चित्र से भी कोई ममता न रही और उसने अपनी परिचारिका से आग्रह किया कि, वह उसके दफ़न होते ही, उस अद्वितीय–चित्र को जलाकर ख़ाक करके उसकी अन्तिम अभिलाषा पूर्ण कर दे। उसने भी मृत–आत्मा को सुख से सदा के लिये विश्राम करा सकने की भावना के वशीभूत हो, उसका अक्षरशः पालन किया।

इस उपन्यास का मेरे जीवन से जो अनायास संबंध हो सका उसका, मैं इस स्थान पर वर्णन करना चाहता हूं। यद्यपि मुझे जन्म से ही संगीत से प्रगाढ़–प्रेम है, फिर भी कुछ दिनों से बहिरापन अधिक बढ़ जाने के कारण, मैं उस अमृत का पान नहीं कर पाता। इस कारण व्यवहार में अनेकों अड़चनें खड़ी हो जाती हैं। मेरे एक थिओसॉफ़िस्ट स्नेही उच्च–कोटि के होम्योपैथिक चिकित्सक हैं; उन्होंने मुझसे अपने बहिरेपन के इलाज के लिये सानुरोध निवेदन की। मैंने उन से कहा, "संसार के समस्त सब प्राणि यों को–क्या अमीर, क्या ग़रीब–पांच ज्ञानेंद्रियां ईश्वर ने दी हैं। उन में से यदि, केवल चार पर ही निर्भर रहकर मुझे अपना जीवन व्यतीत करना पड़े, तो वह मुझ जैसे बुद्धि–जीवी व्यक्ति पर कितना बड़ा कोप कहा जा सकता है?" इस पर मेरे स्नेही डाक्टर ने नकारात्मक रूप में सिर हिला कर कहा, "आप भूल करते हैं। मैं भी यह चाहता हूं कि, दूसरे व्यक्ति के अन्तः करण में जो भी विचार उत्पन्न होते हैं, वे मुझे रेडियो की भाँति आप से आप ज्ञात हो जायें; तथा कितना अच्छा होता कि, इसके लिये कोई छठी इन्द्री, ईश्वर ने दी होती। अतः उसकी अनुपस्थिति में, यदि मैं दुखी नहीं होता, तो फिर, पांच में से केवल एक इन्द्री के अनुपस्थित होने पर, आप क्यों इतने दुखी एवं निराश होते

है ? आप बुद्धिमान्, विशेषतः कलाकार हैं। कलाकार का जीवन सरिता के प्रबल एवं वेगवान प्रवाह के सदृश है। कोई भी उसको बांध द्वारा नहीं रोक सकता। बीच ही में यदि कोई रुकावट आजाय तो भेल ही वह स्थिर सा दिखाई देने लगे; किन्तु शीघ्र ही उस उमड़ती हुई नदी का प्रवाह उस बाँध को भी अपने गर्भ में छिपा कर अपनी प्रबलता का प्रत्यक्ष परिचय देने लगता है। उसी प्रकार कलावन्त भी अपनी जीवन यात्रा की पूर्ति का कोई दूसरा मार्ग अवश्य ही ढूँढ़ लेता है।"

यह बुद्धि-वाद सुनकर मैं चुप-चाप उठकर वहाँ से चल दिया, तथा कुछ ही दिनों में, अपने हितैषी की उस सलाह को ही आधार मान कर सहज पैन्सिल के चित्र बनाने लगा। अपने विद्यार्थी-जीवन में मुझे चित्र-कारी से प्रेम था। अतः पेन्टिंग का सारा सामान एकत्रित करके थोड़े दिनों में, मैंने एक निःशंक विश्राम करते हुए सिंह का तैल-चित्र तैयार किया। आठ दिन तक निरन्तर, मैं उसे बनाने में मग्न था, तथा उसके सम्पूर्ण होते ही, मैं स्वयं चकित हो गया और चाहे मैं कलाकार के अतिरिक्त कुछ और हो क्यों न होऊं, फिर भी कलावंत जैसे आत्म-दर्शन का अनुभव होने पर मुझे एक विशेष आनंद हुआ। इसी समय श्री. वामनराव देशपांडे का भेजा हुआ सॉमर सेट माउघम का उपन्यास, मेरे हाथ पड़ा, तथा उसमें की एक घटना का संयोगवश मेरी स्थिति से निकट सम्बन्ध होने के नाते, मुझे एक विचित्र विचार ने भंवर की भाँति आ घेरा। मैंने और उस उपन्यास के नायक, दोनों ने आयु के ४७ वें ही वर्ष में चित्रकारी करना आरंभ किया; किन्तु इस साम्य की भावी भयंकर कल्पना करके हृदय कांपने लगा। उस कलाकार ने अपने कला के प्रति असीम-प्रेम का जिस प्रकार आश्चर्य-जनक एवं अद्वितीय अन्त किया, क्या वही मेरे जीवन में भी होगा? इस भय की भावना ने, मेरे नव-कुसुमित कलारूपी ललित कुंज पर तुषार-पात सा किया।

मैं अपने जीवन का संपूर्ण वृत्तान्त तो यहां नहीं देना चाहता, किन्तु इतना अवश्य बता देना चाहता हूं कि, दिन भर इस कला के प्रेम मे मग्न रह कर, मैंने पूरे दो वर्ष व्यतित कर दिये हैं; तथा वकालत के अध्ययन अथवा साहित्य-लेखन के समय, मैं जितना तन्मय होकर कार्य करता था, मैंने चित्र कारी भी उतनी ही तन्मयता एवं महनत के साथ की, जिससे समस्त सृष्टि रंगमय ही प्रतित होने लगी है। एक दिन सायंकाल के समय, वर्षा हो चुकने के पश्चात, मेरी दृष्टि सहज ही एक मैदान पर पड़ी। जगह जगह पर पीले व श्वेत पुष्प बिखरे हुए थे। मुझे आनन्द हुआ मानो कि, पहिली ही बार इतनी सुन्दर सृष्टि-शोभा मैंने देखी हो। पहिले की ही सृष्टि में उत्पन्न, वे सब मुझे निपट नवीन प्रतीत हुए। उसमें स्वच्छन्द विचरण करने वाली कोई सुन्दर स्त्री अथवा क्रीड़ा करने वाला सुन्दर सा बालक यदि दृष्टि-गोचर हो जाता, तो उनकी रेखा कृति मस्तिष्क में हिलोरों की भांति आनन्द के झोंके देने लगती, मानो उन रेखा-कृतियों के अतिरिक्त, उन सबका कुछ दूसरा अस्तित्व ही न हो। उस प्रकार, मेरे अन्तःकरण, तथा संसारावलोकन के दृष्टि-कोण में एक विशेष परिवर्तन हो गया। प्रायः एक ही देह को धारण किये हुए, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कई बार पुनर्जन्म का सा भास होने लगा है।

अतः पुनर्जन्म के लिये, मनुष्य को प्रत्यक्ष मरने की विशेष आवश्यकता नहीं है! जो हम कल थे, वे आज नहीं हैं। कदाचित अपने कल के व्यक्तित्व में भी अवस्थांतर सा हुआ है और कल तथा आज में आकाश—पाताल का अन्तर पड़ चुका है। बस, यही प्रत्यक्ष एवं आप से आप प्रतीत होने लगता है। मुझे जब यह अनुभव प्राप्त हुआ; तब यही विचार उग्र रूप धारण करके मेरे नेत्रों के समक्ष ताण्डव—नृत्य करने लगा कि, समाज के समस्त नीति-नियमों में किसी कलाकार को भी कस कर जकड़ देना, निपट अन्याय है। वह इस संसार में रहता अवश्य है; किन्तु उसका मन एवं हृदय किसी अन्य जगत में ही विचरण करता रहता है। इस प्रकार का जीवन व्यतीत करना लौकिक दृष्टि से चाहे बुद्धिमत्ता ठहराया जाय अथवा मूर्खता; किन्तु उसे सत्य एवं वास्तविक (Fact) मानना ही न्याय—संगीत होगा।

विदेशी चित्रकार का उपयुक्त उदाहरण, भले ही उप-लक्षण समझा जाय; किन्तु समस्त कलाकारों के जीवन, थोड़े—बहुत ऐसे ही होते हैं। कवि, मूर्तिकार, चित्रकार, तथा गायक इत्यादि, इन सबके कलात्मक आविष्कार के साधन यद्यपि भिन्न—भिन्न हैं; किन्तु वे सब होते एक ही जाति के हैं। वे सब सौंदर्य के ही उपासक हैं। गायक अपने अन्तः करण के गुप्त नाद-सौंदर्य को ही साकार करने का भरसक प्रयत्न करता है। कवि द्वारा रचित भाव-गीत तथा चित्रकार द्वारा चित्रित, कल्पना-चित्र में अन्तर ही क्या है। किन्तु, मन में चित्रित काल्पनिक इंद्र-धनुष्य को प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित करने के प्रयास में समस्त कलाकर मनमानी कर बैठते हैं। संसार उनकी कला की प्रशंसा करता है; परंतु उनका अपना हृदय

इस बात की साक्षी अवश्य देता है कि, वे अपने प्रयास में पूर्णतः यशस्वी नहीं हैं। मेरे विचार से तो केवल मेघदूत के रचयिता, स्व. कालिदास ही इस नियम के अपवाद रहे हों। बस, उन का भी क्या नियम ! कालिदास के सच्चे जीवन-चरित्र का पता लगाया जाय, तो विदित हो जायगा कि, उन्हें भी अन्य कलाकारों जैसी यातनायें भोगना एवं विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था।

मनुष्य के जीवन में कला एक सुख-स्वप्न है, तथा वह उसे अनंत चिर-स्वप्न के रूप में ही देखता रहना चाहता है। उसकी मधुर पिपासा प्रायः अतृप्त रहती है जिस प्रकार सुख-लोलुप व्यक्ति सुखाधीन और व्यसनी जीव व्यसनाधीन होता है, उसी प्रकार कलाकार भी पूर्णतया कलाधीन होकर., कला का ही शिकार बन जाता है। कला-रूपी मृग को पाने की इच्छा से, भटकते भटकते मैं इस स्वर्ण-मृग की मोहक- कांति के कारण, अपनी सुध-बुध भी भूल गया हूँ और अपने विश्राम-स्थान से इतनी दूर निकल गया हूँ कि, अपने स्थान पर फिर से लौट आने की प्रबल-इच्छा होते हुए भी, मुझे कोई मार्ग ही दृष्टि-गोचर नहीं होता। मैं जितना कला के वशीभूत होता गया, उतना ही मुझे प्रतीत होने लगा मानो कि, मैं अपना सर्वस्व, निश्चय, कदाचित् शरीर भी गँवाये दे रहा था। मेरी यह स्थिति समयोचित थी कि नहीं, यह तो ईश्वर ही जाने; किन्तु मैं मादक आत्म-विस्मृति के चंगुल में फँस चुका था, इसमें सन्देह नहीं, उस समय मैं कल्पना कर सका कि, उमर खैय्याम के वर्णित नायक ने अपनी प्रियतमा के सहवास में, एक शीतल-तरु के नीचे आसन जमा कर, मदिरा के प्याले पर प्याले, अपनी चिंताओं की आहुति में भेंट करते, किस अनुपम सुख का अनुभव किया होगा। कभी-कभी मेरे मस्तिष्क में भी अपने ही विचारों में एक अद्वितीय द्वन्द्व छिड़ जाता है कि, कला विष है कि अमृत ? वह सुधा है कि मदिरा ? कुछ भी हो; वह 'स्वर्गीय' अवश्य है, इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं !

कला के यात्रा-मार्ग पर चलते-चलते, एक समय अवश्य ही उतार आरंभ होता है। इस संसार में न कुछ सुख-पूर्ण है और न कुछ दुःख-पूर्ण। दुःख और सुख सहगामी होने के नाते दोनों में परस्पर समावेश होता है। सुख के पश्चात् दुःख अपने आप होता ही है। उसके शोध की आवश्यकता नहीं होती। यह दुःख प्रश्नात्मक होता है और विवेक के अंकुश की भांति प्रतीत होता है। आप दूसरे को ठग सकते हैं; किन्तु अपनी ही आत्मा को, जिसमें इन्द्राणी के सदृश सदविवेक सद्-बुद्धि विराजमान है, कहाँ तक धोखा दे सकेंगे ? एक दिन मैंने अपना स्टुडिओ को व्यवस्थित रूप से जमाया और साधारण चित्रों को छोड़कर अच्छे-अच्छे चित्रों में से कुछ काँच में जड़वा कर, दीवारों पर लगा दिये। वे सब संख्या में केवल १८ थे। पिछले १८ महिनों में, दिखाने-योग्य, केवल १८ चित्र ही मैं बना सका, इस की कल्पना करते ही, मन में एक प्रति-क्रिया जागृत हुई कि, जब इस कला का अन्त ही नहीं है; तो यही अच्छा है कि, मैं ही चित्र बनाना स्थगित कर दूं। अतः कुछ समय तक मैंने उस प्रतिज्ञा का पालन भी किया।

इसी समय मैंने श्रीयुत एवं श्रीमती थॉमस द्वारा लिखित 'लिविंग बॉओग्राफीज ऑफ़ ग्रेट पेन्टर्स' (Living biographies of great painters) नामक पुस्तक पढ़ी। उसमें माइकेल एंजीलो, रॅफेल, रेम्ब्रांट, होगार्थ, रेनॉल्ड्स, टर्नर, मिलेट, मोगा, एवं व्हिस्लर इत्यादि; नामांकित चित्रकारों के चरित्रों का वर्णन है। उन सबको ध्यान-पूर्वक पढ़ने पर, मेरे मस्तिष्क पर कुछ विचित्र ही प्रभाव हुआ, तथा उस प्रकाश की ज्योति के कारण, मुझे अपने आप ऐसा विदित हुआ कि, इस कला से संबंधित कुछ निश्चित तत्व-ज्ञान अपने मन में निश्चित करके, तदनुसार ही कार्य करना चाहिये। बहुत से शब्दों के अर्थ, हम अस्पष्ट रूप से जानते हैं; किन्तु उसमें कदाचित कार्य कारण संबंध विद्यमान रहता है, तथा वह अपने ध्यान में नहीं आपाता। कला का आनन्द-पान करते समय, जिसे समाधि अथवा आत्म-विस्मृति कहते हैं, वही स्थिति अन्त में हो जाती है। उसमें साहित्य अथवा उत्कृष्ट कला-कृति का इसी अवस्था में निर्माण होता है। आत्म-विस्मृति का आनन्द किसी और में नहीं, यह सत्य हैं; किन्तु उस समाधि का समय तक टिकना दुःखद अथवा हानि कारक होता है। उसका तो कुछ समय तक टिकना ही हितकर है। एक श्रेष्ठ साहित्यिक ने, इसी लिये साहित्यानंद की व्याख्या करते समय, 'सविकल्पक-समाधि' विशेषण का उपयुक्त प्रयोग करके, वह व्याख्या मर्यादित कर दी है।

मेरे मित्र, श्री वामनराव देशपांडे ने इस विषय पर एक बार अति उत्तम तात्विक-चर्चा करते समय कहा था, "कला का ध्येय अथवा हेतु, आनन्द-निर्माण ही है। वह प्राप्त हो सका, तो सब साध्य। इसके बिना, कलावंत को चाहे कुछ प्राप्त हो या न हो; अथवा ऐहिक दृष्टि में कदाचित् वह नष्ट भी हो जाय; कलावंत स्वयं उसकी चिंता नहीं करता। उसका ध्येय-वादित्व ही महान होता है, यही कहा जा सकता है। यदि साहित्यिक मर कर भी अमर रहते हैं, तो फिर उसी प्रकार कलावंत भी क्यों न रहें?

किन्तु, इस सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि, कलावंत का गुण आत्म-विस्मृति तो अवश्य है, किन्तु आत्म-विस्मृति का अर्थ आत्मनाश कदापि नहीं। पतंगा दीपक की ज्योति पर बरबस गिरकर जिस प्रकार खाक हो जाता है, क्या उसी प्रकार कलावंत का मिट जाना भी अच्छा है? कला के अंग में भी उसी तरह मद, दाह एवं सामर्थ्य विद्यमान हैं। सौंदर्य-सेवनार्थ, आत्मनाश पर लक्ष्य न देने वाले की ओर यदि, क्षण-भर भी दृष्टि-पात किया जाय, तो अन्त में, किसके अन्तःकरण में सहानुभूति अथवा करुणा उत्पन्न न होती होगी? संसार चाहे तो उसके आत्म-नाश को छोड़कर, उसकी सौंदर्यासक्ति को ही वास्तविक मान ले! सुख और सुखोपभोग को यदि, दो विभिन्न वस्तुएँ मान लिया जाय तो 'संयम' यह तीसरी वस्तु होगी जिसके द्वारा, सुखोपभोग अर्थात् आनन्द का आस्वाद सार्थक होता है। कलात्मक-आनंद अद्वैत नहीं, वरन् द्वैती है। 'सविकल्पक' विशेषण के कारण उसे 'विशिष्टाद्वैती क्यों न कहा जाय?

"Truth is beauty and Beauty is truth."

(टूथ इज़ ब्यूटी एन्ड ब्यूटी इज़ ट्रूथ) इस प्रकार एक व्याख्या की तो गई है; किन्तु वह सम्पूर्ण नहीं है। वह तो सत्यार्थ है। "सत्यं शिवं सुन्दरम्"—यह व्याख्या ही, व्यवहारिकदृष्टि से अधिक पर्याप्त है। सौन्दर्य ही यदि सत्य है, तो संसार का अन्त निकटतम ही समझिये! अनेकों कलाकारों ने, इसी भ्रमात्मक-धारणा के कारण, अपने जीवन बरबाद कर दिये हैं। 'सौन्दर्य' और 'सत्य', ये दो शब्द भी आत्म-सात् हैं; अर्थात उनका क्या अर्थ है, यह अन्त में कलावंत के मानने पर ही अवलंबित है कलाकार यदि, सौन्दर्य-साधन एवं सत्यानुभूति, इन दोनों को, पा सके; तो फिर शेष ही क्या रह जाता है? तब अनेकों कलाकारों के जीवन दुर्भाग्य एवं निराशा से पूर्ण क्यों पाये जाते हैं! इसीलिये उपर्युक्त व्याख्या में 'शिवं' जो उद्देश्यात्मक (Odjeticve) शब्द है, उसे बहुत ही महत्वशाली मानना चाहिये। तराजू के दोनों पलड़ों का अपनी विवेक-शक्ति द्वारा सम-तौलन करने वाला तथा 'सत्य' और 'सुन्दरम्' दोनों के बीच में स्थित, जो स्वर्ण-शब्द 'शिवं' है; उसी ने उपर्युक्त व्याख्या को सम्पूर्ण बनाया है। कदाचित् इस प्रकार साग्रह प्रति-पादन किया जा सके कि, "जो 'शिवं' नहीं, वह न 'सत्य' है और न 'सुन्दर' ही।

आत्मा आनन्दमय अवश्य है; किन्तु आनन्द का उपभोग करने वाला, स्वामी है। कलावन्तों को यह न भूलना चाहिये कि, कला कितनी भी श्रेष्ठ क्यों न हो, फिर भी वह आत्मा की दासी है, मालकिन नहीं!

★

[पृष्ठ १२ का शेष]

हुई जाजम यदि मोटी हुई, तो वह उनके हाथ में नहीं आ पाती। एक बार किसी साधारण से गाँव में उनकी महफिल हुई। संयोग-वश बिछी हुई जाजम बिलकुल पतली थी और उस पर मिट्टी के तेल के जलते हुए, दीपक रखे थे। खाँ साहब ने आलाप समाप्त करके तैयारी की तानें शुरू करदीं और वे देह की सुध-बुध तक भूल गये। तान के आरोह के समय उन्होंने औंधे होकर ज़मीन पर थपकी मारी और अवरोह के समय मुट्ठी जोर से बन्द करके, सपाटे से वे अपनी जगह पर सीधे होकर, ज्यों-ज्यों बैठने लगे त्यों, पतली जाजम में त्यों त्यों सिकुड़नें लगीं। एक बार, किसी-लम्बी चौड़ी तान के आरोह के समय जाजम की सिकुड़न उनकी मुट्ठी में आगई तथा अवरोह के समय उसी तरह कस कर मुट्ठी बांधे हुए ही अपनी जगह पर आने के लिये ज्योंही वे सीधे बैठने के लिये पीछे की ओर झुके कि, उनके हाथ के साथ ही, वह जाजम भी खिंचती चली आई। परिणाम-स्वरूप जाजम पर रखे हुए, काँच के दीपक लुढ़क गये और जाजम में आग लग गई। इस प्रकार खाँ साहब ने संगीत के प्रभाव से आग लगा सकने का प्रत्यक्ष-प्रदर्शन किया।

(पृष्ठ १० का शेष)

सप्ताह हुआ, तथा संभावना से भी अधिक, चोरी हुए धन से कई गुनी धन-राशि एकत्रित हुई थी। वह लेकर, पंडित जी बम्बई आये, तो यहां विद्यालय की इमारत पर खर्च करने के लिये हुए कर्ज़ के कारण, नीलाम तक की नौबत आपहुंची थी।

पंडित जी ने भरसक प्रयत्न किया। बड़ी ही खट-पट की, फिर भी अन्त में, वह इमारत हाथ से निकल गई। पंडित जी को उस इमारत से जो अपूर्व प्रेम था, वह इमारत के लिये नहीं था, बल्कि इसलिये था कि, उसके बनाने में बड़े-बड़े लोगों का हाथ था और उस में कई बड़े-बड़े लोग रह चुके थे। उसके अहाते में बहुत से संगीत-परिषदें हो चुकी थी। इमारत बनाते समय, दो संस्थानों के जागीरदारों के उन्हें पैसे की अड़चन में डाल देने पर भी, वे किस दैव-योग से अपना पीछा छुड़ा सके, उसके वर्णन से इमारत का इतिहास पूर्ण है। इसीलिये उनका आग्रह था कि, किसी भांति, इमारत उनके अथवा विद्यालय के ही कब्ज़े में रहे। किन्तु, इमारत पर से अधिकार छिन जाने पर वे कुछ विशेष दुखी दिखाई नहीं दिये। वे कहते थे, " इमारत अपने पास रहती, तो अच्छा था; परन्तु मेरा जन्म ईंट-पत्थर की इमारत के लिये ही तो कुछ हुआ नहीं। मेरा प्रथम कर्तव्य, संगीतोद्धार, मेरी कल्पना से की अधिक सफल हो चुके है। बस, इसीलिये मुझे इमारत के चले जाने का कोई विशेष दुःख नहीं। मेरे शिष्य-गण, हिंदुस्तान भर में फैले हुए है और वे संगीत के प्रसार का कार्य कर रहे हैं। कुछ लोगों को बहुत बड़ा-नाम और यश भी मिला है। संगीत-व्यवसायिओं को कुछ न कुछ व्यसन अवश्य लग जाता है, किन्तु, मेरे शिष्य, सच्चरित्र के लिये सुप्रसिद्ध हैं। मेरे किये हुए कठिन-कार्यों तथा मेरी तपस्या के ये साक्षात् चलते-फिरते प्रतिनिधि सर्वत्र अपना कौशल्य प्रदर्शित करते हुए, स्वच्छन्द विचरण करते हैं। तो फिर मैं इस निर्जीव इमारत के प्रति अभिमान के लिये दुख क्यों मानूँ ? श्री रामचंद्र जी की यह प्रत्यक्ष कृपा है। इमारत की ममता से उन्होंने मुझे छुटकारा दिला दिया है।" सुनने वाले के मन में यह शंका रहना संभव नहीं कि, पंडित जी के इस आशय के उद्गार ऐसे निर्धारित शब्दों में वास्तव में व्यक्त हुए; अथवा उन्होंने पूर्णत: विचार करके वह सिद्ध कर लिया था। १९१० में, पंडित जी के कुछ विद्यार्थीयों ने फिर आग्रह किया कि पंडित जी के ही नेतृत्व में फिर से बम्बई में गांधर्व महाविद्यालय ' आरंभ किया जाय, अतः उन्होंने उनकी इच्छा का विरोध भी उपर्युक्त अभिप्राय द्वारा ही किया।

इमारत के प्रश्न पर उन्होंने जो संभाषण किया था, उस जैसे ही भावार्थ-युक्त शब्दों में, वे अपनी आँखों के बारे में कहते थे; बचपन में ही, आँखों के स्थायी हानि पहुंची थी। जवानी के दिनों में आयु के अनुसार जो कुछ भी शक्ति उनमें शेष थी, वह कम होने लगी थी आँखें सुधरवाने के लिये उन्होंने अनेकों एवं बड़े-बड़े उपाय कर देखे थे। एक-बार किसी ने उन्हें, पहिले दिन एक, दूसरे दिन दो, इस क्रम से, एक सप्ताह तक हरड़ें खाने और फिर एक सप्ताह पश्चात्, ७ से ६, ६ से ५, इस क्रम से रोज़ कम करने के लिये कहा था। पंडित जी ने वह भी किया और उसके साथ, बताया हुआ पथ्य भी लिया। उनकी शक्ति दिन-दिन कम ही होती गई। आँखें अन्त तक अच्छी ही न हो पाईं। इस प्रयोग के समय पंडित जी बीकानेर में थे, वह भी गर्मी के मौसम में। यद्यपि उन्हें, यह विश्वास था कि, आँखें अच्छी नहीं हो पायेंगी, फिर भी आशावाद के कारण वे इस प्रकार के प्रयोग किया करते थे। कुछ दिनों में, उन्होंने, आँखों के लिये कोई औषधोपचार करना ही छोड़ दिया और वे यह मानने लगे थे कि ईश्वर की ही मर्ज़ी है कि, उनकी दृष्टि तथा नेत्रों की शक्ति कम होती जाय। वे कहते थे कि, ईश्वर ने इन नेत्रों को दुर्बल करके, मुझे सौन्दर्य-लोभ-उत्पन्न करने वाले मोहक साधनों, के चंगुल से बचा लिया है। गायन के व्यवसाय में रूप-संपत्ति के दर्शन करने के अनेकों प्रसंग आते हैं। यही अच्छा है कि, उसका दर्शन मैं नहीं कर पाता, नहीं तो, कभी न कभी उसने मुझे अवश्य ही अपना दास बना लिया होता। ईश्वर द्वारा, दर्शनों का मार्ग बन्द कर दिये जाने पर, उसके प्रति स्वभावतः आकर्षण भी नष्ट हो हो गया है। सूरदास ने स्वरूप के जाल में फँसाने वाले इन नेत्रों को फोड़ डाला था; किन्तु मेरे नेत्रों की ऐसी ही व्यवस्था, तो स्वयं परमेश्वर ने की है, अतः उसका जितना भी हो आभार मानना चाहिये।"

कई वर्षों तक, यह एक नियम सा बन गया था कि, जहाँ काँग्रेस का अधिवेशन होता, वहाँ पंडित जी का संगीत-परिषद भी अवश्य होता था। कांग्रेस के अधिवेशन के निमित्त, दूर-दूर से आकर एकत्रित हुए लोगों को संगीत का सच्चा-सच्चा परिचय करने के लिये, पंडित जी सदैव उत्सुक रहते थे। गोहाटी के काँग्रेस परिषद के समय, हिंदुस्तान के बिल्कुल उत्तर में एक स्थान पर पंडित जी को लोक-संगीत के विषय में एक नई जानकारी प्राप्त हुई। भारतीय-संगीत के मूल-तन्तुओं को ढूँढ़कर उनसे, संगीत का विकास किस प्रकार हुआ-इस गूढ़-रहस्य का पता लगाने के लिये उनके हृदय में एक प्रबल लगन सदैव जागृत रहती थी। बंबई की इमारत में उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रान्तों के वाद्यों के एक अनुपम प्रदर्शन की योजना की थी। कभी-कभी जब वे भिन्न-भिन्न प्रांतों के लोक-संगीत का साम्य-वैषम्य बताने लगते थे, तो सुनने वाले। उनके मार्मिक एवं अभ्यासी निरीक्षण की कल्पना मात्र करके ही चकित रह जाते थे।

———

उस्ताद बुन्दु ख़ां—सारंगी नवाज़

(लेखक—बी. आर. देवधर B. A.)

" देवधर साः स्वरों को इस प्रकार उल्टा-पुल्टा मत कीजिये। गाने के आरंभ में ही अगर आप इस तरह स्वर खर्च करेंगे; तो आपकी स्वरों की पूँजी, पहिले पाँच मिनिटों में ही ख़त्म हो जायगी और छठें मिनिट में फिर से दुहराना (पुनारावृत्ति) शुरू हो जायगा ! बस, आपके गाने में, नाविन्य समाप्त होते ही, आप स्वयं और आपका गाना सुनने वाले श्रोतागण, थोड़ी सी ही देर में उकता जायेंगे ! गायक को स्वरों के मामले में पूरा मारवाड़ी बनना चाहिये ! जो रस व मजा एक स्वर से पैदा हो सकता है, उसके लिये विना बात दो स्वर खर्च नहीं करना चाहिये ! जहाँ स्वर के सिर्फ इशारे या कण से ही मज़ा आ सके, वहाँ मींड नहीं लेना चाहिये और जहाँ मींड से ही मिठास पैदा हो सकता है, वहाँ मुर्कियाँ (४-५ स्वरों की छोटी-छोटी तानें) लेना ठीक नहीं !"

मुझे उपर्युक्त उपदेश देने वाले, उस्ताद बुन्दु खां एक उत्कृष्ट सारंगी-वादक हैं और आप स्थायी रूप से दिल्ली में रहते हैं। प्रायः उनका दिल्ली रेडियो पर वादन-कार्यक्रम हुआ करता है।

सन् १९२८-२९ में, मैं विल्सन कॉलेज के वसतिगृह, (residency) में रहता था। वहाँ गाने की महनत करने के लिये स्थान न होने के कारण, रात के ९ बजे, मैं ख़ां साहब मजीद ख़ाँ (बाई केसर बाई केरकर के साथीदार) के यहाँ जाकर एक-दो घंटे तक नित्य गाया करता था। मजीद ख़ां साहब रात को घर पर ही रहते थे, तथा उन्हीं का कोई रिश्तेदार, एक लड़का ठेके देने के लिये, वहाँ रोज़ रहता था; इसलिये मुझे अच्छा अवसर मिल गया था और वहाँ हर प्रकार की सुविधा भी थी। एक दिन मजीद ख़ाँ साः ने मुझसे कहा, "कल मेरे उस्ताद बुन्दु खां साः बम्बई आने वाले हैं और वे मेरे ही घर पर ठहरेंगे; इसलिये तुम ज़रूर आना और अगर मैं घर-पर न भी हुआ, तो भी तुम अपनी महनत करते रहना।"

तदनुसार, मैं दूसरे दिन रात को वहाँ गया। सामने एक कुर्ता पहिने हुए, दुबले-पतले, कृश-शरीरवाले पुरुष तकिये से टिक कर बैठे हुए दिखाई दिये। एक लड़के ने मेरे कान में धीरे से कहा, "ये ही उस्ताद बुन्दु ख़ाँ हैं। मैं नमस्कार करके सामने बैठ गया। जब मैं पहुँचा, तो वे चुरट पी रहे थे। थोड़ी देर में उन्होंने उसे नीचे रख दिया और एक बीड़ी सुलगाई। उस बीड़ी के दो-चार कश खींच कर उसे फेंक दिया और पास ही रखा हुक्का, वे पीने लगे। कुछ ही देर बाद उन्होंने हुक्का तो एक ओर रख दिया और एक सिगरेट जलाई। मैं यह सब चुप-चाप, बैठा हुआ देख रहा था। ख़ां साहब का ध्यान किसी और जगह पर है, इसीलिये यह विचित्र धूम्र-पान चल रहा है, यही थोड़ी देरबाद मेरी समझ में आया। मैं घर जाने की सोच ही रहा था। कि, उस ठेके देने वाले लड़के ने, मेरे सामने तंबूरा लाकर रख दिया और स्वयं डग्गा लेकर वह मेरे आगे बैठ गया। मैं तम्बूरा मिलाने लगा। तम्बूरे की झनक से ख़ां साहब की तन्द्रा भंग हुई और वे मुझसे गाने के लिये कहने लगे। उस समय यद्यपि मुझे ज्यादा अच्छा गाना नहीं आता था, फिर भी आख़िर जवानी की उम्र थी। मैंने बड़ी शान से बागेश्री की एक झपताल की चीज़ शुरू की। स्थायी व अन्तरा समाप्त करके अपनी महाराष्ट्रीय—पद्धति के अनुसार, मुर्कियां व छोटी-छोटी तानें लेकर गाने लगा। यहाँ तक तो ख़ां साहब कुछ न बोले। पहिले तीन मिनिटों में समस्त मध्य-सप्तक के स्वर समाप्त करके, ज्योंही मैंने तार-षड्ज लगाया कि, ख़ां साहब बोल पड़े और इस लेख के आरम्भ में दिया हुआ पाहेला उपदेश उन्होंने मुझे दिया। उन्होंने, मुझ से स्थायी फिर गवाई और मैंने उस समय के ढंग के अनुसार वह इस प्रकार गाई थी :—

ग रे ग	मपमम ग रे	सा सा	सारेनीसा नी ध
ध र	मऽऽऽ क रे	तु झे	दिऽऽऽ याऽ
×			३

इतनी पंक्ति कहते ही ख़ा साहब ने मुझे रोक दिया और कहने लगे, " मपमम व सारेनीसा इन दो मुर्कियों को लेकर तुमने यह सुन्दर स्थायी बिगाड़ दी है। तुम मराठी लोगों को बिना बात आवाज़ हिलाने (कँपाने) की कुछ आदत ही है।

वहाँ मीड ली तो, ये जगहें ज्यादा अच्छी लगेंगी। मैं तो यह स्थायी इस प्रकार कहूँगा।" तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं वही स्थायी, एक मुर्की न लेकर, केवल मींड व कणों का उपयोग करके मुझे गाकर सुनाई। वह मुझे बहुत ही पसन्द आई। इसके बाद आलाप कैसे लेना चाहिये, सम के आने से पहिले के स्वर कैसे चित्ताकर्षक होते अर्थात वे उठे हुए दिखते हैं, इत्यादि अनेकों महत्व-पूर्ण बातें उन्होंने मुझे समझा दीं। वे बम्बई में, उसके बाद, लग-भग ८-१० दिन तक ठहरे। मैं उन दिनों नियम-पूर्वक वहाँ जाता और वे हर-बार मुझे उपयुक्त बातें समझा देते। मैं गाता और वे हरएक आलाप व तान के समय उपयुक्त टीका करते। कौनसी उपज ग़लत थी, और वह क्यों ग़लत हुई? वह यदि अधिक प्रभाव-शाला बनाना हो तो, उसका आरंभ, मध्य व अन्त कैसे होना चाहिये? यह सब, वे मुझे अपना ही समझ कर, अच्छी तरह बता देते थे। जिसे हम निर्माण-कला (Art of composition) कहते हैं, वह ख़ां साहब बड़ी अच्छी तरह से जानते थे; यह बात मेरी समझ में उसी समय आ चुकी थी, तथा तभी से ख़ां साः के प्रति मेरे आदर-भावमें वृद्धि हुई।

कोई ८ दिन के पश्चात्, हमारे विद्यालय में ही ख़ां साः का सारंगी-वादन हुआ और वह वास्तवमें अति-उत्कृष्ट कोटि का था। इसके बाद, मैं ५-६ वर्ष ख़ां साः से न मिल सका। सन् ३५ में, बम्बइ के 'जिन्ना-हॉल' में हुए, हिन्दुस्तानी संगीत-समिति के परिषद में ख़ां साहब बुंदु ख़ां व ख़ां साः नत्थू ख़ां [तबलची] आये थे। उस समय भी उनका वादन बहुत सुन्दर हुआ। मैं एक दिन उनसे मिलने गया। ख़ां साः हाथ में सारंगी लिये हुए बैठे थे। उसे बजाते- बजाते ही, उन्होंने मेरा स्वागत किया और मुझे अपना वादन समझाने लगे। प्रत्येक हरकत लेते समय, वे उस तान का नाम बताने लगे। चुनाचुनी, दाव-पेच, फुल बाजा, एवं चीत्कार —ये नाम मुझे अभी तक याद हैं। वे मुझे ये तानें समझाने लगे। एक पहलवान, कुश्ती में एक दाव लेता है और प्रेक्षकों को ऐसा भास होता है, मानो कि, उसने अपने प्रतिस्पर्धी को पूर्णतया अपने क़ाबू में कर लिया है, इतने ही में उसका प्रति-स्पर्धी उस दाव का काट निकाल कर, दाव उलट देता है। बस, इसी तरह, वे भी स्वरों को कुछ ऐसा उल्टा-पुल्टा बांधते कि, सुनने वाला यही समझता रहे कि, यह तान वहीं समाप्त होना चाहिये; उसे बाहर निकलने की जगह ही नहीं है; लेकिन वे उसे फिर ऐसी युक्ति से उलटते कि, समस्त प्रेक्षक चकित रह जाते और बरबस कह उठते, "धन्य हो यह बुद्धि और धन्य यह चातुर्य। कितनी बुद्धिमत्ता, चतुराई तथा कैसी सहज-रीति से वे कैसे सही-सलामत निकल आये?" इसके बाद उन्होंने, 'चुनाचुनी' के प्रकार की तानें सुनाईं। संक्षेप में वह कपड़े पर की तिरछी सिलाई की तरह तिरछे स्वरों की एक सुंदर माला सी थी। तानों की यह कल्पना-शक्ति व ये नाम, मैंने पहिली ही बार सुने थे, तथा वे मैंने उससे पूर्व कहीं भी नहीं सुने थे; अतः वह मैं समझकर लिख लेने के विचार में ही था कि, इतने ही में, ख़ां साहब की लहर बदल गई। उन्होंने सारंगी नीचे रखदी और कपड़े पहनकर, कहीं जाने के लिये चल दिये। लेकिन, मैंने तो इस बात को समझ लेने का निश्चय कर लिया था। अस्तु,उस समय तो वह न हो सका।

सन् १९३९-४० में, एक बार ख़ां साहब रेडियो के कार्य-क्रम के लिये, बम्बई आये थे। मैंने जब पूछ-तांछ की तो, पता लगा कि, वे फ़ोरास रोड पर किसी के यहाँ गये थे और उनके लौटने में लग-भग दो घन्टे लगते। मैं तानों के नाम लिख लेने के लिये, काग़ज़ इत्यादि, लेकर ही उनसे मिलने के लिये निकला था। बड़ी छान-बीन के पश्चात्, एक बार वे मुझे घर पर ही मिल गये। पहिली मंज़िल पर, कोई २०×१० फ़ुट के एक कमरे में कोई ८ लोग (सारंगी वाले व तबलची वग़ैरह) रहते थे। हर एक का बिस्तर बिछा ही हुआ था, सब की पाँयती कचरा जमा हुआ था। ऐसा मालूम होता था, मानो हर एक अपने बिस्तर भर जितनी जगह का ही कचरा साफ़ करता और वह उसी तरह पायती जमा होता रहता। एक कोने में कूड़े-कचरे का, घुटनों तक ऊंचा ढेर पड़ा हुआ था। यदि बहुत ही बुरी बास आने लगती, तो सब लोग एक दिन कमरा साफ़ करके, सारा कचरा एक कोने में इकट्ठा-कर देते। वह कचरा कोई ६ महिने का होगा। हर एक, अपने बिस्तर के आस-पास ही थूँक लेता था और पान की पीक की पिच कारियां मारता था। ज्योंही मैंने उस कमरे में प्रवेश किया कि, सामने ही, ख़ां साः बुन्दु ख़ां बैठे हुए दिखाई दिये। मैं कोट-पतलून पहन कर गया था, अतः ख़ां साहब के आसपास बैठे ३-४ लोग भौंचक से रह गये। कोई भी मुझसे, बैठने के लिये तक नहीं कहता था। मैं आगे गया और ख़ां साहब को प्रणाम करके, इधर-उधर अपने बैठने की कोई जगह ढूंढने लगा। मुझे तो तानों के नाम इत्यादि, लिखने का अपना कार्य सिद्ध करना था, अतः मैं ही अपने हाथ में के अख़बार को बिछाकर नीचे ही बैठ गया।

वे लोग मुझे देखकर, इतने क्यों घबरा से गये थे, इसका कारण शीघ्र ही मेरी समझ में आगया। वे शराब-बन्दी (Prohibition) के दिन थे। सब तरह के नशे के साधनों की सख्त मनाई थी। जिस किसी के पास, इस प्रकार के पदार्थ मिल जाते, उसे भी दंड मिलता था। एक कोने में, टिमटिमाता हुआ एक दिया जल रहा था। उस समय, दिन के कोई १०-११ बजे होंगे। एक-दो सलाइयाँ पड़ी हुई थीं और एक फुँकनी जैसी नली भी पड़ी थी। अभिप्राय यह कि, यह सब तैयारी किसी नशे की थी। कुछ देर बाद, समझ में आया कि, उस नशे को 'चंडू' कहते हैं। खां सा: और उनके पास के सब लोगों से मैंने कहा, "मेरा नाम देवधर है; मैं आप सब को अच्छी तरह से जानता हूँ; मैं भी गवैयों में से एक हूँ। अतः मुझ से डरने की कोई बात नहीं। आप लोगों का जो काम चल रहा है, उसे चलने दीजिये। वह खतम हो चुकने पर मैं अपनी बात कहूँगा।" अपना यह परिचय देने के पश्चात, उन लोगों को विश्वास हुआ कि, मैं कोई गुप्त-पुलिस कर्मचारी नहीं था। अस्तु, उनका स्थगित कार्य फिर से आरंभ हो गया। बारी-बारी से एक-एक आदमी, ज़मीन पर एक करवट से लेटता जाता था व दूसरा उसके मुँह में एक नली सी लगा देता और वह लेटे-लेटे ही धूम्रपान करता।

यह सब समाप्त हो चुकने पर, मैं खां साहब से तानों के नाम पूछने लगा। भिन्न-भिन्न प्रयत्नों द्वारा, मैं उनकी विचार-धारा इस विषय की ओर प्रवाहित करने की कोशिश करने लगा; किन्तु उस दिन उनके मस्तिष्क में एक दूसरा ही विषय भरा हुआ था। भिन्न-भिन्न लोगों के बनाये हुए ध्रुपद वे गाकर मुझे सुनाने और हरएक की बनावट में विशेषता स्पष्ट करके बताने लगे। थोड़ी सी ही देर में उनका ध्यान इस बात पर से भी उड़ गया और उन्होंने गवैयों को गाते समय, बैठक कैसे मारना, तथा आविर्भाव कितना व कैसे करना चाहिये; यह समझाना आरंभ कर दिया। यदि आरोह की तान हो, तो वह हाथों द्वारा कैसे प्रदर्शित करना; अपने मन के संकल्प व उसकी योजना श्रोताओं के सामने रखते समय अपने चहरे, अपनी बैठक और अपने आविर्भाव का कैसे उपयोग करना चाहिये; इत्यादि बातें उन्होंने अत्यन्त ही सुन्दर रीति से प्रत्यक्ष कर के दिखाई व समझाई। एक ही बार में उन्होंने इतनी उपयुक्त बातें बतादीं कि, अन्त में इन सबको ध्यान में रखने का प्रयत्न करते करते एक भी बात पूरी तरह से ध्यान में नहीं रही। इस सबके पश्चात, खां साहब अपने घर जाने के लिये उठ खड़े हुए और मैं भी उन्हीं के साथ-साथ अपने घर वापस लौट आया।

इसके बाद, १९४१ से मुझे देहली रेडियो पर गाने का अवसर मिलने लगा। कोई तीन वर्ष तक, नियमित रूप से साल में २-३ बार तो अवश्य ही मैं वहाँ गया। जब भी मैं देहली जाता, खां सा: के घर ज़रूर जाता था। हर-बार उन्होंने मुझे अपना सारंगी-वादन सुनाया। उनका आदर-सत्कार बहुत ही आव-भगत-पूर्ण होता था। मेहमान के चाय, सोडा अथवा पान में से कुछ न कुछ लिये बिना, उन्हें सन्तोष नहीं होता था। फिर वे किसी एक तबलची को बुला लाते और मुझे ३-३ घन्टे सारंगी सुनाते। कभी-कभी गायन-कला की भिन्न-भिन्न बातें समझाते। उन्होंने एक-बार फिर गायक की बैठक व आविर्भाव समझाये। इन खां सा: के हाव-भाव इतने मोहक तथा उपयुक्त होते हैं कि, उनके मोहक हाव-भाव के कारण, प्रत्येक तान की योजना दुगुनी प्रभाव-शाली हो जाती है। मेरा तो यह मत है कि, उनकी कला को कोई, कम से कम एक फ़िल्म बना कर रखले, तो संगीत की भावी मध्य-वर्ती संस्था में, उनके शिक्षण के निमित्त, उसका अच्छा उपयोग किया जा सकेगा।

एक दिन, वे भिन्न-भिन्न नायिकाओं की बनाई हुई चीज़ें गाकर बताने लगे। प्रत्येक चीज़ गाने से पहिले, उसका कर्ता कौन है, वह कहाँ और किस घराने में हुआ; यह सब स्पष्टतः समझा देते। ऐसी ५०-६० नायिकाओं की चीज़ें, उन्होंने उस दिन मुझे सुनाईं। उनमें से कई के नाम, मैंने उस से पहिले कभी नहीं सुने थे।

एक दिन उनका ध्यान ताल की ओर गया और उन्होंने आड़े-चौताल में, झोंका लेकर किस तरह फिरना चाहिये, यह समझाया। तालों के विभागानुसार, उनकी तानों में भी विभाग स्पष्ट दिखाई देते। खाली के स्थान भी उतने ही स्पष्ट। इस प्रकार वे आधे घंटे तक, मुलतानी-राग में फिरत करते रहे।

उनके घर से जुम्मा-मस्जिद की ओर की ट्राम कोई ४ फ़र्लांग के अन्तर पर है। वे हर-बार, मुझे पहुँचाने के लिये वहाँ तक आते। चलते-चलते ही, मैं उनके भिन्न-भिन्न रागों की जानकारी मालूम करता। जो राग उन्हें ज्ञात होते, उनके विषय में वे बड़ी उदारता-पूर्वक मुझे सब कुछ बता देते; किन्तु जिस राग के बारे में उन्हें कुछ मालूम न होता, उसके लिये स्पष्टतः मना कर देते। कभी-कभी वे रास्ते में, चलते-चलते ही रंग में आ जाते और हम दोनों किसी एक कोने में आध-आध घन्टे तक खड़े हुए

बातें किया करते थे। वहाँ वे कुछ चीजें भी गुनगुना कर बता देते। जब मैं थक जाता, तो खुद चलने लगता। बस, ख़ां साहब भी साथ ही साथ चलने लगते। थोड़ी दूर चलने पर, फिर से उन्हें लहर आ जाती और हम फिर कहीं रास्ते में ही खड़े हो जाते। कभी–कभी तो, उतनी दूर चलने और ट्राम तक पहुँचने में, मुझे १–१॥ घन्टा तक लग चुका है।

पिछले महिने, मैं दिल्ली गया था। उस समय मेरा विचार था कि, ख़ां साहब से मिलूँ और कुशल–समाचार इत्यादि, की पूछ–ताछ करूँ। किन्तु, वहाँ पता चला कि, वे अपने परिवार को वापस दिल्ली लाने के लिये, जो तीन महिने से गये हुए हैं, सो तब तक लौटे ही नहीं थे। मैं बहुत निराश हो गया। इतने ही में पता चला कि, ख़ां साहब के साले, चांद खां दिल्ली ही में हैं, तथा उनसे मुझे ख़ां साहब के घराने का परिचय मिल सकता है। उस्ताद चांद ख़ां से प्राप्त जानकारी इस प्रकार है:—

ख़ां साहब का घराना:—

चांद ख़ां व बुन्दू ख़ां दोनों का घराना एक ही होने के कारण इन सबकी आपस में नातेदारी है। इनके पूर्वज बीनकर थे। बड़े दरबार में किसी समय, जो बीनकर ख़ां सा: जमालुद्दीन ख़ां थे, वे भी इसी घराने के बीनकारों की शाखा में के थे। चांद ख़ां सा: के पितामह, संगी ख़ां ने बीन के स्थान पर पहिली बार ही सारंगी बजाना शुरू किया। इस अपराध में, जाति के लोगों ने उन्हें, कुछ समय तक, जाति से अलग कर दिया था; किन्तु बाद में दिल–सफ़ाई हो गई और फिर से उनके साथ सब व्यवहार शुरू हो गया। संगी ख़ां बड़े विद्वान् थे; तथा उनका सारंगी–वादन अप्रतिम था। किसी राजा ने इनके एक पूर्वज को अपना उस्ताद बनाकर दिल्ली के पास का एक समेपुर नामक गाँव, उन्हें इनाम में दे दिया था। ये ख़ां साहब, बहुत ही सीधे और भोले स्वभाव के थे, अतः उस गॉव के लोगों ने, शीघ्र ही उन्हें फँसाना शुरू कर दिया। ख़ां साहब जब भी वसूली को जाते, वे सब उन्हें अपनी ही फ़रियाद सुनाने लगते। पैदावार अच्छी नहीं हुई इस बहाने वे वसूली नहीं देते थे, बल्कि उनमें से कुछ, झूठ–मूठ रो–रो कर ख़ां साहब से ही रुपये–पैसे मांगने लगे। अन्त में यह बात किसी ने, उन राजा साहब से जा कही और उन्होंने उन सब लोगों को पकड़वा मंगा, तथा ख़ां साहब के सामने खड़ा कर दिया। जब सिपाहियों ने उन्हें पीटना आरंभ किया, तो उन्होंने अपना अपराध, स्वीकार किया और वे सब ख़ां साहब से क्षमा माँगने लगे। ख़ां साहब बड़े कच्चे व नर्म दिल के थे। उनसे वह मार न देखी गई। उनकी आँखों में आँसू भर आये और वे राजा सा: से कहने लगे कि, मैंने इन लोगों को छूट (माफ़ी) दे दी है, अत: मारिये मत। बस, अब इन्हें छोड़ दीजिये। आज भी इस घराने के पास, समेपुर में कुछ ज़मीन शेष है।

ये सब लोग, मुस्लिम बादशाहों के समय, दिल्ली के लाल किले में ही रहते थे। सन् १८५७ के ग़दर के पश्चात् किला छोड़ कर वे शहर में रहने लगे। इन लोगों का यही काम था कि, बादशाह–सलामत की जब लहर आवे, तब गाना–बजाना सुनाना। उनमें से कुछ लोगों को, बादशाह की ओर से बख्शिश में मिले हुए मकान, अब भी उनके पास हैं। यह सारा घराना, एक ही गली में, बिल्कुल पास–पास बसा हुआ है।

शिक्षण:—

चांद ख़ां के पिता, मम्मन ख़ां, एक प्रसिद्ध सारंगिये हुए हैं। सारंगी की अपेक्षा, बड़े आकार के नवीन-वाद्य उन्होंने बनाये थे। उनकी याददाश्त [स्मरण–शक्ति] बड़ी ज़बरदस्त थी। उन्होंने, अपने पुत्र उस्ताद चांद ख़ां व उस्मान ख़ां को गाने में निपुण कर दिया और अपने पास की सब चीज़ों का संग्रह, उन्होंने अपने इन दोनों पुत्रों व अपने जामात्र, ख़ां सा: बुन्दु ख़ां को सौंप दिया। चांद ख़ां व उस्मान ख़ां, आजकल भी दिल्ली–रेडियो पर गाते हैं।

ख़ां सा: बुन्दु ख़ां व ख़ां साहब मम्मन ख़ां, पहिले ही निकट सम्बंधी थे; किन्तु मम्मन ख़ां के बुन्दु ख़ां को अपनी बेटी ब्याह देने के कारण, वह नाता और भी घनिष्ठ व निकट-तम बन गया था। बुन्दु ख़ां, बचपन ही से, ख़ां सा: मम्मन ख़ां के पास सारंगी बजाना सीखने लगे। जन्म से ही हुशयार व बड़े महनती होने के कारण, बुन्दु ख़ां सा: सपाटे से प्रगति करने लगे। अपने उस्ताद पर पूर्ण–श्रद्धा होने के कारण, वे जो भी कहते, वह बुन्दु ख़ां सा. ठीक–ठीक व उसी के अनुसार करते। उनके उस्ताद यदि कह देते कि, अमुक पल्टा हज़ार बार दुहरा कर ही याद करो, तो वे बिल्कुल गिनकर हज़ार–बार ही उसे दुहराये बिना, कभी भी दूसरे सबक् (पाठ) के लिये गुरु–गृह पर जाते ही नहीं थे। दिन–दिन मम्मन ख़ां सा: अपने इस शिष्य पर

ज्यादा प्रसन्न होने लगे। उन्होंने, अपने पास की चीज़ों का सारा संग्रह उन्हें दे दिया और अन्त में अपनी बेटी ब्याह कर, उन्हें जामात्र ही बना लिया। मम्मन खां ने, पटियाला-दरबार में २२ वर्ष नौकरी की। फिर उनकी तबयित, कुछ ठीक नहीं रहने लगी। अतः वे फिर अपने ही घर, वापस दिल्ली आगये और कई ही वर्षों की बीमारी के कारण, उन्हें घर भी छोड़ कर, अपना शेष-जीवन व्यतीत करना पड़ा। सन् १९४० में उनका स्वर्ग-वास हो गया। उनके मृत्यु-समय तक, खां सा: बुन्दु खां उनके पास कुछ न कुछ सीखते ही रहे। मम्मन खां के बड़े भाई सम्मन खां को चीजें इकट्ठा करने का शौक था। हिन्दुस्तान के सब घरानों से उन्होंने वे चीजें सीखलीं थीं। इनसे भी, बुन्दु खां सा: को बहुत सी विद्या प्राप्त हुई है।

नौकरी और भ्रमणः—

इन्दौर के श्रीमंत तुकोजीराव महाराज को गायन से बहुत प्रेम था। होली के त्यौहार पर वहाँ, गाने-बजाने के जल्से होते, तथा महाराजा साहब कलाकारों को खूब दौलत लुटाते थे; अतः दूर-दूर के लोग, इन्दौर जाते थे। इन गुणी लोगों में से, महाराजा सा: को जो अच्छे लगते; उन्हें वे नौकरी देकर, इन्दौर में ही रख लेते थे। एक समय, इन्दौर गुणी लोगों का माहिर-घर बन गया था। कै. केशवराव आपटे (ध्रुपदिये); म. खां. सा: नासिरुद्दीन खां, म. खां सा: बुन्दु खां, म. खां सा: नियाजान के अतिरिक्त कितने ही नामांकित बीनकार, तबलची; कै. नाना साहब पानसे के पट्ट-शिष्य, कै. सखाराम जी (मृदंगाचार्य), इत्यादि, लोग उस समय इन्दौर में एकत्रित हो गये थे। खां सा: बुन्दु खां का सारंगी-वादन सुनते ही, श्रीमंत तुकोजीराव महाराज ने उन्हें इन्दौर में ही नौकर रख लिया। वहाँ वे २५ वर्ष तक रहे। वहीं से, उन्हें आज तक पेन्शन मिलती है।

कै. पं. विष्णु नारायण भातखंडे के संशोधन-कार्यालय को भी श्री. तुकोजीराव महाराज ने सहायता प्रदान की थी। "दरबार के सब गुणी लोगों को, पंडित जी के कार्य में सहायता-प्रदान करना चाहिये" -महाराज की इस आज्ञा के कारण, इन सब लोगों को पंडित जी से मिलने जाना पड़ता था। खां सा: बुन्दु खां, जन्म से ही हुश्यार होने के कारण, वे पंडित जी के पास जाकर शास्त्र सीखने लगे। पंडित जी के विचार और उनका थाट व रागों को पृथक्करण करने का ढंग, उन्हें बहुत अच्छा लगा। लक्षण-गीतों को बांधने में बुन्दु खां सा: ने पं. भातखण्डे जी की बहुत मदद की, यह मुझे बताया गया है। बुन्दु खां सा: को इस शास्त्रीय-अभ्यास से बड़ा लाभ हुआ। वे विद्या के सम्बन्ध में निपट नेत्र-हीन नहीं, वरन् उनकी दृष्टि इस मामले में कुशाग्र है; इसीलिये, वे जो राग बजाते हैं, उसे बड़ी अच्छी तरह दूसरे को समझा भी सकते हैं। इसी शास्त्रीय-दृष्टि के कारण वे जो कुछ भी बोलते हैं, वह अत्यंत ही उचित, अभिप्राय-युक्त एवं शुद्ध तर्क-पूर्ण होता है। यही कारण है कि, सुनने और सीखने वाले दोनों ही, उनकी बात ठीक-ठीक समझ लेते हैं। यद्यपि खां सा: इंदौर में नौकर थे, तो भी, जब वे चाहते, उन्हें बाहर दौरे पर जाने की आज्ञा मिल जाती थी। एक बार, उन्हें कोई शास्त्रीय-बात पसंद आ गई और वे उसके शोधनार्थ यहाँ-वहाँ फिरने लगे। पहिले हो चुके, समस्त गायकों की चीजें इकट्ठा करना, उसके इतिहास को ढूँढ़ना, तथा प्रत्येक की बनावट में विद्यमान विशेषता निश्चित करना, यह उनका एक बहुत प्यारा विषय है। इस विषय पर बोलते समय वे इतने रंग जाते हैं कि, तीन-चार घन्टे भी यदि व्यतीत हो जायें, तो उन्हें उसका कुछ ध्यान ही नहीं रहता।

स्वभावः—

बचपन में ही, खां साहब को विद्यार्जन से प्रेम हो गया था। वे घन्टों महनत करने लगे, किन्तु इस घोर परिश्रम के कारण, शरीर में वेदना, पैर भर आना, इत्यादि कष्ट होने लगे। फिर विवाह हो जाने पर सांसारिक-जीवन आरंभ हो गया और पारिवारिक छोटी-छोटी बातें भी, उनके विद्या-व्यासंग में अड़चनें प्रतीत होने लगीं। उनका हृदय, अत्यन्त कोमल था; अतः दूसरों की अड़चनें, रिश्ते की औरतों की आपसी कलह; इत्यादि बातों का भी उनके मन पर प्रभाव पड़ने लगा, तथा महनत के समय मन की एकाग्रता, प्रायः नष्ट सी हो गई। इन सबकी औषधि स्वरूप, अफ़ीम की चिता में वे अपनी इन चिन्ताओं को भस्म करने का पूर्ण-प्रयत्न करने लगे। अस्तु, उनकी अफ़ीम खाने की आदत, बचपन से ही पड़ गई और वह दिन-दिन बढ़ती ही गई; यहाँ तक कि, वे अब तो उसके बिल्कुल दास ही बन गये हैं।

'ज्यों-ज्यों भीजे कामरी, त्यों-त्यों भारी होय।'

सन् १९३५ के, बम्बई में हुए संगीत-परिषद में खां सा: बुन्दु खां व खां सा: नत्थे खां (तबलची) उपस्थित थे। स्टेज की व्यवस्था मेरी ओर होने के कारण, एक दिन वे मुझ से पूछने लगे, "हमारा कार्य-क्रम कितने बजे है?" मैंने कहा, "आपका व खां सा: नत्थे खां का कार्य-क्रम कोई ११-१२ बजे के दरम्यान होगा। दोनों खां सा: ११ बजे आकर तैयार हो गये।

यह अन्तिम दिन होने के कारण, कार्य-क्रम सारी रात चलाना था। दूसरे लोगों का कार्य-क्रम होते-होते, कोई १ बज गया। ये दोनों खां साहबान १०-१० मिनिट से, कहने लगे, "हमारा कार्य-क्रम जल्दी रखिये।" अन्त में, मैंने उनसे हाथ जोड़कर कहा, "खां साहब! आप जैसे गुणी लोगों का गाना सुनने के बाद, श्रोतागण उठकर चल देंगे, तथा उसके बाद, दूसरे लोगों का गाना कोई भी नहीं सुनेगा; इसीलिये, आपका कार्य-क्रम जान-बूझ कर देर से रखा है। कोई एक घंटे बाद आपका नम्बर आयेगा।" इस पर नत्थे खां सा: कहने लगे, "देवधर सा:! एक घन्टे के बाद तो हमारा प्रोग्राम नहीं जमेगा। हमारा नशा तो अभी ही उतरने लगा है और आधे घंटे में तो वह बिल्कुल ही उतर जायगा।" मैंने मोटर का प्रबंध करके, उन्हें उनके घर पहुँचा दिया और फिर से नशा कर आने के लिये कह दिया। तदनुसार, वे आधे-घंटे में ही वापस आगये। दोनों का कार्य-क्रम अप्रतिम हुआ और बहुत से लोगों को वह आज भी याद है।

खां साहब स्वयं तरुण लोगों को व्यसनों से दूर रहने के लिये सच्चे दिल से उपदेश देते हैं।

'जैसे दाझ्यो दूध को, पीवत छाछहिं फूँकि।'

गवयों का राज-कारण:—

खां साहब का जीवन यानी संगीत। सारंगी की महनत नित्य-प्रति होती है। इसके पश्चात् चीज़ों का मनन और कुछ देर लिखना। उन्हें चालू राज-कारण का पता तक न होता था। उनके विषय में, सन् १९४६ की एक मज़ेदार बात सुनी थी। पाकिस्तान की हल-चल बड़े ज़ोरों पर थी। रेडियो के मुसलमान-नौकर [सारंगी व तबला बजाने वाले, इत्यादि], इस विषय की चर्चा करते थे। म. जनाब जिन्ना सा: दिल्ली जाने वाले थे और उनके स्वागतार्थ, मुसलमान समाज ज़ोरों की तैयारियां कर रहा था। खां सा: दिल्ली रेडियो केन्द्र पर, अपने कार्य-क्रम के लिये गये थे। वहाँ, हमेशा की आदत के अनुसार, उनका हाथ सारंगी पर चल रहा था। बीच ही में, किसी ने कहा कि जिन्ना सा: दिल्ली रेडियो-केन्द्र पर भी आने वाले हैं। यह सुनकर खां सा: कहने लगे, "ये कौन से नये जिन्ना खां साहब हैं? मैंने हिन्दुस्तान के तो सब गवैयों के नाम सुने हैं, मगर इन खां साहब का नाम आज तक सुना ही नहीं। ज़रा मुझे बता दीजिये कि, वे रेडियो पर कब आने वाले हैं? मैं उनका साथ करूंगा।" इसका तात्पर्य केवल यही है कि, नेता कौन है? वे रेडियो में गाने के लिये आने वाले हैं अथवा भाषण देने के लिये, इस सबकी उन्हें ख़बर तक न थी।

खां सा: को सहसा क्रोध नहीं आता; किन्तु यदि एक बार आगया, तो वह सहन ही नहीं कर पाते। म. खां सा: तान्दरस खां के चिरंजीव म. खां सा: उमराव खां की व खां सा: बुन्दु खां की कुछ ज़्यादा बनती नहीं थी। एक-दो बार अप-शब्दों तक नौबत पहुँच चुकी थी। खां सा: ने इसका बदला विचित्र ढंग से लिया। खां सा: को जब यह ज्ञात हुआ कि, उनकी पहिली संतान पुत्र था, तो उन्होंने उसका नाम 'उमराव खां' ही रख दिया। अस्तु, फिर कभी जब उन्हें म. खां सा: उमराव खां पर क्रोध आता, तो वे अपने पुत्र, उमराव खां को ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देकर ही, संतोष कर लेते थे। यह बात मैंने दिल्ली के ही लोगों से ही सुनी है,

खां सा: को अपने छोटे पुत्र से बहुत प्रेम है। उन्होंने, उसे अपनी इच्छानुसार चलने दिया। वह जो माँगता वही उसे मिलता, किन्तु शर्त यह थी कि, वह अपने रोने अथवा हठ के कारण, अपने व्यासंग में किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न न करे। उनका बड़ा लड़का भी उतना ही ख़फ्ती था। उसे खां सा: के कन्धे अथवा पीठ पर बैठकर ही फिरने का शौक था। बिचारे खां सा: उसे पीठ पर बैठा कर ही बाज़ार में फिरते थे। यही दशा, उस लड़के की १२-१४ वर्ष की आयु होने तक रही। लड़के ने यदि ५० रु मांगे, तो खां सा: चुप-चाप उसे दे देते। फिर चाहे वह किसी भी तरह उन्हें ख़र्च करे। सौभाग्य-वश, खां सा: के ही सदैव साथ रहने के कारण, उनका पुत्र, उमराव खां यह समझने लगा कि, वह किसका पुत्र है और वह दिल लगा कर अभ्यास करने लगा। सन् १९४६ में मुझे, इन पिता-पुत्र का वादन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। आज उमराव खां सारंगी अच्छी बजाते हैं और उन्होंने गाने की भी अच्छी-ख़ासी महनत की है। कुछ लोगों का मत है कि, वे पाकिस्तान के रेडियो-केंद्र पर नौकरी करते हैं।

उनकी कला:—

बम्बई के रसिकों ने, खां सा: का सारंगी-वादन सुना ही है। बैठक के समय, वे औघड़ राग बहुत ही कम बजाते हैं। जिन के आरोह-अवरोह सरल हैं, वही सम्पूर्ण-राग उन्हें अधिक प्रिय लगते हैं और उनकी महनत भी उन्हीं रागों पर विशेषत: है। उनका वादन पल्टों का है और पल्टे लयकारी-युक्त होते है। आरोह-अवरोह का वे एक चक्र सा बाँधते हैं। एक-दो बार सरल आरोह-अवरोह ले चुकने पर, उस चक्र को

सुप्रसिद्ध चित्रपट–संगीत–दिग्दर्शक

' अनिल बिस्वास '

" कलाओं का वह सम्मिश्रण, जो वैज्ञानिक साधनों द्वारा एक रजत–पट पर, जन–समुदाय को पूर्ण अंधकार–मय वातावरण में बैठाकर, प्रदर्शित किया जाता है; हमारे मतानुसार आधुनिक-शोध के द्वारा आविष्कृत वह औषधि विशेष है, जो यदि उचित रूप से उपयुक्त उपचारों सहित प्रयोग में लाई गई, तो संजीवन–बूटी के समान गुणकारी, अन्यथा एक हलाहल–विष सिद्ध हो सकती है।

हमारा ' चल–चित्रपट ' से वहीं तक सम्बन्ध है, जहां तक ' संगीत ' का अस्तु, प्रसिद्ध 'संगीत–दिग्दर्शक' (Music Director) श्री. अनिल बिस्वास से मिलकर जो सामग्री, हमारे प्रतिनिधि को उपलब्ध हुई है, वह हम ' बिहार ' के पाठकों के समक्ष, इस आशा से निम्न–लेख के रूप में रख रहे हैं कि, वे उससे पूर्ण लाभ उठावें।"

—' संपादक '

(लेखकः— राम किशोर भटनागर)

अनेकों ईश्वरीय–चमत्कार हमारे हर कदम पर सामने आते हैं; परन्तु हमें उस प्राकृतिक–प्रसाद का उपभोग करके दैवी–आनंद भोगना, कब अच्छा लगता है। वास्तव में, हम पतन के गहरे–गड्हे में इतने नीचे गिर चुके हैं कि, हम अपनत्व को त्याग परत्व को अपनाने में ही गर्व मानते और अपने आप को कृतज्ञ तथा धन्य समझते हैं। हमारी दशा तो, बस ' आये नाग न पूजिये बामी पुजन जायें ' की भांति है। इस पर भी तुर्रा यह कि, हम बड़े स्वात्माभिमानी हैं अथवा हमें स्वात्माभिमानी बनना चाहिये। परन्तु, यदि हम स्वात्माभिमान के साथ ही स्वत्व को भी फलने–फूलने दें, तो हमारे जीवन में घटने वाले अनेकों अनर्थ, जो हमारी अज्ञानता–वश हो जाते हैं, सहज ही टल सकते हैं। संभव है कि, इस दोष का अपवाद न मिले; फिर भी विशेषतः भारतीयों के रक्त में एक विचित्र–विष का प्रकट संचार आज तक हो रहा है, जिसके प्रभाव-वश वे परत्व की बनावटी सुन्दरता एवं सरसता की ओर मद–मस्त मतवाले की भांति तन–मन–धन न्योछावर करके आकर्षित हो जाते और अपनत्व को साफ ठुकरा देते हैं।

इस देश का अभाग्य है कि, जो कभी ' सोने की चिड़िया ' कहलाता था, वही आज अनेकों बातों में पराश्रित और दूसरों के मुकाबिले में तुच्छ समझा जाता है। जो भारतीय अपनी संस्कृति के कारण, समस्त संसार के शिरोमणि बने हुए थे, उन्हीं को आज भी पर–राष्ट्र न सुख की नींद सोने और न स्वच्छन्द रूप से स्वच्छ स्वातंत्र्य–वायु का सेवन करने देते हैं। हमें अपनी साधारण समस्याओं को सुलझाने के लिये भी दूसरों की मिन्नतें करके, उनके फुस—फुसे अहसान के ढेर में अपने आपको गाड़ देना पड़ता है। इस प्रकार की मनोवृत्ति और दुर्गति का कुपरिणाम हमारी संस्कृति एवं कला में स्पष्टतः झलकता है, जिसे देख कर वे लोग जो कल तक तो क्या–आज भी सांस्कृतिक बातों में जंगली हैं, हमें ' हिन्दुस्तानी काला आदमी ' कह कर हमें केवल व्यंग का पात्र बनाने का पूर्ण प्रयास करते और जब हम उनकी तरह अपना सिर उठा कर चलने का प्रयत्न करते हैं, तो वे सब एक मुंह होकर अट्टहास करने में भी नहीं चूकते। हम से खसोटी हुई संस्कृति एवं कला, आज विदेशी बाना पहनकर, विदेशी वायु में वह नृत्य दिखा रही है कि, हमें लज्जा–वश अपना मस्तक नत करना पड़ता है। प्रायः विद्वानों का यह मत है कि, कलाकार इस दुनियां में रहते अवश्य हैं, पर वे सदा किसी दूसरी ही दुनियां में विचरण किया करते हैं। अतः उन पर समाज के समस्त नियमों अथवा दोषों का भार नहीं डालना चाहिये।' यह तभी ठीक हो सकता था, जबकि कलाकार यह सोचें कि, वे संस्कृति को कला का रूप देनेवाले एक प्रकार से संस्कृति के स्रष्टि-कर्ता हैं, तथा जैसी कलाकृति वे समाज के सामने रखेंगे, वैसी ही समाज की भी मनोवृत्ति हो जायगी। अस्तु, आप स्वयं समझ सकते हैं कि, अपने आपको कलाकार कहने वालों पर देश की संस्कृति के उत्थान व पतन का कितना भारी उत्तरदायित्व है। यह बात भी देखने में आती है कि, कभी–कभी चित्रकार को समाज के साक्षात् जीवन का चित्रण करना पड़ता है। उसका जहां तक उपदेशात्मक तात्पर्य है, वह निपट आवश्यक है और ऐसी कला-कृति बनाने वाले

कलाकार यश का पात्र है। लेकिन, मैंने कई कला-कृतियाँ ऐसी भी देखी हैं, विशेषतः सिनेमा-जगत में कि, जिन्हें देखकर भावी नासमझ नागरिक ग़लत रास्ते पर अपने क़दम उठा देते हैं। वह क़दम इतनी तेज़ी व मज़बूती से उठाया जाता है कि, फिर उसे पीछे हटाना, हिमालय पहाड़ को उठाने की भांति असंभव हो जाता है। यह क्यों होता है? क्या इसलिये नहीं कि दूषित-वृत्ति के कलाकार ने एक विषैला वातावरण उनके सामने उपस्थित कर दिया था और वे उस हलाहल के शिकार बन गये।

ठीक यहि परिवर्तन भारत की सनातन-संस्कृति में और उससे अवलंबित समस्त कलाओं में हुआ है। यहाँ, हमारा अभिप्राय संगीत-कला से है। हमारे आज के संगीत ने, पहिले की अपेक्षा उन्नति की अथवा उसकी अवनति हुई, इस प्रश्न का उत्तर मैं वाचकों से अपने-अपने दिल में ही ढूँढ लेने के लिये निवेदन करता हूँ। मेरा उपर्युक्त कथन, संगीत-जगत के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य प्रमाणित होता है या नहीं, इसका वाचक ही निर्णय करें।

मेरी तो केवल इतनी ही नम्र-निवेदन है कि, प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि, वह देश तथा संस्कृति की उन्नति के लिये पूर्ण प्रयत्न करे, चाहे वह किसी भी वर्ग का हो अथवा उसका कोई भी व्यवसाय क्यों न हो। जो भी राष्ट्र आज सर्व-शक्तिमान बने हैं, उनमें नवजवानों और भावी नागरिकों ने यही किया, तथा उनके बूढ़े बाप-दादों, तथा माता-बहनों ने यही संजीवन-बूटी उनको जन्म से घुटी में मिलाकर पिलाई है और पिला रहे हैं।

अब भी समय है। हम अब भी सँभल सकते हैं। यदि, पराई संस्कृति और कला में, वास्तव में कोई विशेषता है, तो उन्हें अवश्य ग्रहण करना चाहिये; किन्तु पूर्ण-सावधानी के साथ, उन्हें अपने आधीन कर लेना चाहिये, जिससे वे भविष्य में हमारा अपना ही गला न घोट सकें; अपितु वे हमारी दासी बनकर समस्त स्वर्गिक सुखों का साधन जुटा कर हमारी निरंतर सेवा करती रहें।

उत्तम विद्या लीजिये, यदपि नीच पै होय।
कंचन पड़यो कीच में, 'रहिमन' तजत न कोय॥

हमें चाहिये कि, उनकी आधुनिकत्व एवं उपयोगिता की मात्राओं द्वारा, हम अपनी सनातन, किन्तु असावधानी-वश जीर्ण हो चुकी संस्कृत का काया-कल्प करके 'स्वर्ण-काल' की आशा में, आपसी भेद-भाव एवं स्वार्थ-परता त्याग कर, निरंतर घोर सामूहिक प्रयत्न और परिश्रम करें, तो अवश्य इतिहास के वे स्वर्णिम-पृष्ठ फिर लिखे जा सकते हैं और सोने की चिड़िया' कहलाने वाला यही अपना भारत, हीरों तथा पारस-पत्थर का अविरल-स्रोत-बन सकता है। अस्तु, सृष्टि-कर्ता ने असंख्य अनमोल रत्न भारत में उत्पन्न किये हैं। यदि, हमें संसार में फिर से भारतीय-संस्कृति की धाक जमाना है; तो बस, उन रत्नों को केवल ढूँढ निकालना और उनका उचित मूल्य आँक कर, सदुपयोग करना ही शेष कार्य रहा गया है।

'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हौं बौरा ढूँढ़न गई, रही किनारे बैठ॥'

यद्यपि मैं किसी भी अंश में भारतीय कलाकारों का पथ-प्रदर्शक बनने के योग्य तो नहीं हूँ, फिरभी, उनकी वर्तमान-स्थिति देखकर जो भावना उत्पन्न हुई है, वह मैंने यथाशक्ति टूटे—फुटे शब्दों में कला—प्रेमिओं के समक्ष सादर प्रस्तुत की है। वे स्वयं बुद्धिमान् हैं और मुझे आशा है कि, मेरी ही श्रेणी के अन्य व्यक्तियों के हृदय में जो ऐसी ही भावनायें उत्पन्न होती हैं, उनका इसे अल्प प्रतिनिधि समझ वे अपनी मनोवृत्तियों में उचित परिवर्तन अवश्य करेंगे। बस, यही मेरे इस लेख का सारांश है। अब मैं वाचकों को लेख के मूल-विषय की ओर ले जाना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि, वे मेरे साथ—साथ इस लेख की गहराई में पहुँच कर स्वयं निर्णय करेंगे कि, उपयुक्त-कथन का निम्न-लेख से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। मैं, 'चित्र-पट जगत' के सुप्रसिद्ध संगीत-दिग्दर्शक, श्री. अनिल बिस्वास की मुलाकात का यथाशक्ति, संक्षेप में वर्णन करूँगा, जिससे वाचकों को यह विदित हो जाय कि, मेरे उपयुक्त कथन और श्री. बिस्वास को कलाकारों का एक प्रतिनिधि समझ, उनके विचारों तथा जीवन के पहलुओं में कितनी सामान्यता है। श्री. बिस्वास से मिलकर वास्तव में, मुझे एक विशेष आनंद प्राप्त--हुआ और लगभग $1\frac{1}{2}$ घंटे की स्वच्छन्द वार्ता के कारण, मेरी कई शंकाओं का समाधान एवं कुछ धारणाओं का स्पष्टीकरण और पुष्टिकरण, भली-प्रकार हो सका। मुझे विश्वास है कि, श्री. बिस्वास से मिलकर कोई भी व्यक्ति, अवश्य प्रमुदित हो उठेगा और उनके पास से संतुष्ट हुए बिना न लौटेगा।

स्वभाव तथा रहन-सहनः—

निम्न वर्णन से, श्री. बिस्वास साः के स्वभाव तथा रहन-सहन का अनुमान भली प्रकार हो सकता है।

पूर्व निश्चयानुसार, मैं अपने मित्र श्री. आर. एम. कुंमठाकर के साथ, गत २६ सितंबर की शाम को लग-भग ४½ बजे श्री. अनिल बिस्वास निवासस्थान पर पहुँचा।

घंटी बजाते ही, एक नौकर हमारे मिलने का अभिप्राय पूछ कर अन्दर चला गया। कमरे के बाहर खड़े-खड़े ही अन्दर से एक सुरेल मर्दानी आवाज़ हमें सुनाई दी-"अरे, हाँ! उन्हें अन्दर बुला लाओ!" वही नौकर, फिर वापस आया और हमें सन्मान-पूर्वक उस कमरे तक ले गया, जहां एक भव्य पलंग पर श्री. बिस्वास केवल सैन्डो-कट बन्यान और मद्रासी ढंग की, छोटी सी धोती पहिने बैठे थे। हम जब वहां पड़ी हुई खाली कुर्सियों पर बैठ गये, तो मेरे मित्र ने उनसे मेरा परिचय कराया, तथा श्री. बिस्वास ने, तनिक मुस्कराते हुऐ, इधर-उधर, एक क्षण-भर देखकर, कहा— "मैं आशा करता हूँ कि, आप मुझे इसी पोशाक में बैठे रहने के लिये क्षमा करेंगे!" इस बेतकल्लुफ़ी का मेरे पास, मुस्कुरा देने के अतिरिक्त और दूसरा उत्तर ही क्या हो सकता था? फिर आपने एक मिनिट के लिये क्षमा-याचना के पश्चात्, पास ही बैठे, अपने एक मित्र से अपनी पूर्व-वार्ता पुनः आरंभ करके, शीघ्र ही उसे समाप्त कर दिया।

अब, बिस्वास साः ने अपना आसन बदला, तथा मुझ से बातें करना आरंभ किया—"हाँ, मि. भटनागर! मैं क्या सेवा कर सकता हूँ?" उत्तर में मैंने 'संगीत-कला-विहार' का, १ सितम्बर का अंक, आपकी भेंट किया। आपने 'विहार' का ध्यान से देखना आरंभ कर दिया और ज़रा सी देर में उसके सब पृष्ठ उलट डाले।

तत्पश्चात् मैंने पूछा, "क्या आप मेरे कुछ प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करेंगे, जिससे मैं आपके कुछ विचार एक संक्षिप्त लेख के रूप में 'संगीत-कला-विहार' के वाचकों के समक्ष रख सकूं?" यह सुनकर आप कुछ सोचने लगे। फिर आपने कहा, "यह मेगज़ीन तो कदाचित् क्लासिकल-म्यूज़िक का है। इस विषय पर मैं क्या कह सकता हूँ। मैं हिन्दुस्तानी क्लासीकल-म्यूज़िक तो बहुत ही कम जानता हूँ।" यह सुनकर सबको एक हँसी सी आई। फिर किसी प्रकार बातों ही बातों में, विषय 'लय' तक पहुँच गया। 'लय' का नाम सुनते ही, पास ही बैठे हुए सज्जन ने श्री. बिस्वास साहब से प्रश्न किया, "वाट इज़ लय—अर्थात् लय किसे कहते हैं?" बस वह विषय छिड़ते ही, श्री. बिस्वास साः ने 'लय' के सम्बन्ध में ऐसे बोलना आरम्भ किया, मानो कि, किसी विशाल-सरिता का बाँध टूट गया हो। बच्चों के खेलने की पट-पट गाड़ी, रेल व घोड़े की चाल इत्यादि, के उपयुक्त उदाहरण देकर आपने हमारे सामने 'लय' की एक साक्षात् मूर्ति सी उपस्थित कर दी। ५-७ मिनिट तक एक ही साँस में 'लय' की संक्षिप्त व्याख्या कर चुकने पर आपने कहा, "संसार और शरीर दोनों के सब काम 'लय' में ही होते हैं। सच पूछिये तो यह विषय ऐसा है कि, यदि पांच दिन तक भी व्याख्या की जाय, तो भी 'लय समाप्त' न हो।"

आदि-जीवनः—

तत्पश्चात्, आपने मुझसे कहा, "हाँ, तो अब आप पूछिये, जो कुछ भी आपको पूछना हो। मैं सब बताने की कोशिश करूंगा।" आपके व्यवहार तथा 'लय' की व्याख्या से मैं इतना प्रभावित हुआ कि, नये आदमी से बात-चीत करने में जो झिचक होती है, वह मानो हमेशा के लिये फ़रार हो गई। अतः मैंने मैंने निःशंक होकर कहा, "अपने पूर्वजों की जीवनी का वृत्तान्त, भावी-संतति के लिये प्रायः पथ-प्रदर्शक होता है। अतः आप भी, यदि संक्षेप में अपने आदि जीवन का कुछ वर्णन करने की कृपा करें, तो उसे, कला-प्रेमी अवश्य पसंद करेंगे। यह सुनकर आप मुस्करा दिये; लेकिन शीघ्र ही वह मुद्रा बदल गई और आपने एक दीर्घ साँस लेकर, गम्भीरता-पूर्वक जो कुछ कहा, वही मैं यथा-शक्ति यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ:—

सन् १९१४ में, पूर्व-बंगाल के बोरिसाल नामक एक छोटे से नगर में आपका जन्म हुआ था। बचपन से ही आपको विद्या-अध्ययन से प्रगाढ़-प्रेम था; किन्तु राजकीय-कारण, आप पर शत्रु की

भांति टूट पड़े और वह आकांक्षा मन ही में छिपाये हुए, आपको केवल १७ वर्ष की अवस्था में ही, अपनी जन्म-भूमि को बरबस छोड़कर वहाँ से पलायन करना पड़ा। किसी प्रकार, भारत के उस विशाल नगर में, जहाँ लाखों की क़ीमत का फ़ैसला होता है; जहाँ नित्य करोड़ों की उलट-पुलट हुआ करती है; उस घनी आबादी वाले, ऐतिहासिक एवं ख्याति-प्राप्त नगर में, जिसे कलकत्ता कहते हैं, आप भी अपने भाग्य की परीक्षा करने जा पहुँचे। वहाँ आपको पहचानने वाला कोई भी नहीं था। हर शक्ल अजनबी। ऐसा कोई भी नहीं था जिसे अपना कह सकें। धनवानों के उस वैभव-शाली नगर में आप बिना पैसा-कौड़ी के ही, अपनी जीविका की खोज में, लावारिस की तरह भटकने लगे। यद्यपि, उस समय हिन्द और पाकिस्तान का कोई प्रश्न नहीं था; फिर भी आपको निर्वासितों की भाँति, फुट--पाथ पर रातें काटना पड़ीं। ईश्वर को न्यायी कहा जाय। अन्यायी, यह एक जटिल समस्या है। ठीक उन्हीं फुट--पाथी शय्यों के ऊपर सगर्व भुके हुए महलों में, घुंघरुओं की छूम छन, की खनाखन, तथा मदिरा के दौर, निरंतर अपना रंग जमाये रहते और बेचारे बद--क़िस्मत कुछ लोग, ज़मीन पर भी उनके इस कोलाहल में नींद-भर सो तक न पाते थे। यह अन्तर कब तक रहेगा भगवान्! क्या इन सब को ही नहीं बनाता?

दुरदिन पड़े 'रहीम' कहिं, दुर्थल जइये भाग।
ठाड़े हूजे घूर पर, जब घर लागत आग॥

किसी की सहायता के बिना, भूख व प्यास की मार सहकर भविष्य की आशा पर वे दिन भी बीत गये—'संतोषी सदा सुखी'। जिस प्रकार हर रात के गर्भ में छिपा हुआ सूर्य, दूसरे दिन ऊषादेवी की गोद में से; प्रातःकालीन, भव्य अरुण चिलमन हटा, झांककर समस्त संसार की सुप्त-अवस्था को दूर करके, नवीन बल, स्फूर्ति साहस एवं सन्देश प्रदान करता है; उसी प्रकार श्री. बिस्वास को उज्ज्वल-भविष्य की ओर अग्रसर करने के लिये, एक दैवी-किरण प्रकट हुई, तथा Let Heaven,s Light be thy Guide, की भांति, आपनी जीवन-नौका, उस किरण द्वारा प्रकाशित मार्ग पर निःशंक बहने दी।

कुछ दिनों के बाद, सामूहिक कठिनाइयों के घन-घोर बादल उज्ज्वल-भविष्य की प्रबल-पवन के कारण छिन्न-भिन्न होकर, आपकी जीवन नौका आलोक-मय मार्ग पर यद्यपि व्यवस्थित चलने लगी थी; किन्तु निश्चित विराम-स्थान तब तक नहीं मिल सका था। इस संसार-महासागर की न कोई थाह मिलती थी और न ऐसा दृढ़-स्थलभाग ही दृष्टि-गोचर होता था, जिस पर आधार-स्तम्भ निर्माण कर, अपनी तरुण-आशाओं की रूप-रेखा के अनुसार, स्थायी रूप से, एक अपना निजी भवन खड़ा किया जाय; जिसमें विश्राम करके, तब तक की यात्रा की थकान, बेदर्द मुसीबतों की मार की पीड़ा! एवं कसक, भस्म-सात् हो चुकीं अपूर्ण तरुण उमंगों की आह, तथा एकान्त का दुःख, यदि सब एक साथ नहीं, तो क्रमशः शनैः-शनैः ही भुलाये जा सकें और शेष-जीवन निष्कण्टक एवं शांति-पूर्वक व्यतीत हो सके।

'रहिमन' चुप ह्वै बैठिये, देख दिनन को फेर।
जब दिन नीके आयेंगे, बनत न लगि है बेर॥

आपको अन्य कलाकारों की भाँति, जीवन--यात्रा के आरंभ में एक दीर्घ--काल तक। कोई उपयुक्त मार्ग ही नहीं दीख पड़ा। नितान्त, एक दिन 'जहां चाह वहां राह' के अनुसार, आपके जीवन में भी एक आशा किरण दिखाई दी और भावी--जीवन की ललित--कलिका विकसित हो सकी। फिर भी, आवश्यकता थी, उसके अछूते अनुपम--सौंदर्य और सौरभ के पारखी की। आपकी तरुण कल्पनाओं से उत्पन्न कला--क्रांति का उचित स्वागत करने वाला चाहिये था। ईश्वर के न्याय में देर भले ही हो जाय, पर अन्धेर नहीं होता। अस्तु 'जब दाँत न थे तो दूध दिया; अब दाँत दिये तो अन्न न दै है' आपको जन्म से ही, वरदान-स्वरूप, संगीत-विद्या में नैपुण्य प्राप्त हो चुका था। अतः एक संगीत--शिक्षक की नौकरी मिल गई और बस यहीं आपका जीविकोपार्जन का श्री-गणेश हुआ। धीरे-धीरे अपने ही प्रयत्न द्वारा आपने 'हिंदुस्तान रिकॉर्डिंग कम्पनी' में प्रवेश किया। यहाँ अवसर का उचित उपयोग करके, आपने गीत लिखना और उन्हें गाना आरंभ कर दिया। इस प्रकार धन--संचय करके, आप 'रंग-महल थिएटर' में जा पहुंचे। यहाँ आपके काम पर मुग्ध होने वाली एक विभूति आपको मिली। श्री. हिरेन बोस आप के काम से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने आप से, बम्बई चलने के लिये बड़ा आग्रह किया और विश्वास दिलाया कि, एकदिन अवश्य तक़दीर का सितारा चमकेगा। आपको श्री. हिरेन बोस के कथन पर विश्वास हो गया। तदनुसार बिस्वास सा: पहिले-पहल सन् १९३४ में, बम्बई आये।

चित्र—पट क्षेत्र में प्रवेशः—

यद्यपि आपने भारतीय–संगीत का विशेष अध्ययन नहीं किया था, फिर भी ईश्वर–प्रदत्त नैपुण्य और नाट्य-कला के ३-४ वर्ष तक निकट–सम्पर्क के कारण, आपको 'चित्रपट संगीत' के दिग्दर्शन में अधिक बाधायें नहीं आईं फिर भी, आपका मत यही है कि, यह काम इतना आसान नहीं है, जितना कि कदाचित लोग समझते हैं। यह काम बड़े ही उत्तर–दायित्व का है; क्योंकि संगीत-दिग्दर्शक चाहे, तो जनता की मनोवृत्ति और संगीत-संबंधी रुचि को पूर्णतः बदल दे सकता है। आपकी ध्वनियों में एक नाविन्य चटक—मटक तथा चुलबुलापन होने के कारण, उनका जनता में अद्वितीय स्वागत हुआ और आपकी प्रसिद्धि द्वितिया के चन्द्र की भाँति दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। मुझे वह समय याद है, जब कि, लोग श्री. अनिल बिस्वास के म्यूज़िक पर इतने लट्टू थे कि, जिस चित्र में आपका संगीत–दिग्दर्शन रहा, वह एक ही शहर में महीनों चला और उसके गाने, गली–गली में, बूढ़े से बच्चे तक के मुँह लग गये। सूर्य को दीपक दिखाना, एक असंगत सी बात है. अतः मैं आपकी इस कीर्ति के विषय में अधिक नहीं कहूँगा; क्योंकि ऐसे अनेकों चित्र हैं जिनमें श्री. बिस्वास ने संगीत-दिग्दर्शन किया है। उनकी मिठास का वाचकों को भली–प्रकार अनुभव है। फिर भी उदाहरणार्थ, ऐसे एक–आध, बहुत ही पुराने चित्र का उल्लेख मैं अवश्य करूंगा; जिससे वाचकों को श्री. बिस्वास की आज से बरसों पहिले की योग्यता का अनुभव हो सके। 'जागीरदार' और 'मन–मोहन' नामक चित्र वाचकों को आज भी भली प्रकार याद होंगे। 'जागीरदार' में पहिली ही बार आप पूर्ण–सफल हुए। उसी प्रकार, 'मन मोहन' का वह भाग, जिसका दिग्दर्शन आपने किया है, जनता में अप्रतिम रूप से अपनाया गया।

सामाजिक–जीवन :—

जब मैंने आप से यह पूछा कि, संगीत–व्यवसाय को ग्रहण करने पर, आपके सामाजिक–जीवन में क्या परिवर्तन हुआ; तो आपने बेधड़क होकर बताया कि, आप अपने जीवन को जनता की निधि समझते थे। आपने कभी इस ओर ध्यान तक नहीं दिया कि, लोग क्या कहते हैं; क्योंकि आपका मत था—'अपने ही काम से काम;' अतः आपका सामाजिक–जीवन विशेष महत्व का न बन सका। इससे स्पष्ट है कि, आपका मित्र–वर्ग भी बहुत ही सीमित है। आपको सदैव अच्छे कलाकारों की ही संगति पसन्द है और उसी के प्रभाव से आपको सदा स्फूर्ति प्राप्त हुई है। आप अधिकतर संगीतज्ञों अथवा कवियों के ही बीच रहते हैं; क्योंकि इन्हीं दो से आपको विशेष काम रहता है।

आधुनिक–परिवर्त्तनः—

यदि श्री. बिस्वास के पिछले और आज के दिग्दर्शन के ढंग की, तुलना की जाय, तो एक बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देगा। ज्यों–ज्यों आपको अपनी कला के कारण जनता की मनोवृत्ति में उत्पन्न होने वाले प्रभाव का अनुभव हुआ, आपको अपने किये पर धीरे-धीरे पछतावा भी होने लगा और अपने उत्तरदायित्व का स्मरण होते ही आपने अपना ढंग [स्टाइल] बदल दिया। पहिले आप प्रायः ऐसी ध्वनियां बनाते थे, जो लोगों में शीघ्र प्रसिद्ध हो सकें; लेकिन शीघ्र ही आपकी स्वदेशी भावना–जागृत हो गई, तथा आप प्रतीत करने लगे, मानो कि, किसी सुंदर से सौरभ–युक्त पुष्प को आपने मसल डाला हो। आपकी आत्मा ने शीघ्र आपको इस अपराध से पूर्णतः सूचित कर दिया और तभी से आपने निश्चय कर लिया कि, चाहे कुछ भी हो जाय आप 'संगीत–कला' का अब गला न घुटने देंगे। अस्तु, आप धीरे–धीरे भारतीय–संगीत के वास्तविक रूप की ओर खिंच आये। आपने अब तो दृढ़ संकल्प कर लिया है। आप अपनी ध्वनियों को प्राचीन रागों के बिल्कुल आस–पास ही रखेंगे; ताकि जनता भारतीय संगीत के वास्तविक रस का पान करके उसके सुस्वाद को सदैव याद रख सकें। फिर आपने अपनी कुछ नवीन ध्वनियाँ गुन गुना कर यह प्रमाणित किया कि, वे सब भारतीय–संगीत के निश्चित रागों से ही मिलती–जुलती थीं।

ध्वनि–बनानाः—

जब आप 'बिलास की टोडी' 'मियां–मल्हार' और 'जय जयवन्ती' जैसे रागों से मिलती–जुलती ध्वनियों के उदाहरण गुन गुना चुके, तो मैंने आपके ध्वनि बनाने के ढंग के विषय में कुछ प्रश्न किये। आपने स्पष्टतः बताया कि, ध्वनि बनाने के लिये आप कभी भी कोई वाद्य इत्यादि, लेकर प्रयत्न नहीं करते। सबसे पहिले आप चित्र के कथानक का अध्ययन करते हैं और गायक की प्रकृति (अर्थात् वह तीव्र स्वरों पर अथवा, जल्द चीज़ें गाता है, इत्यादि), चित्र में किस स्थिति में कोई गीत रखा गया, तथा वह किस प्रकार का है; इन सब बातों का पूर्ण निरीक्षण कर चुकने पर

उपयुक्त संगीत–पद्धति को ही आधार बना कर, काव्य को बार–बार पढ़ते हैं और तरह–तरह से उसका उलट–फेर करते–करते जब कोई मुखड़ा जम जाता है, तो उसे उस समय तक आप सही-सही ध्यान में रखे रहते हैं; जब तक कि, आपके विश्वास–पात्र सहायक, सरदार रामसिंह जी सेठी, उसको नोटेशन के रूप में नहीं लिख लेते। सरदार सा: पाश्चात्य और भारतीय, दोनों प्रकार की नोटेशन–पद्धति में निपुण हैं, अत: सुगमता–पूर्वक श्री बिस्वास के बनाये सब मुखड़ों की कागज़ पर स्थायी आकृति बन जाती है। श्री. बिस्वास में एक विशेषता यह है कि, आपकी ध्वनियों और विचारों में कभी द्वन्द्व नहीं छिड़ पाता। अकेले रेल–यात्रा करते समय अथवा स्नानागार (Bathroom) में ही आपको बहुत सी ध्वनियाँ सूझती हैं। कोई भी लय–बद्ध नाद, ध्वनि-निर्माण में आपका सहायक होता है।

प्रिय–वाद्य :—

समस्त वाद्यों में आपको 'फ्लूट' सब से अधिक पसन्द है। इस वाद्य को निपुण–वादक के हाथ में देकर, किसी भी अवसर पर, इसका उपयोग किया जा सकता है; किन्तु, आपकी अटल धारणा यह है कि, कण्ठ ही समस्त वाद्यों का सम्राट है।

संगीत–दिग्दर्शन के प्रति:—

संगीत–दिग्दर्शन के विषय में, मैं आपके उच्च–उद्गारों का केवल सार ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ और मुझे पूर्ण विश्वास है कि, वह प्रत्येक संगीत–दिग्दर्शक के लिये पथ–प्रदर्शक सिद्ध होगा। आपके मतानुसार, संगीत–दिग्दर्शक का समाज से एक उत्तरदायित्व–पूर्ण नाता है। अत: उसे हर कदम बहुत ही सँभल कर उठाना चाहिये। संगीत-दिग्दर्शक को चाहिये कि, वह संगीत-रूपी स्वर्गीय कला को दूषित न करे। उसका कर्तव्य है कि, केवल चाँदी की चमक और जनता की रुचि के कारण, वह कला को विषैली न बनाये, क्योंकि उसका पिलाया हुआ विषय घातक होता है। उसे कला का वह रूप जनता के सामने उपस्थित करना चाहिये, जिसे वह अपनी आत्मा की सच्ची राय ले चुकने के पश्चात् अच्छी समझता है।

यद्यपि, आपने पाश्चात्य–संगीत का ही अधिक अध्ययन किया है; फिर भी आपको उसका भारतीय–संगीत में समावेश अच्छा नहीं लगता। आप "अनुसरण पसन्द करते हैं, अनुकरण नहीं।"

विविध–विचार:—

हमें चाहिये कि, हम स्वातंत्र्य और भारतीयता को सुरक्षित रखें स्वातंत्र्य ही वह पौष्टिक–पदार्थ है, जिससे जीवन का प्रत्येक पहलू उज्ज्वल बन सकता है। मनुष्य का कर्तव्य है कि, वह अपने आप को धोखा न दे। किसी भी कला के प्रदर्शन से पूर्व, कलाकार को समयानुसार आवश्यक व्यवहारिक–ज्ञान से पूर्णत: परिचित हो जाना चाहिये। व्यवहारिक–ज्ञान की पर्याप्त योग्यता के बिना, वह उचित कला–कृति की रचना नहीं कर सकता। भारतीय चित्रों की पाश्चात्य चित्रों से जब तुलना की जाती है, तो अनेकों दर्शक देखकर, भारतीय–चित्रों में प्रदर्शित कला की कड़ी कटु–आलोचना करते हैं। वास्तव में, उनकी समझ पर बड़ा खेद होता है। भारतीय और पाश्चात्य कलाकारों के वातावरण ही बिल्कुल भिन्न हैं। हमारे अपने कलाकार, अपनी कला–कृति में वह सत्य–स्थिति प्रदर्शित करते हैं कि, जिसमें वे अथवा उनके स्वदेश–बन्धु अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वह किसे पसन्द आने लगा। उसमें स्वार्थ–सिद्धि के आधार पर मानव–निर्मित समाज के अनेकों दोषों का जो स्पष्ट प्रदर्शन होता है। पाश्चात्य कलाकार अपनी कला द्वारा, जीवन का ऐसा रूप प्रस्तुत करते हैं, जैसा जीवन वे व्यतीत करना चाहते हैं। उनके तथा हमारे कलाकारों को यदि, कला–रूपी एक ही वाहन में प्रवास करने वाले यात्री मान लिया जाय, तो पाश्चात्य कलाकार, विराम–स्थान पर पहुँचने से ही पूर्व वाहन से कूद पड़ते हैं, जब कि भारतीय–कलाकार सबके अन्त में, वाहन के पूर्णतया रुक जाने पर धीरे से उतरेंगे। यही कारण है कि, पाश्चात्य–कला आधुनिकता और क्रम–बद्धता में हमारी कला से १०० वर्ष आगे पहुँच चुकी है; किन्तु हमारी कला सनातन है और तुलना में, पाश्चात्य–कला से, जहाँ तक विस्तार और भावना का सम्बन्ध है, अवश्य ही १००० वर्ष आगे, पहिले से ही है। इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य तथा भारतीय संगीत में एक विशेष साम्य पाया जाता है। हमारे अनेकों तन्तु–वाद्यों को ही सुधार कर, पाश्चात्य कलाकारों ने पाश्चात्य–रूप और नाम दे दिये हैं। स्वर–शृंगार में ही, कदाचित् आधुनिक परिवर्तन करके 'गिटार' का आविष्कार हुआ। इसी तरह शहनाई पर से 'ओ बो' बना।

बहुत से भारतीय–वाद्य क्रम–बद्ध नहीं हैं। सितार और दिल रुबा सीमित वाद्य हैं। सच पूछिये तो सम्पूर्ण भारतीय–संगीत में

ही सीमा और स्व-च्छता का अभाव है। अतः हमें अपने संगीत में आवश्यक सुधार अवश्य करना चाहिये। यही कारण था कि, आपने पाश्चात्य-संगीत सीखा। आपका विचार है कि, अमरीका इत्यादि, देशों में जाकर, भारतीय-तन्तु-वाद्यों में किये जाने वाले सुधारों का अध्ययन किया जाय और फिर भारत में वाद्यों संबंधी, भारतीय वाद्यों में नवीन आविष्कार, करके, भारतीय-संगीत के काया-कल्प में हाथ बँटाया जाय।

भारतीय और पाश्चात्य संगीत में विद्यमान साम्य का आगे उल्लेख करते हुए आपने बताया कि, जहाँ तक सार्वकालिक सामूहिक-गीतों [Folk songs] से सम्बन्ध है, वे सारी दुनियाँ में प्रायः मिलते-जुलते ही हैं। उनमें भाव-सम्बंधी ऐक्य भली-प्रकार मिलता है। इसे सिद्ध करने के लिये आपने बंगाली, सिन्धी व पंजाबी गीतों का एक-एक उदाहरण गाकर बताया। उन सबका अर्थ प्रायः एक सा ही था। केवल उनमें भागोलिक-विभिन्नता की थोड़ी-थोड़ी झलक दृष्टि-गोचर होती थी। अतः भारतीय-संगीतज्ञों को ऐसे गीतों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके अतिरिक्त ऐसे गीत ही संगीत-प्रचार में पूर्णतः सहायक हो सकते हैं।

मैंने, आप से भी संगीत-दिग्दर्शक की सफलता-असफलता से संबंधित वैसा ही प्रश्न किया; जैसा कि, पिछली बार गुलाम हैदर सा: से किया था। उसके उत्तर में आपने बताया कि, अपनी असफलता का दोष दूसरे पर डालने की अपेक्षा, अपने आप में ही दोष ढूँढने का प्रयत्न करना चाहिये। संभव है कि, स्थान और जनता की रुचि को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण असफलता मिली हो। ऐसे अवसर पर निराश नहीं होना चाहिये। भाग्य पर विश्वास करके फिर से उपयुक्त प्रयास करना ही सफलता का गुर है।

विभिन्न-प्रान्तों के संगीत की तुलना करते हुए आपने बताया कि, आपको संयुक्त-प्रान्तीय संगीत ही अधिक प्रिय लगता है; क्योंकि वह उनके व्यवसाय के अधिक उपयुक्त है और उसमें भावना, राग व लय का पर्याप्त समावेश होता है।

अन्त में, आपने बताया कि, यदि उचित रूप से उपयोग किया जाय तो, भारतीय शास्त्रीय-संगीत ही इस व्यवसाय में अधिक उपयोगी हो सकता है।

—:—

देना बँक
देवकरण नानजी बँकिंग कं. लिमिटेड

हेड ऑफिस बम्बई—४७ शाखाएँ.

अधिकृत	मूल-धन	रु.	१,००,००,०००
स्वीकृति-प्राप्त	,,	रु.	५०,००,०००
स्थायी-कोष	,,	रु.	१५,००,०००
कुल-ठेव [जमा]	३१-८-४८	रु.	८,६८,६१,०००
लेन-देन के निमित्त कुल पूँजी	,,	रु.	१०,१०,१३,०००
खातों की संख्या	,,		६४,१०३

कुलाबा, शांताक्रुज, एवं माटुंगा के सुरक्षा-तहखानों में तिजोरियों की व्यवस्था उपलब्ध है।

बैंकिंग के सर्व-साधारण काम काज किए जाते हैं।

प्रवीनचंद्र वी. गांधी
मॅनेजिंग डायरेक्टर

पत्र-व्यवहार :—

(हिन्दी–अनुवाद)

सेवा में,

खां साः अज़मत हुसैन खां, बम्बई ।

जनाब ख़ां साहब !

मैने संगीत–कला–विहार के अगस्त–अंक में प्रकाशित आपका वह पत्र पढ़ा, जिसमें आपने अपने, उस्ताद तानरस खां और उमराव खां साहबान के घरानों से सम्बन्धित त्रुटियों को बताया है । साथ ही, आपने ख़ा साः भूर्जी खां के विषय में जो कहा है, उस पर भी मैंने ग़ौर किया । मेरी ग़ल्तियाँ दुरुस्त करने के कष्ट के लिये, मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं यह पत्र अंग्रेजी में इसलिये लिख रहा हूँ, क्योंकि मैं उर्दू अच्छी तरह नहीं जानता ।

यह पत्र, मैं अपनी स्थिति के स्पष्टीकरण के लिये नहीं लिख रहा हूँ। चूंकि, मैं अपने आपको अपने शास्त्रीय–संगीत के भिन्न–भिन्न घरानों के इतिहास के ज्ञान में निपुण नहीं समझता, इसलिये मैं, प्रत्येक समय आवश्यक सुधार स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत हूँ । मुझे तो बस, शास्त्रीय–संगीत से प्रेम है और विशेषतः आग्रा घराने से । मैं उसका कोई १० वर्ष से अनुयायी हूँ और बड़े–बड़े गायकों को सुना है । स्वभावतः, भिन्न–भिन्न घरानों के विषय में कुछ जानने की इच्छा हुई, तथा इस सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें भी पढ़ीं । मैंने कुछ गवैयों से भी पता लगाना चाहा; किन्तु कभी भी पूरा–पूरा और सच्चा हाल मालूम न हुआ । प्रायः जो समाचार मुझे मिलते, वे असत्य ही होते थे । लेकिन, मैंने इसका पीछा नहीं छोड़ा और प्रत्येक समय जितना भी सम्भव हो सका, घरानों का हाल मालूम किया । संगीत–कला–विहार में प्रकाशित निबन्ध उसी का परिणाम था । मैं किसी भी गायक अथवा घराने के साथ अन्याय करना नहीं चाहता था । मैं जानता हूँ कि, ख़ादिम हुसैन खां, अनवर हुसैन खां और लताफ़त हुसैन खां आग्रा-घराने के खां साः कल्लन खां के शिष्य हैं और जैसा कि मुझे पता लगा है–ख़ां साः तानरस खां नौहर-बानी के गायक थे, जहां से आग्रा-घराना उत्पन्न हुआ । अतः मैंने उनको और उनके पुत्र को आग्रा-घराने में शामिल कर दिया था । हो सकता है कि, यह ग़लत हो; लेकिन मैंने बड़ी कोशिश की, फिर भी कोई ऐसी पुस्तक न मिल सकी जिसमें सम्राट-अकबर के समय से आज–तक के विभिन्न घरानों का पूरा-पूरा हाल दिया हो । अतः मैं समझता हूँ कि, मैने सारी बात स्पष्ट कर दी है और आप इसे पसन्द करेंगे । यह पढ़ कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि, आपने संगीतज्ञों के प्राचीन घरानों का हाल लिखने का भार अपने ऊपर ले लिया है और मैं उस शुभ-घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।

नोटः—यह उत्तर केवल मेरी ओर से है । इससे श्री. मकरन्द बादशाह का कोई संबंध नहीं है ।

एस. योध

आपका,

साधुराम योध

सत्कार–समारंभ
(१)

(Photographed by:—R. K. Bhatnagar.)

अहमदाबाद के 'गान्धर्व महाविद्यालय' में संगीत–शिक्षण बड़ी अच्छी तरह हो रहा है। यह संस्था अब रजिस्टर्ड हो चुकी है। कार्य–कारिणी समिति में श्री. दादा साहब मावळणकर, श्री. नरहरी परीख, डॉ. हरी प्रसाद देसाई व श्री. सुरोत्तम हाथीसिंह सेठ, जैसे बड़े-बड़े नागरिक हैं। इस संस्था की सहायतार्थ धन-संचय इत्यादि, कार्यों के लिये चार प्रचारक, पूर्वी–अफ़्रीका जाने वाले हैं। 'गान्धर्व महा विद्यालय मंडल' की ओर से उनके सत्कार व उनकी शुभ-विदा के निमित्त 'स्कूल ऑफ़ इन्डियन म्यूज़िक' में एक सभा रविवार दि. १७ अक्टूबर की सुबह ९ बजे मंडल के अध्यक्ष, श्री. बी. आर देवधर की अध्यक्षता में हुई। उस समय, मंडल के बहुत से सभासद व अन्य संगीत–प्रेमी लोग, उपस्थित थे। श्री. रावजी भाई पटेल [संगीत- प्रवीण] ने अपने कार्य की रूप- रेखा समस्त उपस्थित सज्जनों के समक्ष प्रस्तुत की। अपने भाषण में आपने कहा, "आज से ३०–३२ वर्ष पूर्व, कै. पं, विष्णु दिगंबर पलुस्कर के पट्ट-शिष्य, कै. प्रो. नारायण मोरेश्वर खरे, संगीत सिखाने के लिये, सावरमती–आश्रम में पधारे थे। उन्होंने अपना कार्य सबसे पहिले आश्रम में ही आरंभ किया और अहमदाबाद की जनता को संगीत–कला के महत्त्व का ज्ञान प्रदान किया। पं. खरे जी का ही कार्य पूर्ण करने के लिये 'गान्धर्व महाविद्यालय' नामक संस्था अहमदाबाद में स्थापित हुई। पं. खरे जी के पूज्य गुरु जी, पं. विष्णु दिगंबर, एकबार अहमदाबाद पधारे थे और उन्होंने वहां एक संगीत–परिषद भी किया था। जो कार्य पं. विष्णु दिगम्बर ने किया, वही उनके पट्ट–शिष्य पं. नारायणराव मोरेश्वर का कार्य था। पं. खरे की मृत्यु के बाद से, उनके नाम से एक निधि एकत्रित की जा रही है और इस निधि का उपयोग, अहमदाबाद के 'गांधर्व महा विद्यालय' के निमित्त ही होगा। यह संस्था 'गान्धर्व महाविद्यालय - मंडल' में सम्मिलित करली गई है और मंडल की भिन्न- भिन्न परीक्षायों में, प्रति- वर्ष अहमदाबाद–केन्द्र से ४००–५०० विद्यार्थी भाग लेते हैं।

कै. गु. पं. विष्णु दिगम्बर ने जन्म-भर संगीत–प्रचारक (Missionary) का कार्य किया था; तथा उनके शिष्य कै. गु. पं. नारायण राव खरे ने भी वही कार्य किया। अब हम भी इस कला के प्रचारक के रूप में पूर्वी अफ़्रीका जा रहे हैं। आप हमें आशिर्वाद दीजिये कि, हम इस कार्य में यशस्वी हो सकें। मेरे दूसरे साथी श्री. कालिदास आर्य [संगीत-विशारद], श्री. हर विलास शर्मा (सं. वि.) व श्री. वसंत कुमार जी परमार (नर्तन–विशारद) हैं।"

प्रो. देवधर ने, श्री. रावजी भाई पटेल, व उनके साथियों का अभिनंदन करते हुए कहा, "कै. पं. विष्णु दिगम्बर चाहते थे कि, उनकी परम्परा के लोग संसार के सब देशों में जाकर हमारे संगीत का प्रसार करें। वे और कै. पं. नारायणराव जी खरे, स्वर्गवासी हो चुके हैं, तथा आज वे हमारे बीच पथ-प्रदर्शन के लिये यद्यपि नहीं हैं; किन्तु श्री. रावजी भाई व उनके साथियों का यह साहस देखकर उन्हें अवश्य बड़ा आनन्द होता। मैं मंडल के समस्त सभासदों की ओर से श्री. रावजी भाई व उनके साथियों का अभिनन्दन करके, उनके प्रति शुभ-यश प्राप्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।

(२)
पंडित ओंकारनाथ जी की स्वर्ण-जयंतिः—

रविवार, दि. १७ अक्टूबर की शाम को ४ बजे, पं. ओंकार नाथ जी ठाकुर की ' स्वर्ण–जयंति, बम्बई विश्व-विद्यालय के कॉनवोकेशन–हॉल में, उनके मित्रों और अनुयायिओं ने बड़ी धूम–धाम से मनाई। कॉनवोकेशन–हॉल बहुत ही सुन्दरता–पूर्वक सजाया गया था। श्री. सुन्दरम् अय्यर, व्हायोलीनिस्ट [मद्रास]; पं. अनोखे लाल जी, तबलिये [बनारस] व पं. विनायकराव पटवर्धन [पुना] इस समारंभ में भाग लेने के लिये आये थे। यह समारंभ दुपहर के ४ बजे शुरू हुआ और रात तक चलता रहा। अध्यक्ष-स्थान को श्री. बाबा साहब जयकर ने सुशोभित किया था।

श्रीमान् बाबा साहब ने एक अत्यन्त सुन्दर भाषण दिया। आपने कहा " यदि आज तक के कलाकारों का इतिहास आप देखें, तो उनकी कीर्ति व उनके गुणों का रहस्य, उनके निरंतर परिश्रम से ही प्रतीत हो सकता है। थी सा: तिरकवा [तबलिये] एक बड़ी सी मोमबत्ती जलाकर महनत के लिये बैठते थे और मोमबत्ती के पूरी तरह से जल चुकने तक वे महनत करते रहते थे। इसमें कम से कम ६-७ घंटे तो सहज लग जाते थे। म. खां सा: अलादिया खां, जिन्हें संगीत–कला का हिमालय कहा जा सकता है, जैसी विभूतियां स्वर्गवासी हो चुकी हैं। ऐसे गुणी लोगों के रिक्त–स्थानों की पूर्ति करने वाले कलाकार आज दिखाई नहीं देते। पं. ओंकारनाथ जी जैसों को ऐसे गुणी कलाकारों के रिक्त–स्थान भरने का प्रयत्न करना चाहिये।" अन्त में, पंडित जी का अभिनंदन करते हुए उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया।

तत्पश्चात्, पं. औंकार नाथ जी का भाषण हुआ। अपने जीवन की कुछ विशेष घटनाओं को दुहराते हुए, इतना गुणीमानी बनने के लिये आपको, क्या–क्या प्रयत्न करने पड़े; इन सबका सुंदर वर्णन श्रोताओं के समक्ष, आपने किया। पंडित जी ने कहा, " मैं घन्टों तपश्या करता था। इस काम में मेरी प्रिय पत्नि की सहायता व सहानुभूति अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। मैं उसे ' देवि ' के नाम से पुकारता था, तथा वह मुझे ' आर्य–पुत्र ' के नाम से सम्बोधित करती थी। हमारा एक–दूसरे के प्रति प्रेम वर्णनीय था।" इस स्मृति का वर्णन करते–करते, पंडित जी का गला भर आया और उनके नेत्रों से अश्रु–प्रवाह होने लगा।

उपर्युक्त भाषण के समय, पंडित जी ने कहा, " समस्त हिंदुस्तान में, किसी भी राग का केवल आरोह–आवरोह गाकर उस राग की संपूर्ण–मूर्त्ति, श्रोताओं के समक्ष उत्पन्न करने वाला मेरा जैसा, कोई दूसरा व्यक्ति बहुत ही मुश्किल से मिल सके। मैं कोई सा भी राग गाऊँ, उसे सुनकर कोई भी तुरन्त पहचान सकता है कि, वह पुरुष है अथवा स्त्री। तत्पश्चात् कुछ प्रत्यक्ष-प्रयोग करके पंडित जी ने कौनसा राग स्त्री–जाति का है व कौनसा पुरुष–जाति का, यह प्रमाणित कर दिखाया। यद्यपि पंडित जी ने यह सब, इससे पहिले कई बार किया और कई जगह पर बताया भी था, तो भी इस अवसर पर विशेष आनंद में होने के कारण, वे सब प्रयोग बहुत ही प्रभाव–शाली हुए।

पंडित जी को, एक चांदी का तम्बूरा भेंट में मिला। उन्हें दी जाने वाली थैली की धन–राशि ३६ हजार तक पहुँच चुकी थी और वह दिन–दिन बढ़ती ही जा रही है। समस्त संगीत–प्रेमियों की ओर से पंडित जी से नम्र–निवेदन है कि, वे इस प्रकार मिली हुई इस थैली का उपयोग किसी संगीत–सम्बन्धी सार्वजनिक–कार्य के निमित्त करें; तथा ऐसी ही सबको आशा भी है।

पं. विनायक राव पटवर्धन के गायन के बाद ही, पंडित जी का गायन हुआ। श्री. चन्द्रवदन महता के प्रयत्न स्वरूप ही, ' ऑल इन्डिया रेडिओ ' पर पंडित जी का गायन सुनने का सौभाग्य समस्त जनता को प्राप्त हुआ। पंडित जी का गायन, प्राय: सभी ने रेडियो पर अच्छी तरह से सुना है, अत: उसके विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

श्री, चंपकलाल मोदी के अतुल परिश्रम के कारण ही, यह शुभ–योग सफलता–पूर्वक हो सका। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध संगीत–प्रेमी श्री. दामोदर दास खन्ना, सह–परिवार विशेषत: इस समारंभ के लिये, कलकत्ता से यहां आये थे।

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

* संगीत के विशेष कार्य-क्रम *

(१)

जग प्रसिद्ध नर श्रेष्ठ विभूति, **श्री. जे. कृष्णमूर्त्ति** के व्याख्यान सुनने के लिये जो बड़े-बड़े लोग दूर-दूर से आये थे, उनमें अहमदाबाद के श्रीमान् सेठ साराभाई की सुपुत्री **कु. गीताबाई** तथा बैंगलौर के **श्री. विश्वनाथराव अय्यर** व उनके परिवार के लोग इत्यादि, पूना में आये थे। जब हमें यह ज्ञात हुआ कि, ये लोग संगीत में निपुण हैं, तो उनकी कला का आस्वादन करने के लिये उनका यथाशक्ति एवं यथोचित सत्कार किया जाय, इस आशय से हमने विनंति-पूर्वक उन्हें निमंत्रण दिया और उन्होंने वह स्वीकार भी कर लिया। दि. १३ अक्टूबर १९४८ की रात को **श्रीमंत आबा साहब** के दीवानखाने में यह सुन्दर कार्य-क्रम हुआ। पूना की **सौ. लीलाबाई सरदेसाई** ने अपने गायन द्वारा कार्य-क्रम का श्री-गणेश किया। थोड़ी देर के पश्चात् फिर महमानों में से **श्री. गौतम** का गायन हुआ। तत्पश्चात्, उनकी भतीजी **कु. ललिता** का सुश्राव्य-गायन हुआ। ये दोनों यद्यपि मद्रास में रहते हैं, फिर भी उन्होंने हिंदुस्तानी गायकी आत्म-सात कर रखी है। खां फैयाज़ खां के शिष्य, **श्री. रामचंद्र नाईक** के पास इन चचा-भतीजी की शिक्षा चालू है। कु. ललिता ने एक पंजाबी ढंग का दादरा अत्यन्त ही उत्कृष्ट-कोटि का गाया। इसके बाद आधे घंटे तक **कु. गीताबाई अम्बालाल** का मृदंग--वादन हुआ। इतने बड़े धनिक व्यक्ति की पढ़ी-लिखी कन्या; परन्तु मृदंग-वादन के प्रति लगन उत्पन्न होकर, उन्होंने इतना नैपुण्य कमाया, इस पर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। आधे-घंटे तक गीता बाई के धमार बजा चुकने पर, उनके गुरु **श्री. गोविन्दराव बुरहानपुरकर** के मृदंग--वादन के पश्चात्, लग--भग २॥ बजे यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। इस कार्य-क्रम के बाद श्रीमंत आबा साहब मजुमदार ने इन सबको सादर पुष्प-हार अर्पण किये। इस अवसर पर **श्री. मनोहर अमेंबल ने** तबले की साथ की। श्री. मनोहर, संध्या समय विमान-विद्या का अभ्यास करते हैं। श्री, मनोहर अमेंबल, बम्बई रेडिओ के श्री. **दिनकर-राव अमेंबल** के भतीजे हैं।

युक्त अवसर पर पूना के ३०-४० विशेष नागरिकों के अतिरिक्त **दे. भ. रावसाहेब पटवर्धन** विशेषतः पधारे थे। राव साहब पटवर्धन ने, श्री. कृष्ण मूर्ति जी को, खास तौर से श्रीमंत आबा साहब मजुमदार का सितार-वादन सुनवाया। 'विहार' के पूना प्रतिनिधि-**श्री. भालचन्द्र द. खांडेकर**

(२)

श्रीराम संगीत विद्यालय, शोलापुर का २२ वाँ वार्षिकोत्सव,

स्थानीय हारीभाई देवकरन हाई-स्कूल के मुख्य-प्राध्यापक श्री. कृ. ना. पिले, एम्. ए., बी. टी., पी. एच. डी. [लंदन] की अध्यक्षता में, बड़े ठाट-बाट के साथ मनाया गया। इस अवसर पर विद्यालय के विद्यार्थियों के बड़े कार्य-क्रम हुए, जिसमें कु. हर्डीकर, दलाल, ऊषा, निर्मला इत्यादि कन्याओं का अत्यंत ही सुन्दर गायन रहा। मा. प्रभाकर सोमण का गायन-कार्य-क्रम भी अतिशय आनन्द-दायक एवं सुन्दर था। वादन के कार्य-क्रम में मधुकर भिड़े का दिलरुबा-वादन, श्री. सरोजनी बाई शहा का फिडल-वादन, श्री. रामदास नायडू व कुलकर्णी के जल-तरंग तथा सितार-वादन के कार्यक्रम अत्यंत ही उत्कृष्ट एवं मनोरंजक हुए। इसके पश्चात् विद्यालय के नये व पुराने विद्यार्थियों के आर्केस्ट्रा का प्रोग्राम बड़ा ही आकर्षक रहा।

अन्त में, अध्यक्ष महोदय ने श्रीराम संगीत विद्यालय के चालकों के कार्य-कौशल्य एवं संगीत-प्रसार के कठिन कार्य की सफलता के लिये निरंतर प्रयास के प्रति समयोचित शब्दों में गौरव-गान करके, शोलापुर निवासियों से उक्त विद्यालय को यथाशक्ति पूर्ण-सहयोग प्रदान करने लिये प्रार्थना की। तत्पश्चात् इचलकरंजी के श्री. शामराव जोशी ने विद्यालय के चालकों की ओर से शोलापुर-निवासियों के प्रति आभार प्रदर्शित किया।

प्रेषक,

श्री. ग. भि. सोमण.

[३]

संगीत-समाज कानपुर की ओर से स्व. गु. पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी की १२ वीं पुण्य-तिथि म्युनिसिपल मर्चेन्ट्स-हाथ स्कूल के हॉल में रविवार दिनांक ३ अक्टूबर को मनाई गई। कानपुर के श्रीयुत शंकरराव बोडस, श्री. नारायण राव केलकर, प्रयाग के श्री. बाला जी पाठक; व लखनऊ के श्री. शत्रुघ्न शुक्ला जी का गायन; लखनऊ के श्री. विष्णुपंत जी जोग का वेला-वादन; श्री. दत्तात्रय काले का तबला-वादन और प्रयाग के श्री. शिवरामपंत जी मामलतकर का सितार-वादन; इत्यादि कार्यक्रम हुये।

काल्पनिक-संगीत-नगर

(अगस्त के अंक में प्रकाशित)

के गीतों का नोटेशन

(लेखक एवं स्वर-कार:-श्री. शं. श्री. बोडस, कानपुर)

※ भिखारी का गीत ※

(१)

राग:—जोगी मांड........................ताल:—कहरवा

उठ जाग मुसाफ़िर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है;
जो सोवत है, सो खोवत है; जो जागत है, सो पावत है ॥
टुक नींद की अँखियां खोल ज़रा, ऐ ग़ाफ़िल ! रब से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीति नहीं; प्रभु जागत है, तू सोवत है ॥१॥

अनजान भुगत करनी अपनी; ऐ पापी ! पाप में चैन कहाँ।
जब पाप की गठड़ी शीश धरी, अब शीश पकड़ क्यों रोवत है ॥ २ ॥

जो कल करना है, आज करले; जो आज करना है, अब करले
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है ॥ ३ ॥

उठ जाग, उठ जाग, जाग, जाग, जाग।

—स्थाई—

पध	सां	सारें	सां	सांसां	नीसां	नीध	प	पप
उठ	जा	गमु	सा	फ़िर	भोऽ	रम	ई	अब
	ध	मम	प	पनीपध	सां	नीरें	सां	पध
	रै	नक	हाँ	जोऽऽऽ	सो	वत	है	जोऽ
	सां	नीरें	सा	ध	पमगम	पनी	ध	मप
	सो	वत	है	वो	खोऽऽऽ	वत	है	जोऽ
	ध	पप	म	ग	रेसा	रेग	सा	
	जा	गत	है	सो	पाऽ	वत	है	

अन्तरा

सासा	रे	मम	पध	पध	सां	नीध	सां	मप
टुक	नीं	दकी	अँखि	याँऽ	खो	लज़	रा	ऐऽ
	सां	सांसां	सारेंगरें	सां	नीसां	नीध	प	गम
	ग़ा	फ़िल	रऽब	ऽसे	ध्याऽ	नल	गा	यह
	ध	धध	धध	ध	पनी	धप	मपधप	गम
	प्री	तक	रन	की	रीऽ	तिन	हींऽऽऽ	प्रभु
	पनी	धप	म	गरे	गमपम	गरे	सा	
	जाऽ	गत	है	तूऽ	सोऽऽऽ	वत	है	

नोट:—बाक़ी के दो अंतरे पहिले के अनुसार चलते हैं। स्थाई विलम्बित लय में और बाक़ी के अंतरे द्रुत लय में गाने चाहिये। निम्न-लिखित रूप से गीत समाप्त करना चाहिये:—

पध	सां	—	—	पध	रें	—	—	—
उठ	जा	ऽ	ऽग	उठ	जा	ऽ	ऽ	ऽग
	ध	—	—	—	म	—	—	—
	जा	ऽ	ऽ	—ऽग	जा	ऽ	ऽ—	ऽग
	—	—	—	—	सा	—	—	—
	जा	ऽ	ऽ	ऽग	जा	ऽ	ऽ	ऽग

★ ★ ★

★ ग्वाल-ग्वालिन का गीत ★

(२)

द्वन्द्व-गीत............ताल:—कव्वाली अंग का कहरवा

ग्वालन:—चलो जी धीरे-धीरे,
डोले ये जिया, मोरा पिया !
ज़रा ठहरो सजनवा, हाँ ऽ ऽ ऽ ... ॥
चलना हो, तो आ चल पिया रे; मैं थकी, मैं थकी।
चार कोस की बाट पड़ी है :
फिर फेरी है। फेरा ॥ मोरे राजा सजनवा ॥

ग्वाल:—दूध दही की, भरी-भरी मटकी ;
सारी क्यों संग ले आई।

ग्वालन:—तोरी ये बतियाँ, मोहे न भावें;
निसदिन न सताओ ॥ मोरे राजा सजनवा ॥
चलो-चलो अब संग चलूँगी,
चलने की है ठानी।

ग्वाल:—ओ जाने वाली, गोपालन वाली;

ठहरो जाना, इतनी क्यों हैरानी है।

खाते जाना, दूध मलाई;

जीना जग में यानी ॥ मोरे राजा, सजनवा ॥

★ ★ ★

ग्वालन:— —प | पध पधपम गरे —प | पध पम

, च | लोजी धीऽरे ऽ धीरे ऽडो | ले थे जिया

गम गरे | सा सारे धसासा— —सा | रेग रेसा

मोरा ऽ पि | या ज़रा ठहरोऽ ऽस | जन वा ऽ

ग्वाल–ग्वालन एकसाथ:—

रेग रेसा | रेग रेसा धुसा धुसा | रेसा गरे सा—

आ ऽ ऽ ऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ

ग्वालन:—

—सा —रे ग प | —प पम पधनीध प

ऽ च लना हो तो | ऽ आ चल पिऽयाऽ

—म —गा रे रेग | — —रेग मगरे— सा—

ऽ मैं ऽथ की ऽऽ | ऽऽमैंऽ ऽऽबऽ की ऽ

—ध धध —नी धप | —प पम पधनीध प

—चा रको ऽसा कीऽ | ऽ बा टप ड़ीऽ ऽऽ है

—ग —ग ग म | गम नीध गरे —ग

ऽफिर् ऽ फे री है | फेरी मोरे राजा ऽ स

ग्वाल–ग्वालन एक साथ:—

रेसा सा रेग रेसा | रेग रेसा सा —

जन वा आ ऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ

ग्वाल:— —ग गप गपगरे सा | —सा गग मग प

ऽ दू धद हीऽऽऽ की | ऽ भरि भरि मट का

— —गम पनी धप मग | ग —सा गम प

ऽऽ खाऽ रीक्यू से ऽ मले | आ ऽऽ ऽऽ ई

ग्वालन:— —ध धप धनींसांनी ध | —ध धप धनीसांनी ध

ऽ तो रीये ब ऽ ति ऽ याँ | ऽ मो हेन भा ऽऽऽ वें

—ग मग गम नीप | गरे रेग रेसा —रे

ऽ नि सहि दिन नाम | तावो मोरे राजा ऽ स

धुसा सा रेग रेसा | रेग रेसा सा —

जन वा आ ऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ

एकसाथ:— साग–ग ग–गग रेगमम मग | गमप— पम पधध— ध

चलोऽच लोऽअब संऽगच लेंगी | वलनेऽकीहै ठाऽनोंऽऽओ

ग्वाल:— धध पधनी— — -ध | ध-धध पधसां— — —

जाने वा ऽ ली ऽ ऽ ऽ ओ | पा ऽ लन वा ऽ ली ऽ ऽ ऽ

सासारें— नींध धधसां— नींध | पप — मप धप

ठहरोऽ जाना इतनी ऽ क्यों है | रानी ऽ खाते जाना

म—पप मप गम नी–नींप | गरे रेग रेसा —रे

दूऽधम लाई जीना जगमें ऽ | यानी मोरे राजा ऽ स

धुसा सा रेग रेसा | रेग रेसा धुसा धुसा

जन वा ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

रेसा गरे सा , | धुसा धुसा रेसा गरे

ऽऽ ऽऽ ऽ , | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

सा ' धुसा धुसा | रेसा गरे सा '

ऽ ' ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽ '

★ ★ ★

❋ मालिन का गीत ❋

१

(' मालन बन कर आओ ' की तर्ज़ पर)

फूलन महिमा गावो गावो ।

साज सजावो, रंग रचावो ॥ फूलन० ॥

निर्मल कंचन रंग–रंग ये,

भृंग–प्रेम मन लावो, लावो ॥ फूलन० ॥ १ ॥

धूप जलावो, चंदन लावो;

फूलन महिमा गावो, गावो ।

भक्ति–प्रेम दिग्दर्शन करने,

फूलन हार मँगावो, मँगावो ॥ फूलन० ॥ २ ॥

—०—

—: स्थाई :—

धध पम गग सारेगरे | सा सा धनी साग
फू लन महि माऽऽऽ | गा वो गाऽ बोऽ
× ×

म सासा रेगम– म | – –गम गसा रेगमग रे
ऽसा जस जाऽऽऽ वो | – –रऽ गर चाऽऽऽ वो
× ×

—: अन्तरा :—

सा गम प पप | – –पध ध–पध नीध प
ऽन मेल कं चन | ,,रंऽ गऽरंऽ ऽग ये

म धप मध पम | गममरे सा रेगरेग प
,भूं गये ऽम मन | लाऽऽऽ वो लाऽऽऽ वों

म पम गग सारेगरे |
,फू लन माहि माऽऽऽ | दूसरा अन्तरा प्रथम–सदृश

★ ★ ★

★ धोबिन का गीत ★

४

ताल......कहरवा

कपड़े सुखावो भया, सावन आयारे, सावन आया रे।
घिरि बदरिया आई, नन्हीं सी बूंदें लाई; सुखे न सुथना भैया।
झुम–झुम देखो रे, भादों की है धुप–छैया, भादों की है।
धुप–छैया ॥
पानी है गँदला भरा, कपड़ों में मिट्टी सारा; रुपये न दे
कोऊ भैया ॥
थक–थक जाती रे, धोने में हमरी बैयाँ धोने में हमरी बैयाँ ॥

★ ★ ★

सासा | धसा –सा सा सा | रेम मपध– – –ध
कप | हेऽ ऽसु खा वो | भेऽ याऽऽऽऽ ऽ ऽसा
× ×

पनी धप मग रेसा | (रे) – – मग
वऽ नऽ आऽ याऽ | (रे) ऽ ऽ साऽ
× ×

रेसा सारे –ग –रे | सा – – सारे
बऽ नऽ ऽआ ऽया | रे ऽ ऽ करि
× ×

म प पध गम | पम. प. – मग
भा द रिऽ याऽ | आऽ ई ऽन ऽ
× ×

मनी धनी धप मग | मध प – सारे
न्हींऽ सी ऽबूंऽ देंऽ | लाऽ इ ऽ सूऽ
× ×

म –म मम म | पध पम गरे सासा
खे ऽ ना सुथ ना | भेऽ ऽऽ याऽ झुम
× ×

धसा सा –रे –म | मपध – ’ ’ –ध
झुऽ म ऽदे खो | रेऽऽऽ’ ’ऽभा
× ×

पनी धप मग रेसा | रेग रे – मग
दोंऽ कीऽ हैऽ धुप | छैऽ या ऽ भाऽ
× ×

रेसा –सा सारे गम | रे सा सा सासा
दोंऽ ऽकी हैऽ धुप | छै या ऽ कप
× ×

धसा –सा सा सा |
ड़ेऽ ऽसु खा ओ | दूसरा अन्तरा पहिले की भाँति।

★ ★ ★

★ खौमचे वाले का गीत ★

(५)

ताल......कहरवा

कचालू खालेना जी, कचालू की आई बहार।
धनिया पुदीना की चटनी है;
निम्बू रसीला है यार। बड़े–बड़े हैं, बड़े हैं खाते;
सुन्दर–सलोने कुमार ॥ बाबूजी खाते; लालाजी खाते;
राजा ताल्लुके दार। खस्ता कचौड़ी, पालक, बैंगनि
मँगोड़े मसाले दार ॥ १ ॥
भुने मटर हैं, चटक–मटक हैं; अदरक बड़ी मजे़दार।
चाट भरे, मन–भावन हैं; गोल–गप्पे बड़े मजे़दार।
मिरचा है, कड़वा तेल है, कड़वा; डालडा के लड्डू तैयार।
खालो! खिलालो, आनंद उठालो; जीवन की, है यही बहार॥ २ ॥

★

सा | धसा सासा रेगमग रे | –गध –प–म गमगरे सारेग–
क | चालू खाले नाऽऽऽ जी | कचाऽलऽकी आऽऽऽईऽबऽ
× ×

सा — — सा | गमध– धधधध पधपनी
हा ऽ ऽ ऽर | धनियाऽ पुदिनाकी चटनीप
× ×

धपमग
ड़ीऽहैऽ

गमपध पमगरे गमपध प | मम-म मम पपध- मम
नीऽवूर सीऽलाऽ हैऽऽऽ यार | बड़ेऽव ड़ेह बड़ेहैऽ खाते
×

म-धप पम गममरे रे | ध-सासा सासा रे-गग रेसा
सुऽदर सली नेऽऽऽ को | बा ऽ बूजी खाते लाऽलाजो खाते
×

मध प-मग रे , | ग-पग पप ध-नीनी ध-पप
राबा ता ऽल्लके दार् ऽ | खऽस्ताक चौड़ा पाऽलक बैऽगनि
×

मध पम गमगरे सा-सा- | धसा सासा रेगमग रे
मैंगो ड़ेम साऽलेऽ दार् कऽ | चाल् खाली नःऽऽऽ जी
×

दूसरा अंतरा प्रथम सदृश

मनिहारिन (चूड़ी वाली) का गीत

६

(' बृज लाला गड़े ' की तर्ज़ पर—कहरवा)

देखो लाई हूँ क्या ? कैसा, कैसा ये श्रृंगार,
(आवो, आवो, सुनो; अपनी हृदय की बात)
मैं मनिहारिन चूड़ियाँ लाई;
जाके ये देश—विदेश अनोखी ॥ लाई हूँ क्या ॥
यह सुहाग की प्रेम—भेंट है,
साजे सलोना शृंगार सती का ॥ आवो सुनो ॥
धर्म—प्रेम की बेड़ी बनिकर,
देत मधुर झंकार कहो ना ॥ लाई हूँ क्या ॥

—०—

रेम | पम -ध प ग | रे -ग रेसा -नी
देखो | लाई ऽ हूँ क्या कै | सा ऽ कै सा ये ऽ शृं
×

सा रेसारे- मम पधपम | गरे -ग रेसा -नी
गा ऽऽऽऽ ऽर् कैऽऽऽ | साऽ ऽकै साये ऽगा
×

सा — — — | अन्तरा
गा ऽ ऽ ऽर्
×

रे मम प पप | मप धप मप गरे
मैं मनि हा रिन | चूड़ि याँऽ लाऽ ईऽ
×

ग गग ग मप | म म-मम रेमगरे सारे
जा केये दे शवि | दे ऽऽशअ नोऽऽऽ खीऽ
×

पम -ध पधपम गग | रें -म गरे सानी
आवो ऽसु नोऽऽऽ अप | नी ऽह दय कीऽ
×

सा रेसारे- मम पधपम | गरे -म गरे सानी
बा ऽऽऽऽ ऽत अऽपेऽ | नीऽ ऽह दय कीऽ
×

सा — — | बाकी के अन्तरे पहिले के सदृश
बा ऽऽ ऽत
×

★ गुब्बारे वाले का गीत ★

[७]

ताल......कहरवा

लेलो, लेलो, टन टन टन टन;
गुब्बारे लेलो, प्यारे सुघर;
अनमोल हाँ । गुब्बारे ले लो ॥
रंग-रंगीले, चट—चटकीले;
ये बालक—चित चोर ॥ ऽ ऽ टन् ऽ ऽ टन ॥
हाँ गुब्बारे लेलो ॥
रोता लल्ला हँस देवेगा, मारे खुशी के उछल पड़ेगा ।
हँस—हँस कर घर भर देवेगा; होकर हर्ष विभोर ॥ १॥
नीले—नीले, पीले—पीले, हरे, गुलाबी , अरु चमकीले ;
धानीले, अंगूरी, लेलो; वे मनहर मन विभोर ॥ २॥

धनी धप
ले ऽ लो ऽ

धग ग — गरे | सानी ध धनी धप
लेऽ लो ऽ टनटन् | टनटन् गु बाऽ रेऽ
×

धग ग — गम | रेम गरे सानी धप
लेऽ लो ऽ प्याऽ | रेऽ ऽसु घर अन
×

धसा -सां सानी धप | धसा रेग रेसा सा
मोऽ ऽल हाँऽ गुऽ | ब्बाऽ रेऽ ले लो
×

ग गग मग रेसा | रेसा रेसारेसा धसा सा
रं गर गीऽ लेऽ | चट चऽटऽ कीऽ ले
×

गध पम गम गरे | ग —सांरेंगें- सांरेंगें —
येऽ बाऽ कल चित | चो ऽर टंटंटंऽ टंटटऽ
×

मध पम गम गरे | ग सा रेसा ध
ये ऽ बा ऽ लक चित | चो ऽर हाऽ गु

सा रेम सा सा |
ग्वा रेऽ ले लो |

—अन्तरा—

ध ध धनी धप | धसा धसा धसा सा
रो ता लऽ क्षाऽ | हँस देऽ वेऽ मा

ध धप धनी धप | धसा धसा धसा सा
मा रेखु शांऽ केऽ | उछ लप देऽ गा

धध धध धनी धप | धसा धसा धसा सा
हंस हंस कर घर | भर देऽ वेऽ मा

मध पम गम गरे | ग —सा रेसा ध
होऽ कर हर कवि | भो ऽर होऽ गु

स रेम सा सा || दूसरा अन्तरा प्रथम के समान
ग्वा रेऽ ले लो ||

★ लकड़हारों और घसियारों का गीत ★

८

[कोरस]

घसियारे:—हँसिया साधन केवल लागत , बाँध चले गठ्ठा ।
चलो रे भैया ॥

लकड़हारे:—बैठ–बैठ कर पैर थकत हैं, लेवो चलो लकड़ी ।
चलो रे भैया, जंगल बीच खड़ा ॥

घसियारे:—भूख–प्यास की सुध ना आवे; धूप हो, बादल भी ।
घास काटकर ढोर चरावें; भरत पेट भटकी ॥ चलोरे भैया ०॥

लकड़हारे :—धूप पड़ी हो खूब कड़क कर , काम करें फिर भी।
काम–काज में सुध ना सूझे, हालत पागल की ॥ चलोरे भैया ०॥

घसियारे:— मम ध ध धध | पध पनी धप मग
हँसि या सा धन | केऽ वल लाऽ गत

लकड़हारे:— गम धध धध धध | पध पनी धप मग
बैऽ ठबै ऽठ कर | पैऽ रथ कत हैंऽ

घसियारे:— गम पध धम गम | प — — —
बांऽ धच लेऽ गठ | ड़ा ऽ ऽ ऽ

लकड़हारे:— गम पध पम गम | प — —
लेऽ वोच लोऽ लक | ड़ी ऽ ऽ

एकसाथ:— प | पध धप धसां सां | — सां -सां सां
च | लोऽ रेऽ भैऽ या | ऽ जं ऽग ल

नीरें सांनी धप धनी | ध — — ध
बीऽ ऽऽ चऽ खऽ | ड़ा ऽ ऽ च

पध पम गरे सा | रे प -म म
लोऽ रेऽ भैऽ या | ऽ जं ऽग ल

ग सा रे ग || सा — — —
बी ऽ च ख || ड़ी ऽ ऽ ऽ

दूसरे प्रकार का अंतरा,

घसियारे:— गम धध ध प | पध पनी धप मग
धूऽ पप ड़ो हो | लूऽ बक झुक कर

लकड़हारे: — गम धध धध प | पध पनी धप मग
भूऽ खप्या ऽस की | सुध नाऽ आऽ वेऽ

घसियारे:— गम पध पम गम | प — — —
काऽ मक रेऽ फिर | भी ऽ ऽ ऽ

लकड़हारे:— गम पध पम गम | प — — —
धूऽ पहो बाऽ दल | भी ऽ ऽ ऽ

घसियारे:— सां सांसां —सां सांरें | नींनी नीसां ध प
घा सका ऽट कर | ढोऽ रच रा वें

लकड़हारे:— सां सांसां —सां सांरें | नींनी नीसां ध प
का मका ऽज मेंऽ | सुध नाऽ सू झे

घसियारे:— सांसां सांसां —नी धप | धनीसां— — —
भर तपे ऽट भट | कीऽऽऽ ऽ ऽ

लकड़हारे:— सां सांसां नी धप | धनीसां— — — —
हा लत पा गल | कीऽऽऽ ऽ ऽ ऽ

एकसाथ:— प | पध पम गरे सा | रे प —म म
च | लोऽ रेऽ भैऽ या | ऽ जं ऽग ल

ग सा रे ग | सा — — —
बी ऽ च ख | ड़ी ऽ ऽ ऽ

(पृष्ठ ३४ का शेष)

(३)

मृदंगाचार्य श्री. गोविंदराव देवराव गुरूजी (बुरहान-पुरकर) को कई वर्ष पूर्व, हिंद के उप-मुख्य-प्रधान **श्री. वल्लभ भाई पटेल** ने गुरू जी का मृदंग-वादन सुन, आनंद-मग्न होकर। श्री. गोविंदराव गुरू जी को **मृदंगाचार्य** की पदवी प्रदान की थी। हाल ही में, जब गुरू जी पूना में आये थे, तो उनके मृदंग-वादन का कार्य-क्रम अनेकों स्थानों पर होकर, उनका बड़ा सत्कार किया गया। उनमें से एक पूना की **नूतन-शैव-ब्राम्हण संस्था** की ओर से रविवार दि. १० अक्टूबर ४८ की रात को १० बजे, जॉन मैमोरियल हॉल में, श्रीमंत सरदार आबा साहब मजुमदार की अध्यक्षता में हुआ। उसमें पं **विनायक बुआ पटवर्धन**, नर श्रेष्ठ श्री. **चिंतोपंत दिवेकर** व श्रीमंत **आबा साहब मजुमदार** ने, गुरू जी व उनका वादन-कला की परंपरा की प्रशंसा से पूर्ण, भाषण दिये। गुरू जी ने भी चौताल उत्तम प्रकार से बजाकर अपनी मृदंगाचार्य की पदवी का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया। श्री **धोंडोपंत साठे** बुआ ने उनके साथ धमार की साथ बड़ी अच्छी तरह की। गुरू जी का निम्न संस्थाओं और व्यक्तियों ने सन्मान किया:—

[१] नूतन शैव ब्राम्हण-संस्था — हार व थैली— अध्यक्ष [बाबुराव वाईकर]

[२] शारदा संगीत विद्यालय — हार व नकद— प्रो. रामकृष्ण बुवा पर्वतकर

[३] भारत ब्रास बैंड — हार—, श्री. शंकरराव आगलोर)

[४] विष्णुपंत व किशनराव औटे — हार व एक सुंदर पखवाज (औटे बंधु)

(५) बाबूराव आलंदीकर—हार

(६) हिंद-गंधर्व—हार—प्रो. शिवराम पंत दिवेकर

(७) डॉ. गैसास—नकद

‘ विहार ’ को अक्टूबर में प्राप्त विशेष आर्थिक-सहाय्य

[१]	श्रीमंत बाबूराव उर्फ़ एल. एस. देशमुख, [नागपूर]........	रु. १२५
[२]	श्रीयुत बाबूराव पै [फ़ेमस-पिक्चर्स की ओर से]........	रु. १२५
[३]	श्रीमन् सेठ घनश्याम दास जी बिरला, [दिल्ली]........	रु. १२५
[४]	” ” गंगा प्रसाद जी बिरला, [कलकत्ता]........	रु. १२५
[५]	” ” माधव प्रसाद जी बिरला, [कलकत्ता]........	रु १२५
[६]	” ” कृष्णा कुमार जी बिरला, [कलकत्ता]........	रु. १२५
[७]	” ” बसंत कुमार जी बिरला, [कलकत्ता]........	रु. १२५
	कुल	रु. ८७५

* नये ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड्स *

दिवाली के अवसर पर, तीन लोक-प्रिय महाराष्ट्रीय गायिकाओं के रिकॉर्ड्स कोलंबिया ने प्रकाशित किये हैं।

(G. E. 8218)

सुशीला टेंबे का एक विशेष श्रोतावर्ग है। वे समस्त महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं। अतः उनका जगह-जगह गाना भी होता है। 'आशा-निराशा' नामक नाटक में उनके द्वारा गाये गये दो पद 'दिल रुबा हा या जिवाचा' व 'हजरत सलाम घ्यावा' का रेकार्ड बनाया गया है। आवाज़ सुरीली व प्रत्येक जगह स्पष्ट होने के कारण, ये गाने रंग-भूमि प्रेमियों को पसन्द आयेंगे इसमें तनिक भी संशय नहीं। आवाज़ के कई जगह के मोटे बारीक पन को यदि छोड़ दिया जाय, तो शेष सर्वांग सुन्दर कहा जा सकता है। सुशीला टेंबे के इस गायन में कभी बाल-गन्धर्व की, तो कभी सुन्दराबाई की गायकी की झलक दिखाई देती है।

(G. E. 8220)

यह रिकॉर्ड हीराबाई के गानों का है। यद्यपि, दोनों गाने मराठी के हैं, फिर भी काव्य श्री. वसंतराव देसाई का है। हीराबाई ने 'हसत मुख', यह गाना इस समय पंजाबी ढंग से गाने का प्रयत्न किया है। पंजाबी लोग गाते हैं, वैसा ही यह 'पहाड़ी' है। जो लोग यह कहते हैं कि, हीराबाई बार-बार, वही-वही चीज़ें गाती हैं, उन्हें हीराबाई का यह पंजाबी ढंग का गाना अवश्य सुनना चाहिये। इस रिकॉर्ड पर से यह सिद्ध हो जायगा कि, हीराबाई भी अपने गानों में परिवर्तन करने की फ़िक्र में हैं। दूसरी ओर भैरवी का 'किती गोड गोड गाऊं' नामक पद है। इसमें तो साक्षात अपनी पूर्व-परिचित हीराबाई ही हैं। हीराबाई महाराष्ट्र की प्रिय गायिका हैं और सदैव की भाँति, एक-रस होकर गाये हुए ये पद संग्राह्य हैं।

(G. E. 8207)

मोगूबाई कुर्डीकर सुरीलेपन व स्पष्टता के लिये प्रसिद्ध हैं; किन्तु इस रिकॉर्ड में एक-दो जगह पर स्वर थोड़ा कम लगता है। संभव है कि, यह दोष हमारे ग्रामोफ़ोन में ही हो।

मोगूबाई का गायन सुनकर खाँ सा: अलादिया खां के गायन की अवश्य याद आती है; किन्तु उनके घराने के गायक व गायिकायें 'अनवट राग' ही गाते आये हैं। भूप-नट, बसंती केदार, बिहागड़ा, काफी कानडा, राग ही बार-बार सुनकर कुछ लोगों को यह शंका होने लगी थी कि, इस घराने में शुद्ध व प्रसिद्ध राग गाने की पद्धति ही नहीं है क्या? कदाचित इस शंका का समाधान करने के लिये ही मोगूबाई ने इस बार केदार व मुलतानी, ये राग चुने हों।

मोगूबाई ने, यह राग बड़े अच्छे गाये हैं; किन्तु यदि एक दो जगह छोड़ दी जायें, तो किसी को भी अलादिया खां की तान-पद्धति, इस गाने में, सदैव की अपेक्षा कुछ कम प्रतीत हो सकती है। फिर भी, इतने से ही इस रिकॉर्ड का मूल्य कोई घट नहीं जाता। दमदार और सुरीले पन, व तानों में स्पष्टता, तथा सम पर ये विशेष शानदार रीति से आना; ये सब गुण इन दोनों रागों में मिलते हैं। हमारा संगीत-अभ्यासियों से आग्रह है कि, वे यह रिकॉर्ड संग्रह के निमित्त अवश्य खरीदें।

★

कै. पं. विष्णु नारायण भातखण्डे

की १२ वीं. पुण्य-तिथि का समारंभ

(श्री. आर. एम. कुलाकर से प्राप्त कैमरा-रिपोर्ट)

भारतीय-विद्या-भवन, बम्बई की ओर से, संगीत-विभाग के प्रिंसिपल, श्री. चितानंद जी नगरकर के नेतृत्व में गत दि. ५, ६ व ७ सितम्बर १९४८ को उक्त समारंभ बड़ी धूम-धाम से मनाया गया था। श्रीमती मुन्शी [चित्र नं. १] ने समारंभ का उद्घाटन करने के पश्चात् एक श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए, स्व० पंडित जी के भारतीय-संगीत के प्रति किये अद्वितीय एवं अमर कार्यों का गुणानुवाद किया और शिक्षा-क्षेत्र में संगीत के समावेश पर एक प्रभावशाली भाषण देते हुए श्री. भातखण्डे जी द्वारा आविष्कृत पद्धति को ही उपयुक्त बताया।

खां साः विलायत हुसैन खां (चित्र नं ४) ने भी अपने उच्च-उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा कि, पंडित जी ने विभिन्न-उपकरणों द्वारा घोर-परिश्रम करके एक अमृत-सदृश दुर्लभ-निधि संगीत-जगत को भेंट की है। उक्त प्रसंग पर सभी घरानों के श्रेष्ठ-कलाकारों ने स्मृति-स्वरूप अपने कला-पुष्प सादर समर्पित किये।

(चित्र नं ३-खां साः अजमत हुसैन; चित्र नं २- श्री. पन्नालाल घोष)

यंग इंडिया

रेकॉर्डस

नूतन वर्षाभिनंदन

★

हैद्राबाद विजयार्थ हुतात्मा झालेल्या वीरांना नैवेद्य
मर्द मराठी पोवाड्यांत
राष्ट्रशाहीर ग. द. दिघे [सांगली]
आपणासमोर उभे करीत आहेत.

TM 8548 8549 | हैद्राबाद विजय | भाग १ ते ४
TM 8550 | माऊलींचा | भाग १ व २
कु. ताराबाला
DA 11855 | माऊराया, माऊबीज भाऊ | आली दिवाळी

फिल्मसंगीत
रामजोशी — रामभक्त हनुमान
गोपाल मेका — हिप हिप हुर्रे.

YOUNG INDIA

धी नॅशनल ग्रामोफोन रेकॉर्ड मॅ. कं. लि.

नूतन वर्षाभिनंदन

पंढरीनाथ

ब्रिलियन्टाईन, आवळ्यांचे तेल, निलगिरी, आयडिन
मेण व कुंकू डबी, गंध वगैरे भरपूर स्टॉक

पंढरीनाथ डेपो मुंबई नं. २८

—: शोक-समाचार :—

(१)

'विहार' के वाचकों को यह जानकर दुःख होगा कि, उस्ताद फ़िदा हुसैन खां सा: का स्वर्गवास बदायूँ में ता. ५ सितंबर को, लग-भग ६६ वर्ष की आयु में हो गया। खां सा: लग-भग १५ दिन बीमार रहे थे। आप भारत-वर्ष के प्रसिद्ध कलाकारों में से थे। आपने अपनी आयु का अधिकतः भाग रामपुर तथा बड़ौदा जैसे यशस्वी दरबारों में व्यतीत किया था। आप ग्वालियर के हद्दू-हस्सू खां के घराने के लोगों में से थे और उन्हीं की गायकी गाते थे; तथा उसे अभी तक कायम रखा। अवश्य ही समस्त संगीत-प्रेमी उन्हें सदैव याद करेंगे।

आपके दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र उ. निसार हुसैन खां सा: जो अपने ख्याल और तराने के लिये हिंदुस्तान-भर में प्रसिद्ध हैं; तथा दूसरे अहमद हुसैन खां हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि, वह उनको इतना बड़ा वियोग सहन करने की शक्ति दे।

यद्यपि, बड़ौदा, कानपुर, रामपुर और बदायूँ में उनके सैकड़ों शिष्य मौजूद हैं; फिर भी उनकी मृत्यु के कारण, संगीत-जगत में वह कलात्मक क़ीमती रत्न छीन लिया गया है, जिसको अब हम कभी न पा सकेंगे।

(२)

कानपुर के सुप्रसिद्ध और वयो-वृद्ध गायक, पं. नन्हू भाई उर्फ नारायण राव चोटीवाले, तिलंग) की मृत्युपर कानपुर संगीत-समाज ने ३ अक्टूबर को एक शोक-प्रस्ताव पास किया। श्री. नन्हु भाई जी की इह-लोक यात्रा अनंत-चतुर्दशी के रोज़ दि. १७ सितंबर को समाप्त हुई। आप एक उच्च-कोटि के तपस्वी गायक थे। ईश्वर उन्हें सद्गति प्रदान करे।

संगीत कला विहार

द्वितीय-वर्ष] वार्षिक-शुल्क (चंदा) } ६-०-० वी. पी. बिना / ६-६-० वी.पी. सहित [अंक १ ला

★ अनुक्रमणिका ★

मुख-पृष्ठ तिरंगी चित्र—हिन्दुस्तानी संगीतके अदिगुरु "श्री स्वामी हरिदासजी."

चित्रकारः— श्री. अहिवासी (बम्बई): —सेठ कल्याणजी करमसी दामजी, के सौजन्यसे प्राप्त.

संपादकीय...प्रो. बी. आर. देवधर

कलाकारों के किस्से (गवयांच्या गोष्टी)

कलावंत व संगीत विद्यालयें (मराठी)

देशाच्या इतिहासास संगीत चीजांचें सहाय्य (मराठी)
प्रो वि. वी. जोशी बडोदा

हिन्दी भाषांतर—देशके इतिहास को संगीत चीजोंका सहाय्य. (रा. कि. भटनागर)

संगीताचे जादूगार-(मराठी) श्री. ना. र. मारूळकर

सरोद नवाज़ उस्ताद अल्लाउद्दीन खां— (हिन्दी)
प्रो. बी.-आर. देवधर

प्रसिद्ध सनई वादनकार श्री. गणपतराव वसईकर
(मराठी और हिन्दी) शिल्पकार—र. कृ. फडके.

संगीताचें शिक्षण व म्युझिक एज्यूकेशन कामिटी·
[मराठी और हिन्दी] श्री. वामनराव देशपांडे

भारतीय संगीत (हिन्दी) श्री. भवानी शंकर शुक्ल

सामाजिक सम्पत्ति के रूपमें नृत्यकला (हिन्दी)
(श्री. हेमा मणेलकर)

विविध-समाचार

नोटेशन इ.

संगीत—कला—विहार के प्रतिनिधि :—

पं. विनयचंद्र मौद्गल्य प्रिन्सिपल गांधर्व महा विद्यालय, ३२ प्रेम हाऊस, कॅनॉट सर्कस नई दिल्ली	प्रो. प्राणलाल शहा प्रिन्सिपल गांधर्व महा विद्यालय अहमदाबाद	पं. एस्. एस्. बोंडस संगीत—सदन सिव्हिल—लाइन्स कानपूर	श्री. भा. द. खांडेकर १८७ कसबा पेठ पूना २

लेखकों को सूचनायें

१-लेख कागज के एक ही ओर सुवाच्य अक्षरों में, दूर-दूर, केवल ½ फुल-स्केप साईज पर लिखकर भेजिये।

२-लेख की पसंदगी या नापसंदगी का जवाब पंदरह दिन के बाद लेखकों को मिल सकेगा।

३-पसंद किए हुए लेख यथावकाश प्रकाशित किये जायेंगे।

४ नापसंद लेख वापस मंगाने के लिये पोस्ट-टिकिट भेजिये।

विज्ञापन का शुल्क

कव्हर पेज नं. ४	रु. १२५-०-०
,, नं. २ और ३	रु. १००-०-०
संपूर्ण पृष्ठ	रू. ७५-०-०
अर्ध ,,	रू. ४०-०-०
पाव ,,	रू. २५-०-०
अर्धपाव पृष्ठ	रू. १५-०-०

प्रतिसमय

मुद्रित पृष्ठ ६" × ८" दो कॉलम में

कव्हर-पेज विज्ञापन के लिए व्यवस्थापक को लिखिये। विज्ञापन हमारे पास प्रति मास की १५ तारीख के पहिले पहुँचना चाहिये।

व्यवस्थापक:—संगीत कला विहार कार्यालय,
स्कूल ऑफ इंडियन म्यूज़िक,
फ्रेंच-ब्रिज-गिरगाँव, बम्बई

निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार कीजिये।

परीक्षा और दूसरा काम

प्रो. व. य. राजोपाध्ये,
१४८ हिंदू कॉलोनी,
दादर.

★

मासिक-पत्रिका

प्रो. बी. आर. देवधर,
स्कूल ऑफ इंडियन म्यूज़िक,
फ्रेंच ब्रिज गिरगाँव,
बम्बई. ४

देना बँक

देवकरण नानजी बँकिंग कं. लिमिटेड.

हेड ऑफिस बम्बई—४७ शाखायें.

अधिकृत मूल-धन		रु. १,००,००,०००
स्वीकृति-प्राप्त	,,	रु. ५०,००,०००
स्थायी कोष	,,	रु. १५,००,०००
कुल-ठेव [जमा] ३०-९-४८		रु. ८,७९,२७,०००
लेन-देन के निमित्त कुल पूँजी	,,	रु. १०,११,०९,०००
खातों की संख्या	,,	६४,७१८

शाखायें

बम्बई	**अहमदाबाद**	**नडियाद**
एल्फिन्स्टन सर्कल	गांधीरोड	**नासिक**
ठाकुरद्वार	मस्कती मार्केट	नासिकसिटी
सँढर्स्ट ब्रिज	मानेकचौक	नासिकरोड
कालबादेवी	देहलीचकला	**मद्रास**
माण्डवी	**अहमदनगर**	**नवसारी**
जवेरी बाजार	**अम्रेली**	**पूना**
भुलेश्वर	**आनंद**	रविवार पेठ
दादर	**वडोदा**	बुधवार पेठ
कुलाबा	**भावनगर**	कैम्प
शेअर बज़ार	**भरोच**	**पोरबन्दर**
माटुंगा	**वलसार**	**राजकोट**
शान्ता-क्रुज़	**बुरहानपुर**	**शोलापुर**
खार	सिटी	**सुरत**
विले पार्ले	मिल सब-ऑफिस	बुरहानपुरीभागोल
अन्धेरी	**धन्गाद्रा**	कनपीठ
	गोधरा	**वीरगांव**
	लोनावला	**वधवान कैम्प**
	मनमाड	**वालचन्द्रनगर**

प्रविनचंद बी. गांधी.
मॅनेजिंग डायरेक्टर

संपादक—प्रो. बी. आर. देवधर

सह-संपादक — श्री. वा.ह.देशपांडे व श्री. रामकिशोर भटनागर ...... व्यवस्थापक:—प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये

★ संपादकीय. ★

प्रो. वसंतराव राजोपाध्ये

एक वर्ष समाप्त होकर, इस मास से 'संगीत-कला-विहार' का द्वितीय-वर्ष आरंभ होता है। संगीत जैसे एक ही विषय से सम्बंधित 'मासिक' प्रकाशित करना कितना कठिन है, इसकी हमें पूर्ण कल्पना हो चुकी है। हमारे गुरुजी कै. पं. विष्णु दिगंबर सदैव कहा करते थे. "यदि पहिले ही समस्त साहाय्य संग्रहित करके किसी कार्य को आरंभ करने का निश्चय कर लिया जाय, तो जन्म-भर साहाय्य की बाट जोहते ही व्यतीत हो जायगा, अतः पहिले कार्य आरंभ करो।; फिर यदि वह योग्य सिद्ध हुआ, तो लोग अपने आप तुम्हें साहाय्य प्रदान करेंगे।" यह है, हमारे इस मासिक की हकीगत।

मूल-कल्पना:

कै. प. बालकृष्ण बुआने 'संगीत दर्पण' नाम का-एक मासिक पहिले आरंभ किया था; किन्तु वह एक वर्ष में ही बन्दहो गया। सन् १९०१ मे, जब कै. गु. पं. विष्णु दिगंबरजी ने लाहौर में **गांधर्व-महा विद्यालय** स्थापित किया, तो 'संगीतामृत-प्रवाह' नामक एक मासिक उन्हों ने सन् १९३० तक प्रकाशित किया! पंडीत जी की असामयिक मृत्यु के पश्चात्, गुरुवर्य के ही कार्य को चालू रखने के लिये १९३१ में '**गान्धर्व महा विद्यालय मण्डळ**' की स्थापना उनके शिष्योंने की। थोडे ही दिनों में इस संस्थाने पंडितजी के 'संगीत-शिक्षण' से संबंधीत कठिण कार्य को भली प्रकार करके. नाम कमाया और १९३९ में 'मासिक-प्रकाशन' की कल्पना मण्डल के सभासदों के मस्तिष्कों में मँडराने लगी; उसी वर्ष प्रा. वसन्तराव राजोपाध्ये ने मण्डल के समक्ष, मासिक की विस्तृत योजना प्रस्तुत की; इतने ही में द्वितीय महा-युद्ध शुरु हो गया, अतः वह योजना पिछड़ गई। मण्डल के प्रत्येक सम्मेलन में यह योजना सामने आती अवश्य, किन्तु कागज़-नियंत्रण, तथा छपाई की मँहगाई इत्यादि कारणों से वह कार्य-रूप मे न लाई जा सकी।

प्रो. शंकरराव व्यास

सन् १९४७ में 'गां. म. वि. मंडल' के "कै. पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर" की पुण्य-तिथि

समारम्भ के समय प्रा. वसन्तरावजी ने यह योजना फिर से सभासदों के समक्ष रखी। उस समय "न्यूज-प्रिन्ट" पर से नियंत्रण हटा ही था; अस्तु इस कार्य के संचालनार्थ तीन उत्साही सभासद, प्रा. भानुचरणकर कवि 'विहंग' व श्री. शं. वी. कान्हेरे और सम्मिलित हो गये। बस, प्रा. वसंतरावजीने इन तीनों को सहायता से विशेष लगन के साथ उस योजना को कार्य-रूप देना आरम्भ कर दिया।

श्री. शंकरराव गद्रे [आनंद]

प्रा. शंकरराव व्यासः—

उस समय के गा. म. वि. मण्डल के अध्यक्ष प्रा. शंकरराव व्यास की भी हार्दिक इच्छा थी कि' मण्डल की ओर से कोई 'मासिक' अवश्य प्रकाशित हो। प्रा. शंकरराव का स्वभाव, किसी बात में स्वयं आगुआ बन कर करने का न होने के कारण इन उत्साही सज्जनों को कार्य-भार संभालने के लिये तैयार देख कर, उन्होंने अपना कार्य-सूत्र अविलंब आरंभ कर दिया। तुरंत पत्रिकाए भेजकर उन्होंने इस कार्य के सम्बन्ध में मण्डल के समस्त सभासदों की सम्मति प्राप्त करली और मासिक की योजना की, छपी हुई पत्रिकायें व ग्राहकसबंधी विनंती पत्र समस्त सभासदों, तथा मण्डल के हितेच्छु और अन्य संगीत-क्षेत्रों के प्रसिद्ध व्यक्तियों के पास भेजे। बडेबड़े लोगों ने आशिर्वाद भेजे और मण्डल के सदस्य प्रचार द्वारा ग्राहक एकत्रित करने लगे।

श्री. नारायणराव व्यास

प्रा. शंकरराव गद्रेः—

हमारे सभासदोंने किस प्रकार इस मासिक के लिये साहाय्य प्राप्त की, उसकी साक्षात् कल्पना के रूप में एक उदाहरण देना उचित होगा। प्रा. शं. द. गद्रे पिछले २५-३० वर्षों से आनन्द [गुजरात] में चारोत्तर एज्युकेशन सोसायटी में संगीतशिक्षक का काम कर रहे हैं। वहाँ रहकर, आप अपने प्रशंसनीय कार्यों द्वारा, वहाँ के निवासियों के प्रिय-पात्र बन गये हैं। वे शीघ्र ही सेवा-निवृत्त होने वाले थे, अतः वहाँ के निवासी उनका सत्कार कर के एक थैली उनको भेंट करने के विचार में थे. तथा इस प्रकार की सूचना उन्होंने गद्रे साः को भी दी थी। इतने ही में, प्रा. गद्रे पर मण्डल के अध्यक्ष द्वारा प्रेषित "मासिक' की योजना का भार आ पड़ा। प्रा. गद्रेने सोचा कि, अपने स्वयं के सन्मान की अपेक्षा, इस अवसर का यदि मण्डल के प्रति कुछ उपयोग हो सके, तो अधिक अच्छा है। अस्तु, उन्होंने आनंद के नागरिकों से निवेदन की कि; उन पर अपना अपार-प्रेम व्यक्त करने के लिये वे जो उनका सन्मान करने वाले हैं, उस अवसर पर दी जाने वाली निधि जमा कर के, यदि उसे मण्डल की ओर से निकलने वाले 'मासिक' के उपयोगार्थ प्रदान कर दी जाय, तो वह उन के मण्डल के इस महत्वशाली कार्य में अमूल्य सहायता होगी और उसे ही वे अपना सबसे बड़ा सत्कार समझेंगे। इस प्रकार प्रा. गद्रेने २५०० रु. से भी अधिक निधी एकत्रित कर के मण्डल को दे दिया।

श्री. डी. डी. पलुस्कर

अन्य प्रचारकः—

पं. नारायणराव व्यास व प्रा. बापूराव (डी.वी.) पलुस्कर दोनों अपने गायन-व्यवसाय के कारण प्रायः दौरे पर ही रहते हैं। उन्होंने अपने साथ इस मासिक के अंक रख कर ग्राहक बनाना आरंभ कर दिया और पटियाला महाराज के भाई कु. मृगेन्द्र सिंहजी के पास से लेख

श्री. बापूराव गोखले

श्री. भानु चरणकर

...श्री प्राप्त किये।

'महाराष्ट्र संगीत-विद्यालय' के प्रिन्सिपल श्री. बाबूराव गोखले, 'कानपुर संगीत-समाज' के प्रा. शंकरराव बोडस, अहमदाबाद 'गान्धर्व महाविद्यालय' के प्रिन्सिपल प्रा. रावजी भाइ पटेल, व प्रा. प्राणलाल शहा; तथा मण्डल के अन्तर्गत अन्य सब संस्थाओं के चालकों ने ग्राहक बनाकर मासिक का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। अहमदाबाद के एक संगीत-शिक्षक रावसाहब महाजन ने भी सब मिलाकर कोई ६०० रु. 'कला-विहार' के लिये सहायतार्थ एकत्रित कर के भेजे। वास्तव में, इस कार्य में मण्डल के प्रायः सभी सभासदों ने स्वयं हो कर यथा संभव हाथ बँटाया है; किन्तु स्थलाभाव के कारण उन सब के नाम देने कठिन है।

नितान्त, प्रा. शंकरराव व नारायणराव व्यास, प्रा. रामभाऊ अष्टेकर तथा प्रा. वसन्तराव राजोपाध्ये के प्रयत्नों से प्राप्त विज्ञापन, कुछ आवश्यक लेख और महा पुरुषों के आशिर्वाद, इत्यादि से सुसज्जित होकर नवम्बर १९४७ में 'संगीत-कला-विहार' का पहिला अंक प्रकाशित हुआ।

मेरी-भूमिकाः—

आज कल की महगाई के दिनों में कोई मासिक प्रकाशित करना कितना कठिन कार्य है, यह मुझे अपने अनकों मित्रों के निजी अनुभवों द्वारा भली प्रकार ज्ञात होने से संपूर्ण सामुग्री प्राप्त हुए बिना ही प्रकाशित मासिक चालू रह सकने की अपनी शंका के कारण मैंने इस

श्री. कवि विहंग

श्री. रामकिशोर भटनागर

पहिले की धूम-धाम की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। मुझे यह भली प्रकार ज्ञात था कि, प्रा. शंकरराव व्यास यद्यपि धीरे धीरे और स्वयं पीछे-पीछे ही रहकर अपने आप को प्रकाश में न लाते हुए भी महत्त्व-पूर्ण एवं ज़िम्मे दारी के कार्य करने वाले हैं। उनका मत था कि, इस मासिक का उत्तरदायित्व मैं अपने ऊपर लूँ; किन्तु मैंने वह अस्वीकार कर दिया। पहिला अंक प्रकाशित होते ही उसका जनता में, कल्पना से भी कहीं अधिक स्वागत देखकर प्रा. शंकरराव व्यास को इस मासिक की ज़िम्मेदारी अधिक प्रतीत होने लगी। दिसम्बर १९४७ में वे मेरे पास आये और कहने लगे, "यह मासिक 'गा. म. वि. मण्डल' का है और हम जिस महान पुरुष के नामपर कार्य करते हैं उसी महा पुरुष के प्रत्यक्ष-शिष्यों की तन्मयता की परीक्षा का समय आ गया है। अतः अध्यक्ष के नाते मैं, इस मासिक के संपादक के उत्तर दायित्व का भार आप पर डालता हूँ।" के. पंडित जी के नाम के कारण मुझे वह स्वीकार करना ही पड़ा; फिर भी जून १९४८ तक ग्राहक बनाना अथवा मासिक के लिये लेख लिखने के अतिरिक्त मैं कुछ और नहीं करता था। प्रा. शंकरराव व्यास व प्रा. वसन्त राव राजोपाध्ये, ये दोनों ही समस्त कार्य करते थे। तत्पश्चात्, गत मई में, हुए मासिक के द्वैवार्षिक सम्मेलन में मण्डल के सब सभासदों ने यह निश्चय किया कि, मासिक का पूर्ण उत्तरदायित्व मैं संभालूँ और मण्डल की परीक्षासंबंधी कार्य, प्रांतिक समितियाँ बनाकर

श्री. आर. एम. कुमठाकर

श्री. जी. के. निमकर

उनमें विभाजित कर दिया जावे। अस्तु, एक तो लिखने की कुछ विशेष आदत नहीं; दूसरे उस प्रकार के कार्य का तनिक भी अनुभव नहीं; ऐसी स्थिति में, मुझे इस वर्ष की जुलाई से इस मासिक का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना पड़ा।

आर्थिक परिस्थिती :—

मण्डल के सभासदों ने अपने भरसक प्रयत्न द्वारा ३५०० रु. विशेष सहाय्य व २००० रु. शुल्क के रूप में एकत्रित किये। वाचकों को यह धन–राशि बहुत अधिक प्रतीत होना संभव है; किन्तु मासिक प्रत्यक्ष रूप से निकलने लगते ही. वह पूंजी ऐसे घटने लगी जैसे पूर्णिमा का चांद और केवल ४–५ महिने में ही वह सपरिश्रम एकत्रित धन–राशि समाप्त भी हो गई,। नाशिक में हुई हमारी सर्व–साधारण सभा में प्रा. शंकरराव व्यासजीने जिस समय मासिक का हिसाब प्रस्तुत किया तो सबको ऐसा ही प्रतीत हुआ कि, अब मासिक बन्द हो जायगा और आगे इस का चालू रखना भी संभव नहीं। किन्तु सभी सभासदों ने पुनः कमर कस कर मासिक स्थगित न करना ही ठहराया और हर एक ने फिर अपना–अपना काम आरंभ कर दिया और कुछ नये ग्राहक बनाने लगे।

आज भी हमारी परिस्थिति संतोष–जनक तो नहीं हो पाई है। किन्तु संगीत–कला विहार ने अपना एक वर्ष पूरा करके अब दूसरे वर्ष में पदार्पण किया है, अतः हमारे वाचकों एवं विज्ञापन–दाता ओं में विश्वास उत्पन्न हो कर, हमें अधिकाधिक सहायता मिलती जा रही है।

मासिक का उद्देश्य एवं उसकी दूरदर्शिता:...

संगीत–कला विहार का मुख्य उद्देश्य संगीत–विद्या का प्रसार है। समस्त व्यवसाय के लोगों के मासिक हैं; उन में संघटन है; उनके वार्षिक सम्मेलन होते हैं और उनमें व्यवसाय सम्बंधी विषयों पर चर्चा एवं निबंध-वाचन होता है; किन्तु हमारे संगीत–क्षेत्र में आजतक बिलकुल भी संघटन नहीं है। विभिन्न घरानों के झगड़े और आपसी वैमनस्य अभी तक विद्यमान् हैं। एक शहर के समस्त संगीतकार वर्ष में एक बार भी एकत्रित नहीं होते; कलकत्ता अथवा इलाहाबाद की परिषदों में ही कलाकार एकत्रित होते हैं; किन्तु अपना कार्य समाप्त करके, जो एक बार वहां से लौटे कि, फिर उन्हीं स्थानों पर मिलने तक, एक ही शहर या गाँव में रहने वाले गवैये एक दूसरे से नहीं बोलते। ऐसे अनेकों उदाहरण मुझे ज्ञात हैं। समय शीघ्रता से बदल रहा है। संगीत विषय पर, अनेकों ग्रन्थ लिखे जा चुकने के कारण, सामान्य सुशिक्षित समाज में, संगीत–कला का प्रसार होने लगा है। बम्बई व कलकत्ता जैसी जगहों पर ऐसे श्रोता भी प्रायः मिलते हैं; जिन्हें गवैयों की अपेक्षा गायन-शास्त्र का अधिक ज्ञान है। ऐसे श्रोता स्वभावतः मार्मिक टीका, इत्यादि करते हुए पाये जाते हैं। आज से केवल १५ वर्ष पूर्व ही जिन कलाकारों की कला में कोई बाल भर भी अन्तर या दोष निकालने का साहस तक नहीं कर पाता था, वहां समाज आज अमुक की कला शास्त्र-शुद्ध थी या नहीं, यह निःशंक होकर टीकात्मक-संशय करने का साहस रखता है। ऐसे कठिन समय पर ही संगीत-क्षेत्र भर के समस्त लोगों को एकत्रित होकर अपने विषय की चर्चा करनी चाहिये, जिस के लिये संघटन दृढ़ संघटन-अनिवार्य है। बस, इसी लिये तो, इस विषय पर एक संघटन–दृढ संघटन–ही नहीं वरन् अनेकों मासिक प्रकाशित होने चाहिये और फिर उन सब में संगीत की सांगोपांग चर्चा होनी ही चाहिये। संगीत-कला-विहार केवल इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रकाशित किया जारहा है यद्यपि यह **'गान्धर्व महा–विद्यालय–मण्डल'** का प्रकाशन है, फिर भी यह किसी पक्ष–विशेष का नहीं। यह मासिक संगीत–कला के निमित्त है; तथा जो लोग इस व्यवसाय को करते हैं अथवा कला–भक्त हैं, यह उन्हीं के लिये है। बस, बात इतनी कि, ऐसे समय पर जब कोई और इस प्रकार के उत्तर दायित्व को स्वीकार नहीं करता था, **'गांधर्व महा विद्यालय**

श्री. के. डी. गद्रे

मण्डल ' ने वह स्वीकार किया। इस मासिक का उत्तर दायित्व पूर्णतः मण्डल के सभासदों ने ही आज तक संभाला था; किन्तु हमारी आज तक की निष्पक्ष-नीति को देखकर अन्य सब व्यवसाय-बन्धु भी हमारी सहाय्यके लिये यथाशक्ति सदैव प्रस्तुत रहते है; यह एक आनन्द की बात हैं।

ग्वालियर के पं राजाभैय्या पूछवाले व उनके अनेकों शिष्य कला-विहार के आरंभ से ही ग्राहक है। श्री. हीराबाई बडोदे-कर, श्री. गंगूबाई हनगल, श्री. मोगूबाई कुर्डीकर व अन्य कई प्रसिद्ध गाइकायें हमारी ग्राहक हैं। इतना ही नही वे कला-विहार के अंक संगीत-रसिकों को दिखाकर, विहार का प्रसार करती हैं। यह जानकर वाचकों को आनंद होगा, ऐसी हम आशा करते हैं। पं. बालकृष्णा बुआ कपिलेश्वरी, ख़ांसाहब विलायत हुसैन व अज़मत हुसैन इत्यादि कलाकार विहार को बड़ी अस्था-से पढ़ते हैं; तथा इन्होंने यथा-संभव लेख भी देने का अश्वासन भी दिया है। दिल्ली के उस्ताद चाँद ख़ां के लेख भी विहार में शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

उपयुक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि, विभिन्न-प्रांतों के लोगों का ध्यान विहार की ओर धीरे-धीरे आकर्षित हो चला है; तथा इससे हमें भी सन्तोष होने के कारण हमारी पूर्ण आशा है कि, विहार का भविष्य अवश्य उज्ज्वल होगा।

हमारे हित-चिंतकः—

श्री. शंकरराव व वामनराव देशपांडे, श्री. मोहनराव पालेकर, तथा श्री. जी. के निमकर-इन सज्जनों की सलाह व सक्रिय-सहायता कला-विहार को नित्य मिलरही है। अन्य समस्त मराठी व अंग्रेज़ी पत्रकार, अपने इस छोटे से बन्धु के प्रति विशेष सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं; अतः समय-समय पर कई संपादकों के व्दारा हमें सलाह व प्रसिद्धि प्राप्त होती है।

हमारे लेखकः—

प्रसिद्ध साहित्यकार प्रा. चि. वि. जोशी (बड़ोदा), श्री. का. न. कलकर (पूना), शिल्प-कार र. कृ. फड़के (धार) व प्रा. न. र. पाठक (बम्बई) के अतिरिक्त पं. के. गु. इंगले (इचलकरंजी), प्रा. ग. ह. रानडे (पूना) श्री. वसंतराव देसाई (रत्नागिरी), श्री. स. कृ. जोशी (सतारा), पं. के. ना. मटंगे (सतारा), श्री. प्राणलाल शाह (अहमदाबाद), श्री. मकरंद बादशाह व श्री. साधुराम योघ (अहमदाबाद), डॉ. हरिप्रसाद देसाई [अह-मदाबाद], श्री. महेश नारायण सक्सेना [इलाहाबाद], श्री. शं. श्री. बोडस [कानपुर], पं. द. के. जोशी [पंढरपूर], श्री. जी. के. जंगम [बम्बई], पं. ना. द. ताम्बे [पूना], प्रा. द. वि. पलुस्कर [पूना], श्री. रसिक लाल शाह [बम्बई] श्री. ज. द. पत्की [वर्धा], श्री. वि. कृ. जोगलेकर [बम्बई], पं. दिलीप-चन्द्र वेदी [दिल्ली], प्रा. विनयचन्द्र मौद्गल्य [दिल्ली] पं. बुद्ध देव [हरिद्वार], कुंवर मृगेन्द्र सिंहजी [पटियाला], श्री. शं. ल. सप्रे [नागपूर], कवि 'विहंग' [कऱ्हाड], श्री. शं. वि. कान्हेरे व श्री. भानुदासकर [बम्बई], श्री. सी. व्ही. पंतवैद्य एवं श्री. नै. प्र. देसाई [इन्दौर], श्री. पंचानन पाठक [इलाहाबाद], श्री. सिद्धेश्वर अवस्थी (कानपूर), श्री. प्रल्हाद गानू (बम्बई), मास्टर कृष्णाराव [पूना,] श्री. रा. न. कीर्तने, श्री. ए. आर. स्वर मंडले श्री. जी. के. नीमकर, [बम्बई], श्री. रामकिशोर भटनागर [बम्बई], श्री. के. जी. मजुमदार [देवास] श्री. भा. द. खांडेकर (पूना), पं. गोविन्दराव देवराव गुरुजी (अह-मदाबाद) श्री. द. म. मारूलकर [पूना] इन सब सज्जनों ने तथा अन्य कई महानु भावोंने हमें समय-समय पर अपने बहुमुल्य -लेखक, नोटेशन एवं स्मृतियां बिना किसी मूल्य के देकर असीम सहायता प्रदान की है; किन्तु स्थलाभाव के कारण हम उन सबके नाम यहाँ देने में असमर्थ हैं। अतः आशा है, वे क्षमा करेंगे।

कला-विहार, अपने विशेष फ़ोटोग्राफ़र श्री आर. एस. कुमठाकर का, जिन्होंने सदैव फ़ोटो-संबंधी सारा कार्य किया है, तथा उच्च-कोटि के चित्रकारों (श्री. पारसनीस, श्री. मुलगाँव-कर, श्री. हत्तंगड़ी, व श्री. बापुराव आपटे) के सदैव कृतज्ञ रहेगा; क्योंकि प्रायः सभीने बिना किसी मूल्य के ही ' विहार ' का सारा काम किया है। गजानन प्रेस (दादर) के मालिक श्री. बापूरावसाहब पटवर्धन एवं व्यवस्थापक श्री. शामराव, तथा पब्लिसिटी प्रिन्टिंग प्रेस [गिरगाँव] के मालिक एवं व्यवस्थापक डॉ. तेंडुलकर और श्रीमती मालती बाई तेंडुलकर ने जो मुद्रण संबंधी सुविधायें, कला-विहार के लिये विशेषतः प्रदान की हैं, इन सब के लिये हम उन के आभारी हैं।

अन्त में, संगीत-कला-विहार के समस्त पाल कों, ग्राहकों, लेखकों, विज्ञापन-दाताओं, विशेष आर्थिक सहाय्य प्रदान-कर्ता ओं, और उन सब महानुभावों की जिन्होंने गत एक वर्ष तक 'विहार' के प्रति भरपूर प्रयत्न व परिश्रम किया, मैं 'विहार' की ओर से धन्यवाद देकर यह विस्तृत-वित्ररण समाप्त करता हूँ। बस, आप सब से यही नम्र निवेदन है कि, भविष्य में भी 'विहार' आपका कृपा-पात्र बना रहे। जिससे संगीत रसिकों की अधिका-धिक सेवा करने का हमे सौभाग्य प्राप्त हो।

प्रो. बी. आर्. देवधर—संपादक.

संगीत-कला-विहार-कार्यालय

संगीत-शिक्षण और म्युज़िक-एज्युकेशन कमिटी

(लेखकः—श्री वामनराव देशपांडे, G.D.A., R. A ऑडिटर बम्बई.)

खेर मंत्री-मण्डल द्वारा "म्युज़िक एज्युकेशन कमिटी" नियुक्त होजाने के कारण, आजकाल संगीत-प्रेमी जनता में 'संगीत शिक्षण' ही बस, चर्चा का विषय बन गया है। पंत-प्रधान श्री. बाला साः खेर की संगीत के प्रति आस्था सब को ज्ञातही हैं। उनकी चुनी हुई कमिटी भी बिल्कुल योग्य है, यही कहना चाहिये। कमिटी के अध्यक्ष प्रि. कटार, सैक्रेटरी श्री. गणपतरावजी राजे, तथा उसी प्रकार श्री. शंकर रावजी देशपांडे व डॉ. व्यास जैसे विद्वान; तथा विचार शील एवं उत्साही संगीत व्यासंगी लोग, प्रो. देवधर, मास्टर कृष्णराव, पं. विनायकराव पटवर्धन इत्यादिक संगीत-अध्यापन-क्षेत्र के अधिकारी गण, सब की योजना कमिटी के सदस्य के रूप में की होने के कारण, संगीत-प्रेमी जनता में एक प्रकार का कुतुहल निर्माण होकर, संगीत के उज्ज्वल भविष्य के विषय में आशा-किरण झलकने लगी है, इसमें कोई शंका नहीं। कमिटी ने भी अपना काम निरंतर एव लगन के साथ आरंभ करके आजतक अनेकों संगीत-संबंधी लोगों की लिखित व जुबानी साक्षी लेली है। शेष कार्य भी अविश्रांत चालू होने के कारण आशा है कि, वह शीघ्र ही पूरा हो जायगा।

प्रस्तुत लेख के लेखकने भी, उक्त कमिटी के पास अपनी लिखित साक्षी भेजी थी और गत अक्टूबर में उनकी जुबानी साक्षी भी-बम्बई में ले गई थी। यद्यपि, लेखकने अनेकों सुचनायें (लिखित एवं जुबानी) कमिटी के सामने सादर प्रस्तुत की थीं; फिर भी यह विषय सार्वजनिक-महत्व का और संगीत-प्रेमी जनता की दिल चस्पी का होने के कारण, कुछ मुद्दे स्वतंत्र व प्रकट रूप से वाचकों के समक्ष रखने की इच्छा से यहाँ दिये जाते हैं।

संगीत का शालेय व विश्वविद्यालयीन शिक्षण :—

खेर मंत्री-मण्डल द्वारा इस कमिटी की नियुक्ति होने के कारण, सब काम नियमानुसार समाप्त हो जाने के पश्चात्, वह अपनी रिपोर्ट पेश करेगी और उसकी शिफ़ारश के अनुसार, प्राथमिक एवं दुय्यम शालाओं में संगीत-शिक्षण शुरू होगा। वैसे ही बम्बई-विश्व-विद्यालय ने भी एक कमिटी नियुक्त की है और शीघ्र ही कॉलेज के शिक्षण-क्रम में संगीत का भी अन्तर्भाव होने वाला है। हाल ही में स्थापित हुआ "पूना विद्या-पीठ" भी संगीत के विषय में उदासीन न रहेगा। इतना ही नहीं, संभव है कि, पूना विद्या-पीठ की स्वतंत्र विशेषता, कदाचित संगीत-शिक्षण ही रहे। इस प्रकार यदि विचार किया, तो हमारे भारतीय संगीत के अवश्य सुदिन आने वाले हैं, ऐसा सुख-स्वप्न, यदि हम देखने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं।

परन्तु, हमारे भारतीय-संगीत की प्रकृति ही ऐसी विलक्षण है कि, इस समस्त उत्साह, श्रम एवं धन का सदुपयोग होगा या नहीं यह शंका उत्पन्न होकर तथा कहीं इससे कोई हानिकारक बाधा खड़ी न हो जाय, यह डर लगता है; क्यों कि इसके लिये कारण अनेक हैं।

प्रचलित संगीत-शाला ओं व अन्य संगीत संस्था ओं में संगीत-शिक्षणप्राप्त करके निकले हुए पदवी-धारि यों को देखकर बड़ी ही निराशा होती है। आजतक के, इस प्रकार के संगीत-शिक्षण का इतिहास दोहराया जाय, तो यह स्पष्ट हो सकेगा कि, उसमें से सहसा कला की संपत्ति के अभाव को पूरा करने वाला तो कोई हुआ ही नहीं; किन्तु घन्टे-भर जिसका गाना सुनकर प्रशंसाके रूपमें सिर हिलाया जाय ऐसी सामान्य योग्यता के लोग भी वे नहीं बना पाये हैं। इसके विपरीत इन लोगों में गाने की शास्त्रीय-चर्चा ही केवल भरपूर प्रमाण में की जा सकती है। शास्त्रीय-चर्चा, चिकित्सा, राग-नियमों का ज्ञान श्रुति-स्वर चर्चा, अनेकों राग कण्ठगत करना; इत्यादि बातों में उनकी तैयारी इतनी होने पर भी, उन्हें वास्तविक गायन का अभी तक ज्ञान ही नहीं हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है।

यद्यपि रसिकता का उन्हें स्पर्श भी नहीं हो पाता, तो भी उनकी भावनायें, लेख व टीका; इत्यादि पढ़कर, वे संगीत के मित्र हैं अथवा शत्रु, यह स्पष्ट नहीं होता।

उपर्युक्त परिस्थिति, इतनी स्पष्ट है कि, उसकी सच्चाई को सिद्ध करने के लिये, किसी प्रकार के प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं है। लेखकने स्वयं ऐसे अनेकों पदवीधारियों को सुना है कि, यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहता कि, उन लोगों को संगीत का

शिक्षण प्राप्त ही न हुआ होता, तो अच्छा था। निदान, संगीत शत्रुओं की संख्या तो अवश्य कम होगई होती। एक दो महिने पहिले नागपुर रेडियो के अधिकारीने मुझसे बड़ी कड़वी भाषा में कहा, "ये संगीत के पदवी धर। उन्होंने बड़ी–बड़ी परीक्षायें पासकी हैं। कोई 'विशारद' है, तो कोई 'अलंकार'। कोई इससे भी बढ़कर 'डॉक्टरेट' का अभ्यास कर रहा है। किन्तु, रेडियो पर माईक के सामने अच्छी तरह से ५ मिनिट गाना भी उन्हें खुद को मुश्किल हो जाता है। बम्बई के रेडियो–स्टेशन पर जिन्हें हमने स्टूडिओ के आस–पास तक न फटकने दिया होता उन्हें; यहाँ बड़े गवैये कहकर हमें ही प्रसिद्ध करना पड़ती है।"

गायन के कारखाने : —

यह सब अनुभव प्राप्त हो चुकने पर हमारे संगीत का शिक्षण किस प्रकार का हो—निदान, वह कैसा न हो? इस विषयमें कुछ सूचित करना आवश्यक हो गया है।

परसों ही मेरे एक मित्र नासिक से यहाँ आये थे। उन्हें मैंने जब सहज ही कमिटी की प्रश्न–पत्रिका दिखाई, तो वे हँस कर कहने लगे "अब गायन कारखाने में डालकर उसमें से समस्त एक ही छाप की हजारों प्रतियाँ (models) बाहर पदार्पण करेंगी।"

एक और महत्व–पूर्ण बात ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि आजके पदवी धरों अथवा शालेय–शिक्षण प्राप्त विद्यार्थियों के प्रायः समस्त गुरु अथवा शिक्षक स्वयं शालेय न पा सके और उन्हें पूर्व–कालीन गुरु–मुख से विद्या–दान मिला था। तभी तो विद्यार्थियों की यह दशा है। फिर जब आजके पदवी धर स्वयं शिक्षक बने तो उनके विद्यार्थी कैसा गायेंगे और इस प्रकार निर्मित संगीतोपनीविशका क्या हाल होगा; इस सब की बस कल्पना–मात्र ही करलेना काफी है; क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप में अत्यन्त ही भयानक दृश्य होगा।

उपर दिया हुआ संगीत–क्षेत्रका सारा पूर्व–इतिहास व अनुभव ध्यान में रखकर, कमिटि को इस संबंध में बड़ाही साव धानी से कदम उठाना चाहिये। संगीत के "वैयाकरणी" "शास्त्री" या "पंडित" निर्माण करना कमिटी का उद्देश्य नहीं होना चाहिये; क्यों कि सरकारने भी यही बात रखी है। अतः, संगीत का सार्वजनिक शिक्षण शुरू करने के साथ ही शास्त्रीय चिकित्सा, नियम व सिद्धान्त, इत्यादि पर बहुत अधिक जोर न देकर, लोगों में उच्च–संगीत के प्रति केवल अभिरुचि कैसे उत्पन्न हो वह किस प्रकार बढ़े, इसी एक बात की ओर अपना पूरा–पूरा ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है।

एक और बात यहाँ कहदेना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि, मेरा स्वयं, इस शालेय एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षण पर तनिक भी विश्वास नहीं है। मुझे खुद, यह भी मालूम है कि, मैं यह लिखकर केवल अपने अकेले के ही मत का प्रदर्शन नहीं कर रहा हूँ; बल्कि समस्त संगीत–प्रेमी, व्यासंगी और व्यवसायिक लोगों के मत का भी प्रदर्शन कर रहा हूँ। इस विषय पर मैंने अनेकों सामान्य संगीत–प्रेमियों, व अधिकारीयों से बराबर चर्चा करते रहने पर भी, इसके विरुद्ध मत देने वाला, मुझे खुद को तो एक भी गृहस्थ नहीं मिला। इतना ही नहीं वरन् उपर्युक्त मत प्रदर्शित करते समय, मैं उन्हीं का मत प्रकट कर रहा हूँ, इसका मुझे विश्वास है।

'गुरु-मुखी' पद्धति पर ही ज़ोर दें:—

सामुहिक रूप से शालेय–शिक्षण की यह स्थिति सामने रखकर यह स्पष्ट है कि, संगीत के पुनरुज्जीवन के लिये कुछ और ही उपाय निकालना चाहिये। वह यह कि, प्राचीन–पद्धति में ही आवश्यक परिवर्तन किया जाय। बड़े–बड़े गायक लोग शालेय–संगीत–शिक्षण–क्रम से तैयार नहीं हुए। वे पुरातनसे चले आये गुरु–मुखी पद्धति से ही इतने बड़े बने हैं। अतः आज के पश्चात् भी, यदि संगीत–कला को जीवित रखना है, तो इस 'गुरु–मुखी' पद्धति का ही आश्रय लेना चाहिये। यदि ऐसा किया गया, तभी संगीत–नौका का उद्धार हो सकता है; अन्यथा नहीं।

"राज गायक"

सरकार द्वारा 'गुरु–मुखी' पद्धति का ही प्रयोग किया जाना चाहिये। परन्तु, वह कैसे, यह प्रश्न उपस्थित होगा? इसके लिये मेरी पहिली सूचना यह है कि, बम्बई–प्रान्त के गवर्नर को अपने परिवार में दस–बारह श्रेष्ठ–कोटि के, घरानेदार व नामवंत गायकों को 'दरबार–गायक' या 'राज–गायक' के रूप में, नियुक्त करना चाहिये। पहिले के गवर्नर लोगों के समय सरकारी–बैन्ड होते थे और उस में के लोगों को रहने और सीखने के लिये स्वतंत्र बंगले भी थे। आज भी वही रवैया चला आरहा है, ऐसी खबर लगी है। इस पुराने अंग्रेज़ी बैन्ड की अब कोई आवश्यकता

[शेष पृष्ठ ३० पर]

देश के इतिहास को संगीत चीज़ों का साहाय्य

(अनुवादकः—प्रो. चिंतामण विनायक जोशी. एम. ए, बड़ोदा)

मैं गत वर्ष, एक इतिहास–परिषद के लिये पटना गया था 'बनारस हिन्दु विश्वपीठ' के एक अध्यापक प्रो. राम कुमार चौबे, एम. ए., एल. एल. बी. ने 'हिन्दुस्तान के इतिहास की पुनर्रचना में उस्तादों की (खानदानी) चीज़ों का साहाय्य, इस विषयपर एक अँग्रेज़ी निबंध पढ़ा था । इस विचार से कि, वह 'विहान' के वाचकों को पसन्द आयेगा, उसका सारांश यहाँ दिया जा रहा है ।

प्रो. चौबे ने कहा कि, उस्तादी (ख़ानदानी) चीज़ों की ओर इतिहास–कारों ने ध्यान देकर, इतिहास के पुनर्वलोकन में उनका उपयोग नहीं किया, यह एक आश्चर्य की बात है। इस ग़फ़लत का कारण स्पष्ट है। प्रायः वे चीज़ें अलिखित हैं और वे उस्ताद लोग अपने चेलों को मुख–परम्परा द्वारा सिखाते आये हैं। वे चीज़ें केवल संगीत की दृष्टि से ही रची गई हैं, अतः उनमें कल्पना की भरमार अथवा अलंकारों की शोभा विशेष रूप से दिखाई नहीं देती । बहुत सी चीज़ें अशिष्ट अथवा अशुद्ध; तथा केवल गाने की दृष्टि से ही रची गई होने के कारण वे छन्द–शास्त्र की ओर ध्यान न देकर, बनाई गई हैं; यहाँ तक कि, उनका कभी-कभी तो कोई अर्थ ही नहीं निकलता ! अस्तु, साहित्यिकों में भी इन चीज़ों के प्रति कुछ विशेष दिलचस्पी उत्पन्न न हुई। वे चीज़ें भिन्न-भिन्न राग-रागनियों की होने के कारण ध्रुपद, ख्याल, टप्पा और ठुमरी इत्यादि, संज्ञाओं के अन्तर्गत गाई जाती हैं और इन प्राचीन नामों के महत्व का इतिहास-ज्ञान की पूर्ति से सम्बंध होने के कारण, वे ही इन चीज़ों का मूल्य हैं। उनके अभ्यास, व अध्ययन से, अनेकों अज्ञात महाव्यक्ति, व अज्ञात प्रसंग इत्यादि पर प्रकाश पड़कर, विभिन्न वादों का पोषक–पुरावा मिल सकता है। सामाजिक इतिहास की तो भरपूर जानकारी इन चीज़ों में मिलती ही है; किन्तु भाषा व शब्दों की दृष्टि से व्युत्पत्ति-शास्त्र को भी बहुमूल्य साहायता मिलेगी।

इन चीज़ों का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। पुरानी से पुरानी चीज़ों का खिलजी घराने तक पता लगता है। कुछ तो बहादुर शाह के कीर्ति-काल के समय रची हुई मालूम होती हैं। मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र और मुग़ल प्रान्तों का उनमें उल्लेख मिलता है। उनमें केवल दरबार, बादशाह, व सरदार का ही उल्लेख नहीं है; वरन् सामान्य लोगों के जीवन का वर्णन भी उनमें मिलता है, उदाहरणार्थ–ईद, बकर ईद, दसहरा होली, जश्न, फ़तह, राज्यारोहण, जन्मोत्सव, उर्स, तथा पीरों के उत्सव इत्यादि पर अनेकों चीज़ें हैं। विभिन्न गायनसंबंधी वाद्य, खाद्य, पेय, रोशनी और आतिशबाज़ी के प्रकारों का इन चीज़ों में निर्देश किया गया है।

इन चीज़ों में बारंबार आने वाले नाम प्रायः अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, शाह आलम, आज़मशाह, सिकंदरशाह, सलीमशाह, सूर, वाजिदअलीशाह, छत्रपति राजाराम, राजाराम बघेला, सुलेमानशाह, बाजबहादुर, रूपमती और बीरबल हैं। पीर अथवा साधुओं के नाम भी आगे चलकर इनमें पाये जाते हैं। कुतुबुद्दीन बख़्त्यार काकी, फ़रीदगंज शकर, निज़ामुद्दीन औलिया, नासिरुद्दीन चिराग दहल्वी, घोषे आज़म, तानसेन, सदारंग, अदारंग, बिलासख़ान, सुजनख़ान, रसूल बख़्श, खुसरो इत्यादि गायकों के नाम भी इन चीज़ों में प्रायः गुँथे हुए मिलते हैं।

मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद 'ने नागरिस्ताने-फ़ारस' में एक प्रसंग का वर्णन करते हुए लिखा है कि, औलिया निज़ामुद्दीन के आयुष्य–काल में दिल्ली में वसंतोत्सव मनाने की प्रथा थी। तब औवलिया महोदय, एक बार अपने भतीजे की मृत्यु के कारण अत्यन्त ही शोक–ग्रस्त दशा में बैठे हुए थे, किन्तु अमीर खुसरो नामक गायक एवं कवि के एक गीत को सुनकर आपका शोक दूर हो गया, तथा आप बहुत ही आनंदित हो उठे। वह गीत कौनसा था, इसका कोई पता, औलिया अथवा अमीर साहबान के चरित्रों के वर्णन में कहीं भी नहीं मिलता। लगभग दो वर्ष-पूर्व (सन् १९४५) बनारस के बाबू किशोरी रमण प्रसाद के प्रासाद में मनाये गये एक जल्से में दिल्ली के नामांकित वृद्ध गवैये मुज़फ़्फ़रख़ान गाने के लिये आये थे। उस समय उन्होंने बसंत राग की, आगे दी हुई एक चीज़ गाई और वही चीज़ खुसरो से सुनकर, कदाचित् औलिया साहब अपना शोक भूल कर हर्षित हो उठे होंगे, ऐसा मुझे (मूल लेखक प्रो.

चीजें की) प्रतीत होता है। खुसरो और निज़ामुद्दीन इन दोनों के नाम इस गाने में स्पष्टतः दिये गये हैं:—

सकल बन फूल रही सरसों,
अंबुआ मौरे, टेसू फूले,
कोयल कूकत डार-डार,
गोरी करत सिंगार,
मलनिया गड़वा ले आई हरसों।
सुंदर-सुंदर फूल सजाये,
ले गडुआ हाथन में आये
निज़ामुद्दीन के दरवाजे
आवन कह गये आशिक रंग
और बीत गये बरसों।

(दोहा)

खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।
तन मेरा, मन पहु का, सो दोनों एक ही रंग॥

वसंतोत्सव मनाने की रीति हिन्दुओं की है और उन्हीं से मुसलमानों ने ली। अमीर खुसरो और निज़ामुद्दीन औलिया के समय से हर-एक दरगाह में वसंत समारंभ मनाने की प्रथा पड़गई है।

शाह आलम के कीर्ति-काल में लिखे गये निम्न पद्यों में फूलों के नामों से सजाकर किस प्रकार वसंत का भास कराने वाला वर्णन किया गया है, यह भी देखिये:—

(भटियार होरी)

फूलन के हार चार
जूही चंबेली चम्पा सोसन।
राबेल देख कोकिला की बानी जित जीत करे।
सरसों पाये लो फूल रही, मुख
गुलाब नैनन नरगिस
अधर दस कवलन की साम्ता करे।
बेली सी नवेली बाल जाके
बातबात में सब दादर
केवड़ा, केतकी, मोतिये सुगंध फूल झरे।
आप बन आई कामनी रुत
गडुवा देन आई—
शाह आलम बादशाह के घर भरे॥

शाह आलम के समय में प्रचलित वाद्यों के नाम निम्न चीज़ में मिलते हैं:—

प्रथम बसन्त बहार को गड़वा बनाए,
सुनी लाये हज़रत रसूल के दरबार।
दफ, दाइरा, बीन, रबाब, कानून, मृदंग,
मुहचंग और बजावत हैं सब नार।
सुख सम्पत हो नित पुत्रन सहित दीजे
दुख और दारिद्र बिडार
गाय बजाय के मांगे मुरादें
शाहे आलम को दिला दीजे
मुल्क माल गज हज़ार॥

आगे के पद्य में शबबरात के त्यौहार के समय की आतिशबाज़ी का वर्णन है। इसे केदार राग में गाया जा सकता है:—

फुलजरी इतफुल अनार छूटे
चलचक्र और हवाई
चदर जाही जुही महताब सितारे—
की अतरी ज्योति सुहाई।
झाड़ भुचंपे छूटे घनचक्र
हाथन में कर के रोशनाई
देते सबै शाह आलम को
शबबरात की रात को लोग बधाई॥

खाद्य-पदार्थों के नाम भी निम्न हमीर राग की चीज़ में आये हैं:—

सरस (स्व) ती के पूजन को
सब लेले आईं भर भर थाली।
पूरी, कचौरी, समोसा, पापड़ी
और करीं नीकी सुहाली।
आनंद सु गाय बजाय
सभी नरनारी दे दे ताली।
क्या नीकी मचोरी आज भाई
कनी बन की बनी हार दिवाली॥

अकबर के कीर्ति-काल में नवरोज़ के उत्सव में सम्मिलित स्त्रियों के भूषणों के नामों वाली चीज़ राग-कल्पद्रुम में दी गई है और वह चीज़ टोड़ी राग में गाने योग्य है :—

शीशफूल मॉंग टीको,
बेसर मोती डोले कर्ण-फूल,
श्रवणन नवरोज़ मानो ।
जुगरवि करत किलोल।
गरें कंठ सटी, भाल बेंदी,
नख-शिख भूषण नग अमोल,
कटि किंकिनि भुज
बाजूबन्द रखरी, नैनन
अंजन, मन्द हँसत नख छोल।
'बीरबल' प्रभु रीझ थकित भये रस ।
बस कर लीने मोहन नागर रस चोल ॥

सुजान खां नामक मुसलमान कवि, शिव-स्तुति करता था, इस पर से उस काल में विद्यमान हिंदु-मुस्लिम ऐक्य की कल्पना हो सकती है:—

ज़ालिम अजब एक जोगी
ज़हर खाय करता ,
कहत हैं गले रुण्ड माला ।
अंग में भस्म लगाय
विजय धतूरा खाय
जपता रहता दोनों
दीन मगन ज्वाला ।
डमरू लिये हाथ गौरा
लिया साथ रहता है
मुश्ताक लोचन विशाला ।
कहे है सुजानखां जिया से ।
निश्चय मान,
मेरे निगहबान हो बैलवाला ॥

आगे के दो पद्यों में बाज़ बहादुर और रूपमती की अमर-प्रीति का वर्णन है। ये पद्य क्रमशः विहाग और गांधार राग में गाने योग्य हैं:—

प्रथम श्याम बिना उमगेरी दोऊ बदरा
रूपमती के बाज़ बहादुर
तज दियो गोकुल मिट गयो झगरा ।

दूसरा:—

तूं जो अब तो मुख देखन कहत,
ए तो गुमान गुस्सो करें रीझो ललना भावे;
बाद हो बकतो करत पूंछत
ते उत्तर न देत कंचन की सम काच क्यों भावे
साही कसौटी के माह मेरे जान
ताहो की महिमा जिसे मनमें रहे भावे
'रूपमती' कहे ताहो को लहनो
बाज़बहादुर को रिझावे ॥

ऐसी चीज़ें तो सैकड़ों हैं जिन में रागों के नाम आये हैं:—

बाग की कालु कि सौंधे की, छबि कही न जाय।
तख़्त बैठ शाह औरंगज़ेब मोरे नयनन रहे समाय ॥

औरंगज़ेब से संबोधित इस पद्य की उत्पत्ति, औरंगज़ेब के शासन-काल में जब गायकों ने संगीत-विद्या की श्मशान-यात्रा निकाली थी, उससे पहिले हुई होगी। श्रीपति कृत आगामी चीज़ में अकबर का तानसेन सहित नाम-निर्देश पाया जाता है:—

मुरारे त्रिभुवन पति, इंद्र सुर नृपति,
धनेश धनपति, शेषनाग फलपति,
क्षीर अब्धि सलिलपति, कौस्तुभमणि रत्नपति,
दिनकर दिनपति, नारायण कमलापति,
शशि उडुगणपति, हनुमंत बलपति,
वीणा मृदंग वादनपति।
कर मिलत कहे श्रीपति, चिरंजीव रहो छत्रपति
अकबर शाहे नरन पति, तानसेन तानन पति ॥

फरीदुद्दीन गंज शकर और मोइनुद्दीन चिश्ती साधुओं पर शाह आलम ने निम्न पद रचा है:—

तुम्हीं हो कुत्बे दीं गंजेशकर
कुत्बे मशायख़ के
नसीरे दीने यज़दां, हज़रते ख्वाज़ा मुईनुद्दीं

मध्य-युग की सामाजिक परिस्थिति पर, इस पर से, संगीत-वाङ्मय के परिशीलन द्वारा से प्रकाश पड़ता है।

सरोदनवाज उस्ताद आल्लाउद्दीन ख़ाँ

लेखक:— प्रो. बी. आर. देवधर

सन् १९३६ में संगीत-परिषद के समय, इलाहाबाद में उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ से मेरी भेंट का प्रथम संयोग आया। उस परिषद में ही, मुझे ख़ाँ साहब की सरोद तथा व्हायोलीन (बेला) पहिली-बार सुनने का अवसर मिला। मेरी अपेक्षा अधिक वयोवृद्ध तथा ज्ञानवान् होते हुए भी, प्रथम-भेंट पर ही, अपने ही प्रिय संबंधी की भांति, मेरे प्रति किये गये उनके सद्व्यवहार का मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ा।

जब मैं इलाहाबाद में ही था, एक दिन अचानक मेरी दृष्टि प्रात: ७ बजे, कंधे पर एक अंगोछा डाले आते हुए, ब्राह्मण से प्रतीत होने वाले एक व्यक्ति पर पड़ी। थोड़े समय तक तो मेरा ध्यान कुछ विशेष आकर्षित नहीं हुआ; पर ज्यों-ज्यों वे सज्जन निकट आते गये, मुझे यह निश्चय करने में तनिक भी समय न लगा कि, वे कोई ब्राह्मण नहीं; वरन् मेरे नव-परिचित उस्ताद अलाउद्दीन ख़ां थे। मैंने शीघ्र आगे बढ़कर प्रणाम किया, तथा मैंने उनसे पूछा, आपकी सवारी इतने सुबह और वह भी इतनी ठंड में कहाँ जा रही है?" उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, "आज एकादशी (ग्यारस) है; तथा सुसंयोग-वश मैं गंगा के समीप भी हूँ; अत: मैं गंगा-स्नान को जा रहा हूं।" यह सुनकर मेरे मस्तिष्क में एक विचित्र विचार-धारा का प्रवाह हुआ। स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी मुझे यह धार्मिक महत्व की बात ज्ञात तक नहीं, यह विचार ज्योंही मन में उठा कि, मैं स्वयं ही अत्यन्त-लज्जित हुआ; तथा ख़ाँ साहब के विषय में अधिक परिचय प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हृदय में बरबस जागृत हो उठी।

संध्या समय पुन: उनकी भेंट का संयोग आया तथा, उसही समय मेरे प्रश्नों का उत्तर देते हुए उस्तादजी ने कहा, "हमारे ख़ानदान में मांस-भक्षण वर्जित है। हमारे पूर्वज वैष्णव पंथी हिन्दु थे। मुसल्मान धर्म को स्वीकार किये नौ पिढ़ियाँ हो चुकी हैं, तो भी आज तक हिन्दुओं में प्रचलित रीति-रिवाज ही हमारे कुटुम्ब में रूढ़ियों की भांति चले आ रहे हैं। मेरे पिता महान् शिव-भक्त थे, तथा ज्येष्ठ भ्राता काली देवी की उपासना करते थे। मैं स्वयं त्रिपुरा संस्थान में पवित्र शिव-स्थान, शिवपुर नामक ग्राम का मूल-निवासी हूँ। इस शिवालय के दर्शनार्थ अनेकों हिन्दु तथा मुसलमान दोनों ही यात्रीगण सदा वहाँ आते रहते हैं।"

जल्सा चालू होने के कारण, मैं अधिक बोल नहीं पाता था, फिरभी मैंने उनसे कहा, "ख़ाँ साहब हमारे महाराष्ट्र में, एक भी सरोद बजाने वाला मनुष्य नहीं है। इतना ही नहीं, बम्बई से आगे दक्षिण-खंडमें यह भी लोगों को विदित नहीं कि, सरोद होती कैसी है? अत:, आप हमारे प्रांत के किसी विद्यार्थी को इस वाद्य में निपुण कर सकेंगे क्या?" ख़ाँ साहब ने तुरन्त उत्तर दिया; हाँ, किसी अच्छे स्वर ज्ञान वाले अपने विद्यार्थी को यदि आप मेरे पास भेज देंगे, तो मैं अवश्य सिखाऊंगा।" जब व्यय इत्यादि के विषय में प्रश्न किया, तो वे कहने लगे; "विद्या दान करने के लिये है, बेचने के लिये नहीं। मैं फ़ीस भी नहीं लेता हूँ, फिर खर्च क्या हो सकता है? मेरे शाकाहारी होने के कारण आपके विद्यार्थी का खान-पान भी मेरे ही घर हो सकता है। केवल, यदि उसने मन लगा कर अभ्यास किया तो सब ठीक हुआ ही समझें।" इस उत्तर ने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया।

फिर कुछ वर्षों तक, उस्ताद जी से मेरी भेंट न हो सकी। परन्तु सन, १९४२ में, बम्बई में श्री. उदयशंकर की पार्टी आई और उस समय उस्ताद जी के पुत्र चिरंजीव अली अकबर तथा जामात पं. रविशंकर का क्रमश: सरोद तथा सितार का वादन हमारी संस्था में हुआ। वह वादन इतना अपूर्व था कि, उस समय उपस्थित समस्त गुणी जनों ने उन तरुण कलाकारों के प्रति आदर प्रदर्शित किया; तथा ऐसी विद्या सिखाने वाले गुरू की वादन-कला को सुनने की सबको उत्कठ इच्छा प्रतीत हुई। गत वर्ष उस्ताद जी यहाँ पधारे थे। वे इस वर्ष भी यहाँ आये थे। उनका एक अद्वितीय जल्सा गत १ जनवरी सन् १९४५ को हमारी संगीत-शाला में हुआ था। इस अवसर पर भी बम्बई के समस्त गुणीजन उपस्थित थे। श्रोतागणों ने "वाह-वाह" की ध्वनि आरम्भ कर दी। उस्ताद जी भी हर्षित हो उठे, तथा उन्होंने

इस प्रकार से सरोद-बजाई कि, यह किसी को विश्वास नहीं हो रहा था कि, कोई ७६ वर्षीय वृद्ध पुरुष बजा रहे हैं।

इस के पश्चात्, खां साहब के जीवन के विषय में मेरे हृदय में कौतुहल बढ़ गया और मैंने, उनके निवास-स्थान पर जाकर उनसे उनके चरित्र विषय में पूछताछ की। उन्होंने के लगभग तीन घंटे तक सारी हक़ीक़त कही, जो बहुत कुछ उनके ही शब्दों में निम्नांकित है:—

(खां सा : अल्लाउद्दीन खां, सरोदनवाज़)

"मेरा जन्म सन् १८६९ में त्रिपुरा संस्थान के शिवपुर नामक ग्राम में, एक कृषक के घर हुआ। हम पांच भाई तथा दो बहनें, इस प्रकार सात भाई-बहन। हमारे पिता स्वभाव से अति शांत, महान् शिवभक्त, व संगीत-प्रेमी थे। हमारी माता का स्वभाव अत्यन्त कठोर था, तथा कृषि एवं गृहस्थी सम्बन्धी बहुत सा कार्यभार वही संभालती थी। कृषि से सम्बन्धित समस्त नौकर-चाकरों की देख-रेख भी मां ही करती थी।"

'साधू खां' की तपस्या—

हमारे पिता को संगीत के प्रति अत्यन्त प्रेम था। उस समय त्रिपुरा राज्य के अधिपति, महाराज वीरचन्द्र माणिक्य बहादुर के दरबार में, सुप्रसिद्ध बहराम ख़ां, के कनिष्ठ भ्राता क़ाज़िम अली ख़ां, रबाबी नौकर थे। वे रबाब अत्यन्त ही सुन्दर बजाते थे। हमारे पिता त्रिपुरा में जाकर, सदैव उस्ताद क़ाज़िम अली ख़ां का रबाब-वादन सुनते थे। ग्रीष्म तथा वर्षा में, झाड़-झाकरों में, घर के पीछे वे प्रतीक्षा में बैठे रहते थे। यह भेद किसी ने ख़ां साहब से जा कहा और एक दिन, जब मेरे पिता साधु खां, सदा की भांति छिपकर खड़े हुए थे, एक नौकर उन्हें बुलाकर उस्ताद जी के समक्ष ले गया। उस्ताद जी ने पूछा, "तुम कौन हो?" उन्होंने उत्तर दिया, " मेरा नाम साधुखां है, तथा मैं शिवपुर का एक कृषक हूँ। मैं संगीत-विद्या से अनभिज्ञ हूँ, फिर भी संगीत से मुझे इतना अधिक प्रेम है कि, स्वरों की मेरे कर्णपटल पर पड़ने की देर है कि, मैं उनमें तल्लीन हो इस संसार की समस्त वस्तु भूल जाता हूं। आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि, आपके पास ऐसी अनोखी विद्या है और यह आनंद आप कभी भी ले सकते हैं। स्वर मोहक होने के कारण, मैं सदा यहां आकर आपके रबाब की ध्वनि सुनता हूं। यहीं कहीं बाज़ार में भोजन कर लेता तथा आपके रियाज़ के समय की प्रतीक्षा आप के घर के ही पास बैठा किया करता हूँ।"

"मुझे यह रबाब-वाद्य सिखाइये" ऐसी प्रार्थना साधू ख़ां ने जब की, तो ख़ां साहब हँसने लगे और बोले, "यह वाद्य हमारे कुटुम्ब के लड़के के अतिरिक्त हम किसी को भी नहीं सिखाते। मैंने इसी कारण विवाह भी नहीं किया; क्योंकि न जाने मेरा पुत्र यदि हुआ, तो घर पर रह कर, यह वाद्य स्वयं सीखेगा या चाहे किसी को भी सिखादेगा। फिर, यह मैं तुम्हें कैसे सिखाऊं? तू सितार ले आ, वह मैं तुझे सिखा दूंगा। साधू ख़ां को अत्यन्त आनंद हुआ; तथा समय मिलते ही वे त्रिपुरा में जाकर सितार सीखने लगे। प्रत्येक-दिन अपनी कृषि पर से उत्तम चावल, तथा भाजी-पाला वे उस्ताद जी को लिये ले जाते थे, जिससे वे इस कृषक पर अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। स्वयं सितार सीखना आरम्भ करते ही, तबले की भी आवश्यकता प्रतीत होनेपर मेरे पिताजीने अपने ज्येष्ठ-पुत्र चि. आफताबुद्दीन को रामकनाई सीलके पास तबला व मृदंग वादन सीखने भेज दिया। उस समय मेरी आयु लगभग ३-४ वर्ष की होगी। पिता जी द्वारा सितार पर बजाई हुई गतियों को मैं गुन गुनाने लगा; तथा ज्येष्ठ भ्राता को घर पर प्रत्येक दिन तबले का अभ्यास करते देखते देखते ही, मुझे समस्त ठेके की कण्ठस्थ हो गये। सारांश, यह कि, मेरी तीन-चार वर्ष भी अवस्था में ही मुझे स्वर तथा लय का ज्ञान प्राप्त होने लगा।

पाच वर्ष की आयु में, मुझे पाठशाला में भेजा गया। पाठशाला के रास्ते पर ही शिव-मंदिर था। वहाँ एक वृहत् वट-वृक्ष था। इस वृक्ष के नीचे एक साधु निवास करते थे। एक धूनी जलाकर तन पर भस्म लपेटे, वे सितार बजाया करते थे। मैं संगीत के लिये पागल तो था ही, सितार के स्वर कानों में पड़ते ही, मुझे न जाने कैसा प्रतीत होने लगा, और मैं वहीं स्तब्ध खड़ा रह गया। धीरे-धीरे मैं कांख में पुस्तकें दबाकर, पाठशाला जाने का बहाना कर, घर से निकल पड़ता और इस वृक्ष के नीचे सितार सुनने आ बैठता था। पाठशाला की छुट्टी के समय घर पर फिर आ जाता था। एक दो वर्ष तो ऐसे ही बीत गये; परन्तु अन्त में मेरा यह भेद पिताजी पर प्रकट हो गया। मेरी माता अत्यंत क्रोधी थी, तथा यह बात यदि वह जान पाती तो वह मुझे मारती-पीटती, यह जान कर भी पिताजी ने ही यह बात तथा मेरे कार्यक्रम की सूचना उसे माँ दी। उन्होंने कहा, " यह लड़का संगीत के लिये पागल है, अतः पाठशाला की अपेक्षा उस साधु की सितार सुनने में ही इसका मन अधिक लगता है। संगीत भी विद्या है, तो फिर यह पागलपन कुछ आपत्ति-जनक नहीं। तुम इस पर क्रोध न करो।" पिताजी के उपदेश के पश्चात् मैं कुछ दिन पाठशाला में गया; परंतु साधु की सितार को सुनने का मेरा पूर्व कार्य-क्रम पुनः आरंभ हो गया। अंत में, माँ ने एक दिन इसके लिये मुझे बहुत पीटा, भूखा तथा खंभे से बांधकर भी रखा। संयोग-वश मेरी ज्येष्ठ बहन का विवाह उसी गांव में हुआ था। वह मुझे बहुत प्रेम करती थी। उसे यह समाचार विदित हुआ, तो वह और उसके पति देव दोनों हमारे घर पर आये; तथा मेरी माँ को समझाया और उस के हाथों से छुड़ा कर वे मुझे अपने घर ले गये। उनके पास तीन दिन रहकर मैं पुन अपने घर आया, तो मां को रोग-शय्या पर पड़ा हुआ पाया। मैं उसका स्वास्थ्य तनिक सुधरने तक घर पर ही रहा।

पलायनः—

मां के शयन-गृह में ही रुपये-पैसों की सन्दूक थी। एक दिन रात्रि के समय मां की नींद लगी हुई पाकर, मैंने धीरे से सन्दूक खोली, तथा दाहिने हाथ की मुट्ठी में जितने पैसे आये, ले लिये। जितने भी वस्त्र इत्यादि सुगमता पूर्वक शीघ्र मिल सकें, एक गठड़ी में बांध, वह छोटी सी पोटली लेकर, घर से रात्रि के अंधकार में मैंने घर छोड़ दिया। तीन चार कोस चलकर, माणिकपुर से स्टीमर में सवार हो ढाका गया। वहां एक बारात दिखाई दी। उस बारात के आगे-आगे एक बैंड बज रहा था। स्वरों का प्रेमी होने के कारण, मैं उस बैंड के पीछे-पीछे चल पड़ा। अन्त में बैंड मास्टर को गैठा और मुझे बैंड-वादन सिखाने के लिये मैंने विनय की। परन्तु बैंडमास्टर कहने लगा, "ये समस्त वाद्य तुझे कैसे आसकते हैं?" निष्कर्ष यह निकला कि, उसकी मुझे सिखाने की इच्छा ही नहीं थी। फिर मैं नव-ग्राम नामक गांव में गया। वहां हमारे ग्राम के राम कनाई सील के भ्राता 'रामधुन सील' रहते थे। मैंने उनके पास ही संगीत सीखना आरम्भ कर दिया। भाग्य की बात कि, मेरे मुसलमान होने के कारण उस ग्राम के निवासी मुझे समीप नहीं आने देते थे। मैं जहां भी जाता, बाहर निकाल दिया जाता था। इस विपत्ति से ऊब कर मैं वह ग्राम छोड़ कलकत्ते आया। इतना विशाल नगर मैंने कभी नहीं देखा था। लंघनों तथा वस्त्रों की चोरी इत्यादि का अनुभव प्राप्त करने के पश्चात्, दुःखित अंतःकरण सहित चलते-चलते नीमटोलाघाट, जहां मृत-शवों की दाह-क्रिया की जाती है, जा पहुँचा। यहां अनेकों साधु स्नान कर रहे थे। उनके हृदय में मेरे प्रति दया उत्पन्न हुई और उन्होंने मुझसे ईश्वर का नाम लेकर स्नान करने के लिये कहा। स्नानांतर उन्होंने भस्म लगाने को दी और साथ ही आशीर्वाद भी आगे फिर एक सदावरत दिखाई पड़ा। इस स्थान पर वितरण-कर्ता ने मेरे हाथों पर एक पत्तल डाल दी और उस पर भोजन परोस दिया। समीप ही के एक देशी औषधालय में, वहां के आचार्य ने सोने भरकी आज्ञा प्रदान कर दी। प्रति-दिन दुपहर सदावरत से प्राप्त भोजन सड़क पर खाना, सायं : काल केवल पानी पीना, तथा औषधालय में सोजाना, यह मेरा कार्यक्रम था। फिरभी जिस लिये मैं कलकत्ता पहुँचा, वह संगीत-शिक्षक गुरु, कहां से उपलब्ध हो? यही चिंता बस रात-दिन लगी रहती थी। गुरु की खोज में गायन-वादन का नाम लेते ही लोग मुझसे बोलते भी न थे। उस समय में, गवैयों को समाज आदर की दृष्टि से नहीं देखता था। जब मैं औषधालय में ही था, तब एक लड़के को मुझ पर दया आई, तथा वह मुझे अपनी मां के पास ले गया। उसे मुझ पर दया आगई और उसने मुझे भोजन दिया; परन्तु वहाँ उसके पति के सामने गायन का नाम भी न लेने की उसने ताकीद कर दी। इसी लड़के ने एक गायन-प्रेमी व्यक्ति से मेरा परिचय कराया, जो मुझे नानू गोपाल नामक सज्जन के पास ले गये। नानू गोपाल

कलकत्ते के एक सुविख्यात गायक थे। उन्हें ध्रुपद-धमार का भली प्रकार ज्ञान था तथा; उन्होंने हद्दु हस्सू खां के पास ख्याल-गायन भी सीखा था। उन्होंने मुझसे कहा, "यदि तू मेरे पास बारह वर्ष तक रहे, तथा मेरे कथनानुसार अभ्यास करे, तो तुझे गायन-विद्या आसकती है।" नानू गोपाल की अनुमति के अनुसार, मैंने 'मनमोहन डे' हिन्दु नाम धारण किया। गुरु जो बहुत ही जल्दी उठकर स्वर-साधन करते थे। प्रातः ७ बजे मेरा शिक्षण आरंभ होता। आवाज़ अच्छी-तरह बनाने के लिये, पलटों व समस्त रागों की केवल सरगम ही सात-आठ वर्ष तक सिखाने के बाद वे चीज़ें सिखाते थे। इस पलटों के अभ्यास के आरंभ होने के पश्चात् गुरु जी ने तबला तथा मृदंग सीखने के लिये पं. नन्दलाल के पास मुझे भेजा।

उन्होंने भी मुझे उदार हृदय से सीखाना शुरु किया। उस समय मैंने इन दो वाद्यों का अभ्यास ऐसे योग्य गुरु के पास किया कि, मुझे ताल व लय के सबंध में कभी भी अड़चन नहीं आई। मैं सदावरत में दुपहर भोजन करके दिन भर इन दोनों गुरुओं के सम्पर्क में बिताता रहा। इस प्रकार सात वर्ष बीत गये, तथा मेरी एकनिष्ठ सेवा व अभ्यास देख गुरुजी अत्यन्त प्रसन्न हुए मैं सहस्त्रों पलटे नित नये रागों में सहज ही गाने लग गया।

प्रथम-विवाह :—

घर पर मेरी अनुपस्थिति के कारण समस्त कुटुम्ब चिंतित हो गया था। अन्ततः सात वर्ष के अन्त में, मेरे ज्येष्ठ भ्राता आफताबुदिन को धैर्य न रहा। उन्होंने हमारे गांव के ज़मींदार के पुत्रों को, जो कलकत्ते के एक कॉलेज में पढ़ते थे, एक पत्र लिखा; तत्पश्चात् वे स्वयं कलकत्ते आये। समस्त गायकों के यहाँ मेरी पूछ-ताछ करते फिरे; किन्तु मेरा पता न लगा। अन्त में, एक सज्जन ने उनसे यह कहा कि, नानू गोपाल के पास १४-१५ वर्षका जैसा आप बताते हैं, एक लड़का गायन का अभ्यास करता है; परंतु वह मुसलमान नहीं वरन हिंदु है।"

अस्तु. पं. नानू गोपाल के पास जाकर मेरे भ्राता ने मुझे पहचान लिया; तथा वे मुझसे लिपट कर मिले। पं. नानू गोपाल ने मेरे भ्राता से कहा, "यह लड़का अत्यंत ही शीलवान्, सच्चा तथा परिश्रमशील है। गत सात वर्षों में इसने बहुत अच्छी प्रगति की है और तबला तथा मृदंग भी बजाने लगा है। हम लोग विद्यार्थी की पूर्ण परीक्षा लिये बिना, समस्त विद्या नहीं सिखाते। लड़के आते, थोड़ा सा सीखते व भाग जाते हैं। तुम्हारा भाई अब मेरी परीक्षा में सफल हो गया है, अतः इसके आगे मैं स्वयं उसे सिखाऊंगा और उसके खान-पान की भी व्यवस्था करा दूँगा।" इस पर मेरे भाई ने पं. नानू गोपाल से मुझे एक मास के लिये घर भेजदेने कि प्रार्थना की और उन्होंने उदार हृदय से मुझे एक मास की छुट्टी देदी।

हमारे शिवपुर जा पहुँचते ही, कुटुम्ब के सब लोगों को अत्यंत आनंद हुआ। समस्त स्वजन मुझ से मिलने आये। मैं कलकत्ते जैसे विशाल नगर में अकेला रह कर समाज में जिसका कोई सन्मान नहीं, ऐसी संगीत-विद्या के वातावरण में रहकर भी निर्व्यसनी रहा, यह देख कर सबको संतोष हुआ। फल यह हुआ कि मेरे वृद्ध पिता मुझे प्रेम-पूर्वक अपने समीपही बैठाते और अत्यन्त श्रद्धा से मेरा गाना सुना करते। वे कहने लगे, "बेटा, संगीत सीखने की मेरी अत्यन्त प्रबल हौस थी परन्तु मैं जितनी विद्या चाहता था उतनी नहीं सीख पाया। मेरी इस अतृप्त आकांक्षा को तू पूर्ण कर; परन्तु गवैयों के व्यसनों से अवश्य दूर रहना"। इस प्रकार मुझे उन्होंने हृदय से आशीर्वाद दिया।

घर पर दिन आनंद से कट रहे थे। उसी समय मेरे विवाह की गुप्त खलबली भी मची हुई थी। मेरे ज्येष्ठ भ्राता आफताबुद्दीन महान काली-भक्त थे, व उनकी शिष्य मंडली भी बहुत विस्तृत थी। रायपुर गांव में रहने वाले उनके एक शिष्य की बहन, उन्होंने मेरे लिये नियुक्त की थी। उस समय मुसलमान समाज भी गाने बजाने वाले लोगों से दूर ही रहता था। कोई भी यदि गायन-शिक्षा पाने लगा, तो आज नहीं तो कल अवश्य ही वह व्यसनों के आधीन हो जायगा, ऐसी धारणा, के कारण कोई अपनी कन्या देता ही न था। मैं आफताबुद्दीन साहब का भाई था; तथा उन्होंने मेरे शील के लिये साक्षी दी थी, इसी कारण वे लोग मुझे कन्या देने को तयार हुए। मेरी छुट्टी समाप्त होने वाली थी अतः मुझे कलकत्ते जाने के व्यय के लिये ५० रुपये दिये गये। मेरे भाई रायपुर गये, तथा रायपुर दिखाकर, कलकत्ते भेज देने के बहाने, वे मुझे अपने, साथ वहां लेगये। मुझे पहुँचाने के लिये समस्त कुटुम्ब भी मेरे ही साथ रायपुर आने के लिये निकल पड़े। हमारे समस्त कुटुम्ब के रायपुर पहुँचने पर सायं: काल मुझे लडकियों की एक भीड़ ने

घेर लिया। इतना ही नहीं, एक लड़कीने तो मेरे हाथ में विवाह का कंगन भी बांध दिया। वधू के कनिष्ठ भ्राता ने मुझसे धीरे से कहा, "आज सांयःकाल तुम्हारा मेरी बड़ी बहन से विवाह होने वाला है। अस्तु संध्या के समय विवाह भी होगया। वहाँ गांव के बहुत से लोग जमा हुए थे। भोजन इत्यादि के पश्चात्, मुझे बताया गया कि, यह लड़की मेरी स्त्री थी, अतः हम दोनों को एक ही कमरे में सोना चाहिये। कन्या की आयु लग-भग १० वर्ष की होगी। वह भी बेचारी उलझन में पड़ी हुई, तथा थक गईथी। उसे तो गाढ़ा निद्रा ने वशीभूत कर लिया, पर मैं स्वयं कुछ विचारों में ही मग्न पड़ा रहा और नींद न आई। मुझसे गायन के प्रति प्रेम छुड़वाने के लिये ही जान बूझ कर कुटुंब के लोगों ने मुझे इस विवाह के बंधन में डाल दिया है, यह मैं समझ गया। विवाह के समय मिले हुए लगभग ३०० रुपये नकद और पास ही सोई हुई नव-वधू ने उतार कर रखे हुए आभुषण— बस, इतना ही ले, मध्य रात्रि के समय उठकर, धीरे से मैं घरसे निकल पड़ा और चार कोस दौड़ते हुए जाकर, एक गांव में नाव पर सवार हो कलकत्ते पहुंच गया। कलकते आने के पश्चात् ज्ञात हुवा कि केवल ८दिन पूर्व ही पं. नानु गोपाल का स्वर्गवास हो चुका था। मुझे वज्रसमान आघात पहुंचा तथा मेरा अन्तःकरण दुःख के कारण उमढ़ पड़ा। मेरी गायन शिक्षा अपूर्ण रह गई। इनगुरु-देव पर मेरी इतनी दृढ़निष्ठा थी कि, दूसरे किसी भी गुरु के पास मैंने गायन-विद्या न सीखने का संकल्प कर लिया। मेरे गुरु जी के शरीरान्त के साथ ही मेरे गवैये होने की महत्वाकांक्षा भी मृत प्रायः हो गई। संगीत का अभ्यास करूंगा, परन्तु केवल वादन ही करूंगा इसके पश्चात् कभी गाऊंगा नहीं, बस यही मन में ठानली।

वाद्य-शिक्षण का श्री गणेश :—

पूर्वत ब्रह्मचार्य जी के औषधालय में, मैं रहने लगा; तथा पुनः गुरु की खोज आरंभ करदी। स्वामी विवेकानंद के भ्राता हाबुदत्त, उस समय वाद्य-वादन में अत्यन्त प्रसिद्ध थे। बंग-रंग भूमि उस समय पुर्ण-रूपेण सशक्त तथा प्रबल थी। अंग्रेज़ी ऑर्केस्ट्रा के अनुसार हिन्दुस्तानी ऑर्केस्ट्रा संगठित करने का उस समय प्रयत्न चल रहा था। उनका प्रयोग रंग-भूमि में यशस्वी रूप से किया जाता था हाबू दत्त हिन्दुस्तानी ऑर्केस्ट्रा निर्माण कला में सबसे अग्रसर एवं इस हल-चल के अगुआ थे। अतः मै उनसे मिला और अपनी वाद्य सीखने की इच्छा प्रदर्शित की उन्होंने मेरी परीक्षा ली। उन्होंने फिडल बजाई और मैंने उसकी 'सरगम' की। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए, तथा मुझे उदार मन से फिडल सिखाना आरंभ कर दिया। मेरे पास की धन राशी समाप्त हो जाने के कारण, उन्होंने मुझे मेरी प्रार्थना पर, प्रसिद्ध नाटककार, गिरीशचन्द्र घोष के पास भेज दिया। गिरीश बाबू मेरा 'प्रसन्न कुमार बिश्वास' हिन्दु नाम रखकर मुझे एक नाटक कंपनी में ले गये। वहां देखा तो स्टेज पर तालीम चल रही थी। पांच-पचास लड़कियों का समूह स्टेज पर था, तथा कुछ नट यदि प्रेम चर्चा तो कुछ वानर-सम प्रहसन कर रहे थे। बस, वहाँ ऐसा अद्भुत दृश्य देखने को मिला। गिरीश बाबू बोले, "देख ऐसे लोगों से तेरा पाला पड़ना है। उन्हें जी में आये वैसा व्यवहार करने दे, परन्तु तू इन लोगों के प्रेम के चक्कर में मत पड़ना। ऑर्केस्ट्रा में वाद्य-वादन का तू अपना कार्य कर व कंपनी में भोजन इत्यादि करता जा और दिनभर अपने अभ्यास में लगा रहना।"

ऑर्केस्ट्रा का 'क्लॅरोनेट' वाद्य मुझे अति-प्रिय लगा। वह सीखने के लिये हाबुदत्त जी ने मुझे लोबो नाम के बैंड मास्टर के पास भेजा, जिसके पास मैंने इंगलिश नोटेशन व क्लॅरोनेट सीखा। ऐसा ही एक दूसरा गुरु ढूंढ कर मैं शहनाई भी सीखने लगा। दिन में तीन गुरुओं के पास सीखना, दो-तीन घंटे प्रत्येक वाद्य पर अभ्यास करना, तथा रात्रि को नाटक में ऑर्केस्ट्रा के साथ बजाना; यही कार्यक्रम तीन वर्ष चालू रहा। इस अवधि में, मेरा हाथ व्हायोलिन पर निपुण हो गया था। क्लॅरोनेट व कॉर्नेट, ये वाद्य स्टाफ़-नोटेशन पढ़ कर मैं इंगलिश बैंड में बजाने लगा; तथा शहनाई पर भी मुझे पर्याप्त प्रगति प्राप्त हो चुकी थी। मेरी आयु इस समय कोई १५ वर्ष की होगी। गुणी तथा निपुण के नाम से मेरी प्रशंसा होने लगी और मेरे हृदय में तनिक स्वात्माभिमान भी जागृत हो उठा। इसके अतिरिक्त, गायक एवं वादक के रूप में मैं भी नित नये गांवों में जाकर धन-संचय करूं, ऐसी भावना का जन्म भी हुआ। तदनुसार मैं मुक्तागाछा नामक ग्राम में जाकर जगत किशोर नाम के ज़मींदार से, उनके दुर्गा-पूजा के समय, मिला। उन्होंने एक दिन मुझे प्रातः ८ बजे उत्सव के सभा-मंडप में अपने वाद्य लेकर उपस्थित रहने का आदेश दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल, मैं निश्चित समयसे कुछ पूर्व ही मंडप में आ पहुँचा। अनेक गुणी लोग अपने-अपने वाद्य लेकर वहां उपस्थित थे। एक सुरेल तम्बूरे के साथ, एक खां साहब सरोद मिला रहे थे। मैं वहां जा

खड़ा हुआ। सरोद के मिलते ही खां साहब ने "तोड़ी" का आलाप बजाना आरंभ किया। उस समय मेरे शरीर में रोमांच हो उठा और मैं अपनी देहकी सुध भी भूल गया। उस स्वरने मेरा हृदय छीन कर रख दिया। ख़ां साहब की सरोद–वादन तीन घंटे तक चलता रहा। उसके समाप्त होने के पश्चात् ही मैंने सभा के बीच में ही ख़ां साहब को साष्टांग नमस्कार किया और उनके पैर पकड़ लिये। ख़ां साहब ने मुझसे उठने के लिये आग्रह किया, परन्तु मैंने कहा, "जब तक आप अपना शिष्य बना के मुझे यह विद्या सिखाने का वचन नहीं दे देंगे, मैं पैर नहीं छोड़ूंगा।" जगत किशोर जी के आग्रह पर ख़ां साहब को मुझे सिखाने का आश्वासन देना पड़ा। बस, मैं भी पैर छोड़ कर उठ बैठा। ज़मीन्दार जगत किशोर जी भी सरोद वादन पर अति प्रसन्न हुए थे। उन्होंने तुरन्त आज्ञा देकर मेरे लिये, गंडा तथा फूल एवं वस्त्र इत्यादि सामग्री शीघ्र ही वहीं सभा में मंगवाली। ख़ां साहब को ४०० रुपये एवं वस्त्र, तथा मुझे एक अच्छा सा सरोद, इस प्रकार की भेन्ट देकर, ख़ां साहब से मेरे गंडा बंधवाया। गले से गाना तो नानु गोपाल के साथ ही ख़त्म हो चुका था। अतः अब सरोद के द्वारा संगीत विद्या प्राप्त की जाय, ऐसा मैंने संकल्प कर लिया।

ख़ां साहब अहमद अली :—

ये ख़ाँ साहब अहमद अली ख़ां, सुप्रसिद्ध मारवाड़ी कोटिधीश सेठ, दुनी चंद के यहाँ बड़े वेतन पर नौकर थे। सेठ दुनी को गायन से ऐसा प्रेम था, कि गौरव जान, मौजुद्दीन ख़ां, गणपत भैया, बम्बई के प्रसिद अल्लादिया ख़ां इत्यादिक बड़े–बड़े गुणी लोग उनके यहां नौकरी करते थे। वे रात्रि के समय जब पुजा के लिये बैठते तब सर्व गुणी जनों की प्रतिदिन सभा लगती थी। कै. अल्लादिया ख़ां की शिष्या, बम्बई की ताराबाई वेलिणकर, इन्हीं सेठ जी के यहां थीं। अहमद अली ख़ां साहब के साथ में पुनः मुक्तागाछा से कलकत्ते आ गया।

अहमद अली ख़ां एक नामी वादनकार थे। वे रामपुर के रहने वाले थे और उनके पिता रामपुर में दरबारी नौकर थे। मुझे तबला बजाना भली प्रकार आने के कारण मैं उनकी साथ करने लगा। स्वयं भोजन तैयार करके, मैं ख़ां साहब को भोजन करवाता था। मैं उनके घर को अत्यन्त स्वच्छ रखता था, इस कारण वे मुझसे प्रसन्न तो थे, पर सिखाने के नाम से केवल कद्दू ही। मैं यदि बहुत ही आग्रह करता, तो कोई गत बता देते थे। केवल उनकी महफिलों की अधिकता –वश मेरी तबले पर आवश्यकता बनी रहे के कारण, मुझे सुनने को अवश्य भरपूर मिलता था। ख़ां साहब का स्वभाव आनंद–भोग करने का था। पैसे मिले कि, रखने के लिये शागिर्दों को दे देना तथा चैन करने पर को जितने आवश्यक होते, उतने मांग लेना, यही उनका नियम था। मेरी ओर वे कुछ विशेष ध्यान नहीं रखते थे। मैं फटे हुए वस्त्र भी थेगले लगा–लगा कर पहने रहता पर उन्होंने मुझे कभी वस्त्र इत्यादि न दिये। वादनार्थ बाहर जाते समय वे मुझे अपना चूड़ीदार पैजामा या अपनी जीर्ण शेरवानी पहनने को दे देते थे, परन्तु घर पर वापस आते ही, वह उनको भी अवश्य ले लेते थे। मुझे नवीन शिक्षा न मिलते हुए भी अब सरोद पर हाथ चलने लगा था। ख़ां साहब यद्यपि अपना जोड़ काम नहीं सिखाते थे, तो भी मैं स्वयं नानू गोपाल के सिखाये हुए पल्टों पर करूँ, बस इस ही विचार से संध्या समय, वे पल्टे मैं सरोद पर बार–बार बजाने लगा। ख़ां साहब रात्रि में प्रायः देर से ही आते थे; पर दैवयोग से एक दिन वे कुछ जल्दी ही घर पर आगये, और मेरे पल्टे सुनकर बोले, "सरोद बंद मत करना। बजाते जाओ और यही पलटे बजाओ।" अब उन्हें यह विदित हुआ कि, वे पल्टे नानू गोपाल जी के पास के हैं, तब वे कहने लगे, "ऐसे विविध–प्रकार के तथा सुन्दर पल्टे मैंने कभी पहले नहीं सुने। ये पलटे एक बार यदि कन्ठस्थ हो गये तो गला कहीं भी अड़ नहीं सकता। यदि हाथों पर यह चढ़ गये, तो किसी भी राग पर हाथ रुक नहीं पायेगा। ये पलटे तू मुझे लिखदे।"

इच्छा के विरूद्ध दूसरा विवाह :—

छः सात वर्ष बीतने पर भी मैं अपनी पत्नी के यहां नहीं गया, यह देख मेरे श्वसुर अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए। मुझपर उन्होंने मनमाने आरोप भी लगाये। मेरे भाई को दोषी ठहराते हुए उन्होंने कहा, "अपने बदफ़ैली भाई को मेरी लड़की दिलवा कर, तुमने मुझे अच्छा फँसाया। उसे मैं अब तुम्हारे घर कभी भी न भेजूंगा" इस प्रकार अपने दृढ़ निश्चय की धमकी उन्होंने दी। उनके इस कृत्यसे क्रोधित हो, मेरे भाई ने मेरे पास पत्रों पर पत्र भेजना आरंभ कर दिया और पुनः मेरा मन सांसारिक जीवन में रम जाय, इस विचार से, अन्तिम बार, एक अत्यन्त ही सुस्वरूप लड़की से मेरा द्वितीय विवाह भी कर दिया। संगीत–शिक्षण से संबधित मेरी

व्याकुलता की वे क्या कल्पना कर सकते थे ! इस दूसरे विवाह के हो जाने पर भी, मैं पुनः अहमद अली ख़ां साहब के पास आ गया और पूर्वत् समस्त कार्य–क्रम आरंभ कर दिया। ख़ां साहब मुझे जोड़–काम नहीं सिखाते थे। यदि बहुत ही आग्रह किया, तो थोड़ा सा गत–तोड़ा बता देते थे। उनके जोड़–काम को मेरे लक्ष्य–पूर्वक समझने के कारण मुझे उसका अच्छा ज्ञान हो गया था। एक दिन 'दरबारी कानडा, के जोड़ काम को करते हुए ख़ां साहब ने अचानक बाहर से आकर मेरे आलापों को सुन लिया। शीघ्रता से क्रोधित हो कर वे दरवाज़ा खोलते हुए बोले, "सरोद बजाना बन्द करो" और कठिन आज्ञा दी कि, "मैं जब तक तुझे न सिखाऊं जोड़ काम न बजाना। केवल गत–तोड़े का अभ्यास किये जाओ।" उन्हें प्रतीत हुआ मानो स्पष्टता सुन–सुन कर मैंने उनकी विद्या की चोरी की है। उस दिन से उन्होंने मेरे साथ खुले दिल से व्यवहार नहीं किया। फिर एक मास की छुट्टी ले, वे रामपुर जाने के लिये निकल पड़े। जाते समय मैं भी उनके साथ बनारस तक गया। वहाँ ख़ां साहब के मुजरे हुए; परन्तु उस में मिले हुए धन सदैव की भांति मुझे न सौंप कर उन्होंने वह अपने ही पास रख लिया। इन्हें कदाचित ऐसा ज्ञात हुआ हो कि, मैंने उनकी विद्या तो चुरा लीयी है; अब कहीं धन मिलने पर पैसे लेकर ही न भाग जाऊं।

गुरु सेवाः झोपड़ी का घरः—

एक छोटी सी जीर्ण झोंपड़ी ही रामपुर के ख़ां साहब का घर था। एक दिन ख़ां साहब तथा उनके पिता, जब पास ही बैठे हुए थे, मैंने ख़ां साहब से कहा, "गत चार वर्षों से आप अपना समस्त धन मुझे रखने के लिये देते रहे हैं, उसका हिसाब आपने आज तक नहीं लिया।" इस पर ख़ां साहब ने उत्तर दिया, "कैसा हिसाब ! तुझे दिये हुए पैसों में से ही तो मैं प्रति-दिन खाने के लिये पैसे मांग लेता था। मेरे शिष्यों में से आज तक किसी ने भी हिसाब नहीं दिया। आज तक समस्त शिष्यों ने "पैसे आपके खर्च में व्यतीत हो गये, यही हिसाब बताया है।" जब मैंने यह कहा कि कुछ पैसे बचे हैं, तो उन्होंने मुझसे वह सब बची हुई धनराशि ले आने को कहा। मैंने सन्दूक में से थैलियां निकाली, और उसकी गणना करने पर, नोट तथा नक़द मिला कर लगभग ५,००० रु. निकले। ख़ां साहब की मां परदे की ओर से यह सब दृश्य देख रही थी। इतने धन के उसने कभी जन्म भर में दर्शन भी नहीं किये थे। वह झपट कर परदे से बाहर आई और मुझसे लिपट गई। कहने लगी, "आज तक मेरे एक पुत्र था, पर अब दो हो गये हैं।" इस धन से ख़ां साहब के लिये एक पक्का नया घर बनवाने का मेरा प्रस्ताव सबको प्रिय लगा। दूसरे दिन से मैंने और दो मज़दूरों ने उस काम में लगकर ४-५ मास में नया पक्का घर खड़ा कर दिया। सुबह से शाम तक काम करने के कारण मेरे पेट में दर्द होने लगा और फिर कुछ दिन मैं बीमार पड़ा रहा। इस विपत्ति का परिणाम आज तक शेष रहने के कारण आज भी बीच-बीच में वह दुःख मुझे प्रतीत होता है।

फिर ख़ां साहब अपनी नौकरी पर लौट गये और मैं उनके पिता के पास ही घर पर रह गया। मेरा रहना ख़ांसाहब को अधिक प्रिय नहीं लगता था। वे मेरे मुहँ पर ही कहने लगे, "तू विद्या सीखता नहीं, उसे हड़प लेता है। मेरे कोई से भी राग बजाने भर की देर है, कि तू उसे खा ही जाता है। इसके सिवाय तुझमें एक आदत बहुत बुरी है। तू मांस–भक्षण नहीं करता, कौनसा भी व्यसन तुझ में नहीं, तथा धन इत्यादि के विषय में तेरी सत्यता को देख कर तो मुझे और भी अधिक भय होता है। तू आदमी होता तो तुझ में एक आधी–बात तो भी इस में की आनी चाहिये थी। इसी लिये मैं तुझे कुछ नहीं सिखाता।"

मैंने इतनी सच्चाई तथा ईमानदारी से व्यवहार किया, इसकी यह इनाम मिली कि, मेरा शिक्षण भी बंद हो गया।

उस्ताद वज़ीर ख़ां का गंडाः—

मैं वहीं समीप ही की एक मस्जिद में, नियमित रूप से सायं-काल नमाज़ पढने के लिये जाया करता था। वहां के मुल्ला साहब बहुत ही सज्जन पुरुष थे; तथा धार्मिक–भाव से उनके प्रेम ने मेरे हृदय में घर कर लिया था। घर पर मेरा शिक्षण बंद हो जाने का कारण, मैं पुनः गुरू की खोज में निकल पड़ा। उस समय राम पुर में उस्ताद वज़ीर ख़ां ही सबसे अधिक गुणी माने जाते थे। उनके गंडा–बंद शिष्य रामपुर के स्वयं नवाब साहब थे। ख़ां साहब भी बड़ी नवाबी शान से रहते थे। मैं ४–५ महिने तक प्रति दिन उन ख़ां साहब के घर के सामने इस आशा से जा कर खड़ा रहता कि संभव है, कभी संयोग वश उस्ताद जी मेरी ओर देख लें। परन्तु उस्ताद जी के द्वार पर सिपाहियों का पहरा

था। मुझे भीतर कोई जाने ही नहीं देता था। उस्ताद जी के बाहर जाते समय मैं नियमित रूप से उन्हें सलाम करता, फिर भी मेरे जैसे निर्धन विद्यार्थी पर दृष्टि तक नहीं डालते थे। अन्त में, मैं जीवन से ऊब गया। इतने वर्षों तक यातनायें भोगीं। एक भिखारी की भांति सड़क पर बैठते हुए सदा व्रत को अन्त खाया, और समस्त परिवार को अप्रसन्न किया। यह सब किस लिये केवल मन इच्छित–संगीत सीखूं, इस ही लिये न। पर, इस संसार में वह कौन सिखाये? केवल एक नानू गोपाल से भेंट हुई। वे भी अभाग्य–वश मेरे शिक्षण समाप्त होने के पूर्व ही स्वर्ग सिधार गये। इधर मैं शीघ्र सीखने लगता हूँ, इस अपराध में अहमद अली सा: के घर में मुझे सिखाते ही नहीं। मैंने सारी रातें रोत बिताईं; तथा आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया। दो रुपये की अफीम ले आया। विचार किया कि सायंःकाल की नमाज हुई कि, अफ़ीम ले मर जाऊंगा। जब मस्जिद में गया, तो मौलवी साहब ने मेरा दुःखित चेहरा देख कर मुझे अपने समीप बुलाया और उन्होंने अत्यन्त व्यथित होकर मेरे दुःख का कारण पूछा। उन के इस प्रेम युक्त व्यवहार को देख, मेरा हृदय गद्‌गद् हो गया; तथा मैंने उदार हृदय से सारी व्यथा पूर्णरूप से कह सुनाई, और अन्त में मोल लाई हुई अफ़ीम भी दिखादी। मौलवी साहब ने मुझे समझाने का बहुत प्रयत्न किया। उन्होंने कहा, "आत्महत्या यह सबसे महान् पाप है। संसार के महान पापों में इसकी गणना है। तुम धैर्य धारण करो और जो प्रयत्न तुम करते हो, इस में ईश्वर तुम्हारी अवश्य सहायता करेगा (हिम्मते मर्दां, मददे खुदा) मैं तुझे एक मार्ग बताता हूँ। अपने राम पुर के नवाब, गायन के बड़े प्रेमी हैं। वे स्वयं उत्तम ध्रुपद–धमार गाते हैं। मैं तुझे विनंति-पत्र लिख कर देता हूँ, जिसे तू रजवाड़े में जाकर नवाब साहब के हाथ में रखदे। संध्या समय नवाब साहब कभी–कभी थिएटर के लिये जाते हैं। तुम बाड़े के बाहर खड़ा रहना व अवसर पाकर विनंति पत्र सादर दे देना।"

मुझे यह मत पसंद आया। चार–पांच दिन तक नाबाब साहब की मोटर अन्दर से आती अवश्य, पर हवा की भांति चली भी जाती थी मैं वहीं का वहीं खड़ा रहजाता। एक दिन उस्ताद वज़ीर खां का लिखा हुआ नाटक देखने नवाब साहब की सवारी जाने वाली थी। उस दिन रजवाड़े में कुछ समारोह था, जिसके कारण गांव के समस्त अमीर उमरा अपनी-अपनी मोटरें लेकर रजवाड़े में आये थे। उनकी मोटर जा रही थीं, और पीछे-पीछे नवाब साहब की मोटर धीरे-धीरे आ रही थी। बस, यही अवसर पाकर मैं मोटर के सामने जा खड़ा हुआ और उसे रोक लिया। आस-पास के लोगों में यह देखकर कोलाहल मच गया। उस समय बंग देश में स्वदेशी प्रचार की हल चल मची हुई थी। विदेशी अधिकारी-वर्ग पर बॉम्ब फेंके जाते थे। मुझे, एक बंगाली ने नवाब साहब की मोटार रोकली है, यह देखते ही पुलिस दौड़ती आई। मुझे दो थप्पड़ लगाकर पकड़ लिया, तथा नवाब साहब के समक्ष मुझे उपस्थित किया गया। इतना ही अवसर पाकर मौलवी साहबकी दी हुई वह विनय-पत्रिका मैंने नवाब साहब के सामने फेंक दी। वह पत्रिका नवाब साहब ने अपने सेक्रेटरी को पढ़ सुनाने के लिये दी। उसमें संगीत शिक्षण के निमित्त भुगती हुई यातनाओं का वर्णन था। अंत में अफ़ीम खाकर आत्म-हत्या का संकल्प भी उसमें लिखा हुआ था। जब वह सब पढ़ा जा रहा था, तो नवाब साहब के मुख पर हास्य की क्षीण रेखा दृष्टी गोचर होने लगी और फिर उन्होंने अंत में मुझसे पूछा, "अफ़ीम कहां है?" मैंने जेब से अफ़ीम निकालकर दिखा दी। उसी समय मुझे मोटर में लेकर नवाब साहब रजवाड़े में ही चले गये। नवाब साहब ने पूछा, "तुम्हें कौन–कौन से वाद्यों का वादन भली प्रकार आता है?" मैंने पांच–छः वाद्यों के नाम लिये और उन्होंने वे सब वाद्य मंगवाये। मेरी परीक्षा फिर एक बार आरंभ हुई। मैंने क्लॅरीनेट, कॉरनेट, शहनाई, तथा इसराज इत्यादि वाद्य बजाकर दिखाये। अन्त में व्हायोलीन रह गई थी। मैंने जब वह बजाना आरंभ किया, तो नवाब साहब प्रसन्न हो गये। उन्हें, इस बात पर आश्चर्य हुआ कि, मैं इस इंगलिश वाद्य पर भी हिन्दुस्तानी–संगीत इतनी सफ़ाई से बजा सका। उन्होंने स्वयं ध्रुपद–धमार गाना आरंभ कर दिया और मैंने भी उनकी बराबर साथ की। उन्होंने पूछा, "तुम्हें टप्पा आता है क्या?" मैंने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया, "मुझे टप्पा नहीं आता; परन्तु, यदि श्रीमान् कोई टप्पा गायेंगे, तो मैं साथ करने का अवश्य प्रयत्न करूंगा। बस, फिर क्या था? नवाब साहब ने एक टप्पा आरंभ किया। मैंने इससे पूर्व टप्पा कभी सुना भी नहीं था। टप्पे में आने वाले तान के वे मनोहर टुकड़े मुझसे ठीक–ठीक बजाते न बने। मैंने व्हायोलीन नीचे रख दी और हाथ जोड़कर नवाब साहब से कहा, "मैंने आप से हार मानली।

यह रचना मुझ से बजना संभव नहीं।" मेरी जब यह परीक्षा चल रही थी, तो दरबार के समस्त गवैये वहां जमा होकर यह तमाशा देख रहे थे। नवाब साहब प्रसन्न हो गये। मैंने उनसे प्रार्थना की कि, मुझे उस्ताद वज़ीर खां साहब का शिष्य बनवा दें। नवाब साहब ने मोटर कर रात्री को ही वज़ीर खां साहब को बुलवाया। रजवाड़े से उन्हें एक हज़ार रुपये तथा वस्त्र इत्यादि दिये गये और मेरे उनका गंडा बंध गया। उस्ताद वज़ीर खांने गंडा बांधते समय मुझसे यह प्रतिज्ञा कराई, "मैं वेश्याओंके घर कभी न जाऊंगा। उनके घर खाना भी नहीं खाऊंगा और न उन्हें सिखाऊंगाही।" यह शपथ लेने परही उन्होंने मेरे गंडा बांधा था। समस्त एकत्रित लोगों में मिष्ठान्न वितरण किया गया। नवाब साहब ने उस्तादजी के घर समीप ही एक घर में मेरे रहने की व्यवस्था कर दी; परंतु अभाग्यवश वे खानेपीने की व्यवस्था करना भूल गये।

मेरे उस्ताद वज़ीर खां के शिष्य हो जाने से केवल इतना ही अंतर पड़ सका कि, इतने दिनों, मैं घर के बाहर खड़ा रहता था और अब मुझे घर के भीतर जाने की आज्ञा मिल गई थी। शिक्षण का नाम तक न था। प्रति दिन सुबह ७ बजे उस्ताद जी के घर जाता; १२ बजे तक बाट जोहता, फिर घर वापस आ जाता। यह कार्य-क्रम आरंभ हो गया। मैं उस्ताद जी के पानदान तथा पद-त्राण नियम से प्रति दिन स्वच्छ करने लगा। इतनी स्वच्छता देख कर उस्ताद जी प्रसन्न हुए, तथा यह सब नौकर करते होंगे समझ कर, वे उनकी प्रशंसा करने लगे। परंतु अब्दुल रहीम नामक उनके एक कारबारी ने कहा कि यह सब काम, वह नवीन बंगाली शिष्य करता है इस पर नौकर मुझसे रुष्ट रहने लगे। अब्दुल रहीम जाति के नाई थे, पर उनका एवं हमारे उस्ताद जी के घराने का, एक विचित्र संबंध था। हमारे उस्ताद जी के घर ये लोग पीढ़ियों से नौकर रहे हैं। घर में हुजरे के कार्य से लेकर खज़ानची के कार्य तक, सारे काम ये ही देखते भालते थे। इन्हें घर पर संगीत-विद्या की उत्तम शिक्षा मिलती थी; परन्तु वह कलाकार होकर बाहर गायन-वादन करने के लिये नहीं वरन् यदि उस्ताद जी की कोई चीज़ कभी भूल गए, तो उसका स्मरण कराने के लिये, अथवा यदि घर का कोई आदमी अचानक मर गया, तो उसकी संतान को उसके घराने की विद्या बताने के लिये ही थी।

इस प्रकार २॥ वर्ष व्यतीत हो गये, पर मुझे किसी ने भी कुछ न सिखाया। फिर भी वह समय व्यर्थ नहीं गया। मुझे एक दूसरे ही ढ़ंग से विद्या प्राप्त होने लगी और वह ऐसे :

मेरे ही घर संगीत-यत्न:—

रामपुर के नवाब साहब विलायत से शिक्षा लेकर आये थे। वहां के थिएटर में भव्य ऑर्केस्ट्रा उन्होंने देखा था। उन्होंने, रामपुर में भी ऑर्केस्ट्रा निर्माणकर बड़े-बड़े वादनकार नौकर रखछोड़े थे। लखनऊ के रज़ा हुसैन नामक विद्वान कलावंत की नियुक्ति प्रमुख मास्टर के रूप में हुई थी। रज़ा हुसैन नामी धृपदी थे, व सहस्रों ध्रुपद-धमार उन्हें याद थे। ये सब गुणी लोग आर्केस्ट्रा बजाते थे। वहां मैं कभी-कभी जा खड़ा होने लगा। यद्यपि ये लोग अपने-अपने वाद्य में निपुण थे; तो भी आर्केस्ट्रा में वे क्या बजा पाते? एक बार रज़ा हुसैन ने मुझे देख कर व्हायोलीन मेरे हाथ में दे दी और बजाने के लिये कहा। मेरा वादन सब के मन भाया। रज़ा हुसैन गायक तो बड़े नामी थे, फिर भी उनसे ऑर्केस्ट्रा का कार्य कैसे सध सकता था? ऑर्केस्ट्रा में ध्रुपद-धमार बजा कर क्या आनंद आ सकता था? फिर रज़ा हुसैन मुझे घर ले गये, तथा मेरी सलाह लेने लगे। मुझे कलकत्ते में रंगभूमि के संगीत का अनुभव मिल चुकने के कारण, नवीन तथा फड़का देने वाली रातें मैंने उनके ही धृपद में से बनाकर दे दी। बस, इस ऑर्केस्ट्रा की प्रशंसा होने लगी। रज़ा हुसैन मुझसे कहने लगे "मैं तुझे जितनी चाह विद्या सिखाऊंगा, पर ऑर्केस्ट्रा में मेरी सहायता अवश्य कर।" ऑर्केस्ट्रा में ही के उस्ताद लोग मुझे प्रलोभन देने लगे और देखो वही मुझे अपने पास शिक्षण देने के लिये कहने लगे। परन्तु उन सब से मैं ने कहा, "उस्ताद वज़ीर ख़ां साहब का मैंने गंडा बांध लिया है, तो फिर तुम्हारे गंडे क्यों कर बांधूं? यदि वजीर ख़ां साहब को यह ज्ञात हो गया कि, मैं तुम्हारे पास शिक्षा-ग्रहण करता हूं तो, वे मुझे रामपुर की सीमा से भी निर्वासित कर देंगे।" वजीर ख़ांसाहब के विषय में इधर गुणी लोगो में कोई अच्छा मत भी नहीं था। वे कहते थे, "वजीर ख़ां तुझे कुछ भी सिखाने वाले नहीं। वे अपने पुत्र को भी नहीं सिखाते, फिर तेरे जैसे पर-पुत्र को क्या सिखायेंगे?" अंत में, उस्ताद वज़ीर ख़ां की आज्ञा से इसही ऑर्केस्ट्रा में मेरी १२ रु. मासिक पर नियुक्ति हो गई, तथा प्रतिदिन सायंकाल के

समय मैं नौकरी पर जाने लगा। मेरी बनाई हुई गतियां सब को बहुत पसंत आई। रज़ा हुसैन तो इतने प्रसन्न हुए कि, वे मुझे खाने-पीने के लिये भी देने लगे। ऑर्केस्ट्रा में काम करने वाले समस्त विद्वान् लोग भी प्रसन्न हो गये, तथा वे मुझे सिखाने भी लगे। इस प्रकार मेरे ज्ञान में प्रति दिन उन्नति होने लगी।

एक और भांति भी मुझे अत्यंत लाभ हुआ। गांवभर के समस्त उस्तादों को मैं अपने घर बुलाकर हुक्का, पान-तंबाखु इत्यादि देता था। मेरे पास प्रशस्त रूप से स्थान था, जिस में अत्यंत ही स्वच्छ, रखता था। जब ये लोग एकत्रित होते थे, तो सुगंधित ऊद बत्तियां लगा रखता था। मेरे घर स्त्री न होने के कारण पर्दे इत्यादि की भी गड़बड़ नहीं थी। थोड़े ही दिनों में, मेरा घर इन समस्त उस्तादों को इतना मन-भाने लगा कि, हररोज़ रात्रि के ९ बजे, दरबार के गुणी लोग मेरे घर पर नियमित रूप से एकत्रित होने लगे। उस में रबाबी, सरोदिये, बीन कार, तथा सितारिये एवं गायक इत्यादि संगीत की प्रायः सभी शाखा ओं के विद्वान थे। मैंने समस्त वाद्य अपने कमरे में ही रख छोड़े थे। कुछ समय पान खाने तथा हुक्का पीने में बीत जाने के पश्चात्, गाने से ही चर्चा आरंभ होती। कोई किसी एक राग पर आलाप भरता था, तो दूसरा कहता, "यह सही नहीं। मेरे पिता ने तो दूसरी भांति बताया है।" ऐसा कह कर, वह भी आरंभ कर देता। समस्त उस्ताद लोग इस वाद-विवाद में भाग लेते थे। प्रत्येक व्यक्ति उस राग की अपनी-अपनी चीज़े बताता। कभी-कभी अपने पुत्रों को ले आते थे और फिर उन में होड़ लगा-लगा कर गायन-वादन होता। ये सारे गवैये तथा वादन कार मेरे घर पर ही लग-भग १२-१ बजे तक रहते। उन सब के चले जाने के पश्चात्, उस रात्रि जो कुछ भी मैं सुनता था वह लिख लेता था। जो-जो चीज़े गाई जातीं थीं, उन के आरंभ के शब्द मैं स्मरण रहने के लिये नोट कर लेता था। यह सब समाप्त होते-होते, कभी-कभी प्रातःकाल के ३ बज जाते और तब मैं सो पाता था। इस प्रकार सुनी हुई सारी चीज़े उन्हीं उस्ताद लोगों से दूसरे दिन सीख लेता था। यह कार्यक्रम मेरे रामपुर छोड़ने तक चल रहा था; तथा इस प्रकार ही मुझे जी भरकर एवं संतोष-जनक शिक्षा मिली।

वज़ीर खां भी मुझसे प्रसन्न:—

उस्ताद वज़ीर खां का गंडा बांधनेके पश्चात् ढाई वर्ष तक उन्हों ने कुछ भी नहीं सिखाया, यह मैं पहिले बता चुका हूँ इस काल में, एक प्रसंगवश उनका मन मेरी ओर भी आकर्षित हुआ; फिर वास्तव में उन्होंने तथा उनके पुत्र, दोनों ने ही मुझे शिक्षा प्रदान करना आरंभ कर दिया।

मैंने यह भी बताया है कि, मेरा दूसरा विवाह भी हो चुका था। मैं वापस लौट कर नहीं आता था, इस दुःख के कारण मेरी द्वितीय पत्नी अपने जीवन से ऊब गई थी। उसने तीन बार गले मे फांसी लगाने का प्रयत्न किया; परंतु, मेरी भी की सावधानी के कारण तीनों ही बार उसे बचा लिया गया। इस सब का उसके अंतः करण पर यह प्रभाव पड़ा कि, यकायक एक दिन उसकी हृदय-क्रिया सदा के लिये निःस्तब्ध हो गई और वह मृत्यु लोक को सिधारी। यह समाचार तारा द्वारा मेरे भ्राता आफ़ताबु-द्दीन ने उस्ताद वज़ीर खां केपास पहुँचा दिया।

इसपर वज़ीर खां साहब ने मुझे बुला कर पूछा, "तुझे शागिर्द बने कितने वर्ष हुए? इस समय में तूने क्या सीखा?"

मैं :— "कुछ भी नहीं, हुजूर।"

खां साहब :—"क्या तेरा विवाह हो गया है?"

मैं :—"हां एक ही नहीं, दो विवाह हो चुके हैं।"

खां साहब :—"फिर तू घर जाकर सांसारिक जीवन व्यतीत क्यों नहीं करता?"

मैं :—"हुजूर, मुझे तो संगीत सीखना है। वह पूर्ण हुए तक मुझे चैन नहीं आ सकता, फिर अपने मन की ऐसी स्थिती में सांसारिक सुख किस प्रकार भोग सकता हूँ? इस विद्या के हेतु ही मैं केवल आठ वर्ष की अवस्था में ही घर से भाग निकला था। परन्तु, आज तक मनोवांछित शिक्षा नहीं मिल सकी। बस, इसी आशय से मैंने आपके भी पास आकर, आपके पैर पकड़े थे। जब आपकी इच्छा होगी, आप मुझे अवश्य विद्या-दान देंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। फिर भी अपने घर लौट जाना, तथा स्त्री-भार संभालना, एवं सुख-पूर्वक सांसारिक-जीवन व्यतीत करना, यह सब आपके ही हाथ में है।"

इस उत्तर के सुनते ही उस्तादजी प्रसन्न हो गये। तदनन्तर मेरी द्वितीय पत्नी के अनायास निधन का उन्होंने समाचार मुझे बताया और अपने तीनों पुत्रों को बुलाकर मुझे शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा दी। उस्ताद जी के ज्येष्ठ-पुत्र प्यारे खां ध्रुपद गाते थे और मैं उनके साथ मृदंग बजाने लगा। इस प्रकार वे नियमित रूप से मुझे सिखाने लगे। उस्ताद वज़ीर खां मेरे कन्धे पर हाथ रख कर अपने बाग में सैर करते समय मुझे पर्याप्त विद्य

जिसने चार पांच वर्षों में मुझे पर्याप्त विद्या मिल गई। एक दिन उस्ताद जीने मुझे बुला कर कहा, " अब तेरी शिक्षा पूर्ण हो गई है | तू देशाटन के हेतु जा, तथा जहां अवसर मिले वहां महफ़िलें जमा और देश के गुणी जनों की विद्या को सुन; बस तू निपुण हो जायगा।"

मैं अपनी आठ वें वर्ष घर से निकालने के पश्चात् १४ वें वर्ष विद्या-अध्ययन समाप्त कर तथा गुरु जीका आशीर्वाद ले, देशाटन के लिये निकल पड़ा। फिरते फिरते १९११ के लगभग कलकत्ते पहुंचा। वहां अनेकों बार मेरे संगीत-प्रदर्शन का अवसर आया, तथा अच्छे-अच्छे मित्र गण भी मिले।

श्याम लाल खत्री, ये कलकत्ते के एक सद्गृहस्थ, तथा गणपत भैया के शिष्य थे। उनके परिचय के अनेकों बड़े-बड़े लोग थे। मैहियर संस्थान के अधिपति महाराज बृजनाथ सिंह, को एक संगीत शिक्षक की आवश्यकता थी। परन्तु, वह शिक्षक ऐसा चाहिये था, जो गायन तथा कम से कम चार-पांच वाद्य सिखा सके। श्याम लाल खत्री ने मेरे विषय में सुना था, और एक दिन मेरे सरोद, स्वर बहार, वायोलीन, क्लैरोनेट, इत्यादि वाद्य सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने एक पत्र लिखा और मुझे मैहियर पहुँचा दिया।

मैहियर में आगमन :—

महाराजबृजनाथ सिंह ने, मेरे समस्त वाद्यों को सुना और १५० रु. मासिक वेतन एवं रहने के लिये घर देकर, अपने ही पास रख लिया। उन्होंने रीति के अनुसार मेरा गंडा बांध लिया; परन्तु मैंने वह गंडा वज़ीर खां सा: के पास से लाकर बांधा था, अतः मिली हुई समस्त वस्तुएं गुरुजी के पास भेज दी।

संसार-सुख :—

मेरी प्रथम पत्नी अभी जीवित थी। उसके भाई उससे दूसरा विवाह करने के लिये आग्रह करने लगे। मेरी पत्नी ने विरोध किया और कहने लगी, "स्त्री का विवाह उसके जीवन में केवल एक ही बार हो सकता है। सो मेरा हो चुका है। अतः तुम मुझे मेरी ससुराल भेज दो।" उसके भ्राता इसबात को मानते ही नहीं थे। अन्त में, उसने अनशनकर दिया और इस प्रकार एक सप्ताह बीतने पर, वे घबराये, तथा उसे शिवपुर लाकर हमारे द्वारपर छोड़ गये। मैंने मैहियर की नौकरी स्वीकार करली है, यह समाचार पाते ही, मेरे भ्राता ने उसे मैहियर लाकर मुझे सौंप दिया। मेरी पत्नी के आगमनसे ही मेरे सुखी-संसार का श्रीगणेश हुआ। अपने बच्चों को मैं बालक पन से संगीत-शिक्षा देता था। अपने पुत्र को बी. ए. तक शिक्षा दिलाऊं ऐसा मैंने सोचा; परन्तु अली अकबर मैट्रिक के पश्चात न पढ़ा। उसे संगीत अत्यन्त प्रिय होने के कारण, वह सरोद पर ही अधिक रियाज़ करने लगा।

अन्नपूर्णा तथा पं. रवि शंकर:—

मेरी पुत्री अन्नपूर्णा को मैं बचपन से ही संगीत-शिक्षा देता रहा। लगभग २,००० ध्रुपद धमार का संग्रह उसके पास हो गया था। वह स्वर-बहार नामक वाद्य को बड़ी अच्छी प्रकार से बजाती है। फिर रवि शंकर मेरे घर सितार सीखने के लिये मेरे यहाँ रहने लगे। वे मुझे बहुत ही प्रिय लगे और उन्होंने भी सितार पर मेरे कथानुसार परिश्रम कर दिखाया। जिस समय एक ओर मेरा पुत्र अली अकबर बीच में अन्न पूर्णा तथा उसके समीप रविशंकर मेरे समक्ष शिक्षणार्थ आ बैठते थे, उस समय मुझे इतना आनंद होता था कि, कितनी ही बार छ: छ: घन्टे व्यतीत हो जाने का भी मुझे भास तक न होता था। कभी-कभी ऐसा मन ही में प्रश्न उठता था कि, जब इस मानव-लोक में ही मैं इस नाद-सागर में इस प्रकार आनंद भोग कर रहा हूं; तो इन्द्र-सभा में, जहाँ गंधर्व एवं किन्नर गाते हैं और अप्सरायें नृत्य करती हैं, कितना आनंद ही आनंद होगा। मेरी पुत्री पर मेरा विशेष प्रेम था। इन तीन बच्चों को सिखाते समय, मेरे हृदय में यह विचार उठने लगा कि, मुझे यदि रविशंकर सा जामात्र मिले, तो मैं कितना सुखी तथा भाग्यशाली होऊंगा? परन्तु यह हो भी तो कैसे? फिर भी, एक दिन डरते-डरते यह बात मैंने रविशंकर के कान में डाली, उसने भी तत्काल ही स्वीकृति दे दी, और अपने ज्येष्ठ भ्राता अर्थात् उदयशंकर की अनुमति प्राप्त कर लेने का भार मुझे को सौंप दिया। उदयशंकर ने भी भाग्य-वश मेरी बात मान ली और मुझे पूर्वजों के पुण्यों के प्रताप से रविशंकर जैसे ब्राह्मण जामात्र मिल सके।"

उस्ताद जी:—

अल्ला उद्दीन ख़ां साहब से परिचित लोगों तथा उनके शिष्य गणों में वे "उस्ताद जी" के नाम से ही विख्यात हैं। उनकी आयु आज कोई ७६ वर्ष की होगी, फिर भी स्वास्थ्य अत्यन्त सुदृढ़ है। हुक्केके अतिरिक्त किसी भी प्रकार का उन्हें व्यसन नहीं है। उनका

अनिर्वचनीय हैं। वे आज भी ४–५ घंटे महफिल को मस्त बना दे सकते हैं। उनका स्वभाव अत्यंत ही विनयशील होने के कारण, जो भी कोई उनके पास गया, उसे साथ वे अत्यंत ही आदर पूर्वक व्यवहार करते हैं।

उन्हें अभ्यास से विचित्र-प्रेम हैं। वे प्रातः शीघ्र ही उठकर सरोद पर परिश्रम करते हैं और उन्हें जितना भी ज्ञान प्राप्त हुआ हैं वेह अपने ही हाथ से बंग–भाषा में उन्होंने नोटेशन करके लिख रखा है। उनके पास ३०००–४००० चीजों का (ध्रुपद – धमार इत्यादि) संग्रह सहज ही होगा।

उन्होंने स्वयं ८ वें वर्ष की आयुसे ३४ वें वर्ष तक अनेकों कष्ट फेल कर विद्या –संपादन किया; परन्तु उस विद्या को प्रदान करते समय, वे अत्यन्त ही उदारता पूर्वक दे डालते हैं। उनका मत हैं जिनउन्होंने यातनाओं को भोग लिया हैं, हमारी आने वाली पीढ़ी को वे ही फिर न भोगनी पड़े। कोई भी विद्यार्थी उनके पास यदि जा पहुँचा, तो उसे वे विमुख कभी भी नहीं लौटाते। जो निर्धन होता, उसे भोजन इत्यादि भी देते परंतु यदी वह परिश्रमी न निकलता तो उस्तादजी को वह असह्य होता।

उस्ताद जी की कला भावना-मय है। वे स्वयं उसमें मग्न हो जाते हैं। उनके वादन में तनिक भी उच्छृंखलता नहीं। उनकी कला में श्रोता गणों का मन मग्न हो जाता हैं। परंतु उस तन्लीनता में भावुकता ही प्रधान होती है। कुछ कलाकार इतने रंगीले होते हैं कि उनकी कला से केवल शृंगार पूर्ण विचार ही श्रोतागणों के मन में भरने लगते हैं; परंतु उस्ताद जी की वादन-कला में वह चुलबुल पन न होने के कारण उनकी कला एक गंभीर एवं शांत वातावरण निर्माण करती है। वे लय के समय यदि मौज में आकर कुछ हेर-फेर करने लग जाते हैं, तो तबले वाले को ठेका लगाना भी दुश्वार हो जाता है। उनके पास द्रुत-गति की भी इतनी-कला-प्रिय गत है कि, उनके सुनने पर किसी सुंदर एवं अल्हडबच्चे के आनंद-मग्न हो नाचने-कूदने की नृत्य-लीला स्मरण हो उठती है। आरंभसेही, केवल लोगों को खुश करने के अभिप्राय से उनकी पसंद की द्रुतगतियां व चुलबुले पन की तैयारी वे कभी नहीं बजाते यदि उससे किसीने एक–आध औषड़ एवं अप्रसिद्ध राग की याचना की तो वे सहर्ष उसे बजा उठते हैं। बीच ही में यदि लहर आगई तो अपरिचित राग भी वे स्वयंही आरंभ कर बैठते हैं। परन्तु श्रोतागणों को वह समझ में नहीं आता देख, स्वयं ही उस राग का नाम और ध्रुपद भी गुनगुना कर बताते है।

उत्तर–भारत–खण्ड में उनके दो एक विरोधियों ने द्वेष–वश मुझसे कहा कि, उस्ताद जी सरोद पर मृदंग एवं तबले के बोल बजाते हैं। इस कारण मैंने उनका वादन ध्यान–पूर्वक सुना। परन्तु यह आरोप निपट मिथ्या एवं व्यर्थ है, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने इतने बडे गुणी जनों के सरोद एवं रबाब वादन पर ध्यान से अभ्यास किया है कि, यदि श्रोतागण अच्छे हुए, तो वे स्वयं प्रत्येक उस्ताद का नाम ले लेकर, वे किस प्रकार बजाते थे, बजाकर दिखाते हैं। रबाब में मृदंग की गत नये–नये रागों के रूप में बजाई जाती है। इस वाद्य पर जोड़ काम नहीं बज पाता। उन्हें रबाब का स्मरण होते ही वे मृदंग की गतका मुंह से उच्चारण करते तथा सरोद पर बजा कर दिखाते हैं। मृदंग की गत के उच्चारणका जिनकी समझ में नहीं आता वे उनपर उपर्युक्त आरोप करते हैं।

ईश्वर, उस्ताद जी को अनंत अयु प्रदान करें, तथा संगीत–कला की उनके द्वार सदा ऐसीही सेवा कराये!

—×—

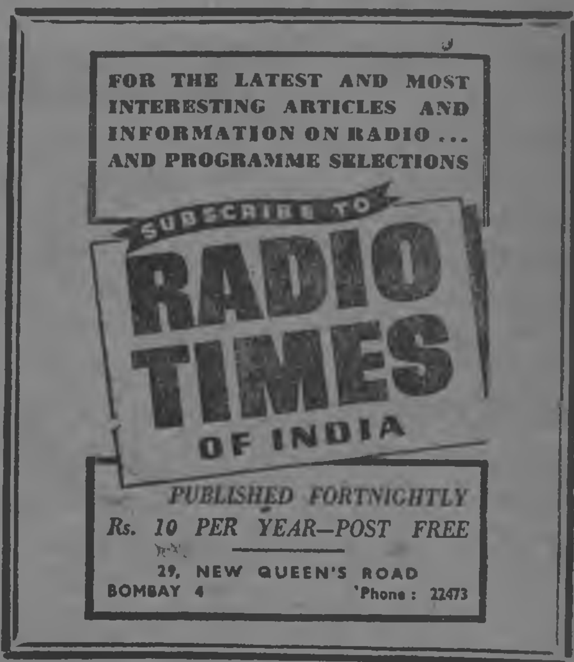

प्रसिद्ध सनई-वादनकार गणपतराव वसईकर

[आदरणीय -स्मृति]

[ले:-- र. कृ. फड़के, शिल्पकार.]

शिल्पकार र. कृ. फड़के से हमारे वाचक भली प्रकार परिचित हैं। उनकी 'आदरणीय-स्मृति' नामक लेखमाला का निम्न-लेख का स्वागत सदैव की ही भांति होगा, ऐसी हमें आशा है।

यह लेख कई मास पूर्व हमारे पास आ चुका था, किन्तु कुछ कारणों से यह इससे पहिले प्रकाशित नहीं हो सका। इस के लिये हमें बड़ा खेद है; क्यों कि इस परिचयात्मक लेख से सम्बन्धित व्यक्ति, बड़ौदा के सुप्रसिद्ध सनईवादनकार, कै. गणपत पिराजी पंडित, गत् २५ अक्टूबर को ८६ वर्ष की अवस्था में, इस लेख के प्रकाशित होने से पूर्व ही परलोक-सिधार गये। पिछली पीढ़ि के लोग कै. गणपतराव जी की सनई-वादन-कला से पूर्ण परिचित थे। जल्सों में गवैयों के व्यास-पीठ पर सनई बजाने वाले, ये पहिले ही कलावंत थे। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।

—संपादक

(मूल मराठी से रा. कि. भटनागर द्वारा हिन्दी में भाषान्तरित)

हर एक का एक न एक बाल-मित्र होता ही है; तथापि वह मैत्री अन्त पर्यन्त अखंड बनी रहने के उदाहरण बिरले ही होंगे। ऐसे अपवादात्मक विशेषता ओं में, मुझे अपने एक बाल-मित्र की गणना मुख्यतः करना पड़ेगी।

मेरी आयु के सातवें वर्ष से ले कर आज पर्यन्त इस मित्र की आनन्द-दायक संगति भूलने योग्य नहीं। ऐसा निरपेक्ष, निरुपद्रवी, रंजन-तत्पर मित्र बस, एक ही। उसके साथ रह कर प्राप्त आनंद, जिसे अनुभव हो, वही जाने!

मेरा संगीताभिरुचि में वृद्धि कर के, मेरा नामी-गुणी महा-पुरुषों से परिचय करा देने का कारण, वही हुआ। उसे प्रसन्न करने की मेरी इच्छा यद्यपि अतृप्त रह गई, फिर भी उसके प्रति मेरे निष्कपट प्रेम में बाल-भर भी अन्तर नहीं आया है।

यह स्मरणीय बाल-मित्र कौन है? यदि, यह बताना ही पड़ा, तो उसका नाम विस्मय कारक होते हुए भी, मैं निःशंक होकर कहूँगा कि, 'तबला' ही मेरा विशेष बाल मित्र है और यदि उसे मेरी हस्तगत का अनुभव होगा तो वह इस सत्य को अस्वीकार नहीं करेगा।

इस सन्मित्र से जिन्होंने पहली बार पहचान कराई, उन बड़ौदा दरबार के प्रसिद्ध सनई वादन कार, श्री. गणपतराव पीराजी पंडित जी का, प्रस्तुत लेख में अल्प-परिचय कराने का ही विचार है।

ये कलावंत मूलतः हमारे ही गाँव के होने के कारण 'वसईकर' के नाम से ही विशेषतः प्रसिद्ध हैं और इससे आपको भी सगर्व संतोष होता है। इसी प्रकार बचपन के गणपत को अब **गणपतराव**, यह गौरव-पूर्ण सम्बोधन पर वसईकर को भी गर्व होता है। आयु में बड़े होने के नाते गणपतराव जी को 'नाना' कहने वालों में से एक मैं भी हूँ।

श्री. गणपतराव जी के घराने का मुख्य-व्यवसाय सनई-वादन ही होने के कारण, शालेय-शिक्षण के साथ ही इस विषय की थोड़ी-बहुत शिक्षा भी उन्हें मिल चुकी थी। सनई (शहनाई) की साथी के ताल-वाद्य वे बजाने लगे थे। इस के अतिरिक्त तबला-वादन का शिक्षण भी उन्हें प्राचीन पीढ़ि के एक नामवंत गुरु से प्राप्त हुआ था।

गणपतराव जी का रहन-सहन वगैरह पहिले सेही स्वच्छ एवं व्यवस्थित और कपड़े-लत्ते का शौक अव्वल दर्जे का। कहने का तात्पर्य यह कि, वह ऐश ऐशो आराम के ठाट-बाट का था। जन्मसे सुन्दर होने के कारण; ५-६ सौ आदमियों में भी उस मनहर-मूर्ति पर तुरन्त ही किसी कीभी नज़र पड़ जाती थी, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यद्यपि उनकी आयुका उतार है, देखने से आज भी सत्य सिद्ध हो सकता है।

वे यद्यपि तेज़ स्वभाव के थे, किन्तु उन में मेल और मुरव्वत की भरमार थी। जितने तामसी उतने ही महत्वकांक्षी तथा प्रेम और प्रयत्न निष्ठभी। यही कारण थाकि, उनका व्यवहार आदर्श एवं दूसरे पर अपना सिक्का बैठाने वाला; उनकी बात-चीत जितनी सन्मान युक्त उतनी वस्तु-संगत और योग्य। इस के अतिरिक्त विशेष बुद्धि प्रदत्त चौरस गुणी होने के कारण ही सामान्य स्थिति से वे अपना इतना उच्च उत्कर्ष कर सके। उनके जाति बन्धुओं में इस श्रेणी का अन्य कोई दिखाई नहीं देता। लोग ऐसा कहते हैं कि, अपनी पूर्व आयुष्य में आप कुछ निराली ही वृत्ति के थे। लापरवाही से गुल छर्रे उड़ाना, शान-शौकत और रंग-ढंग इत्यादि व्यसनों से विरक्त हो सकना, बहुतसों के लिये कठिन ही होता है; परन्तु आप इस बात को स्वयं ही स्पष्टतः स्वीकार करते थे कि, उच्च-वर्ग के सान्निध्य के वे इनसे मुक्त हो सके, तथा उनके व्यवहार में भी, उच्च-वर्ग के प्रति विशेष आदर झलकता था।

घर की आर्थिक-स्थिति सामान्य कोटि की होने के कारण, ठीक जवानी के दिनों में ही, उन्हें वसई के देव-स्थान के नक्कारखाने में सात रुपये मासिक पर नौकरी करना पड़ी। उसके अतिरिक्त विवाहोत्सवों में जो कुछ भी मिलजाता था, वही आपकी आमदनी थी। रहन-सहन खर्चाल होने के कारण बाक़ी कौड़ी भी न बचती थी। अन्त तक, यही ढंग रहा।

देव-स्थान के विचारशील पंच समझते थे कि, इस होनहार गणपत को यदि उचित शिक्षण मिलसका तो वह अवश्यःनाम कमायेगा। उस पंच-मण्डली में के एक सद्गृहस्थ का, बम्बई के विख्यात गायक के. नजीर खां साः से विशेष परिचय था। अतः, पंचोंने गणपत को ७ रु. शिष्य-वृत्ति देकर खां साः के पास रखना निश्चित कर लिया। मन चाही वस्तु की व्यवस्था होजाने पर आप मन में एक बड़ी जिज्ञासा लिये, बम्बई के लिये रवाना हो गये।

नज़ीर खां साः बम्बई में अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। गायिकाओं में, उस समय विशेषतः इन्हीं खां साः की तालीमज़ुदा गायिकायें थी और सुप्रसिद्ध श्री. अंजनी बाईने आपसे ही सीखा था। कहा जाता है कि, पं भातखंडे और इन खां साः में बड़ी दोस्ती थी।

गली-कूचों में स्थित, खां साः के निवास-स्थान में, इस हिंदु-रिवाज वाले नये शिष्य के उस उत्साह को, जिसे लेकर वह आया था, भारी आघात पहुँचा। वहाँ का प्रतिकूल वातावरण और रहन सहन देखकर, उस गलीच जगह पर एक दिन बिताना भी उसे दुस्सह प्रतीत हुआ। किंतु, उसकी परिक्षा का वही समय था। वह यदि उन कठिनाइयों का मुकाबला नहीं करता, तो गाँव के पंचों को मुँह दिखाने की भी जगह न रहती और इस अवसर को हाथ से खोने के लिये पेट भी गवाही नहीं देता था। अस्तु, एक और शिक्षण की उत्कट इच्छा और दूसरी और असह्य घृणास्पद भावना के कारण निर्मित कठिन समस्या आपड़ने पर, नितांत मनको मारना पड़ा; तथा इसमें संदेह नहीं कि, वही आगे चलकर उपयोगी सिद्ध हुआ।

गणपतरावजीने पहिले दिन से लेकर अंत तक, आधे-पेट रह कर खां साहब की जो कठोर सेवा की, उसका यदि विस्तार-पूर्वक वर्णन किया जाय, तो एक आश्चर्य-जनक कथा बन जायगी (घर की सफ़ाई से लेकर पीक-दान साफ करने तक के सब काम नित्य-नियम-पूर्वक ठीक-ठीक करने में उन्होंने भूलकर भी कोई कसर नहीं छोड़ी।

इसके अतिरिक्त खां साः की मर्ज़ी रखना, उनकी तामसी-वृत्ति के आगे सिर झुकाये रखना और शिक्षण के लिये मुँह से एक शब्द तक न निकालना; मन-मौजी तबीयत के गणपत को कितनी दुखदायी एवं असह्य लगती होगी, इसकी कल्पना

करना भी संभव नहीं। पहिले चार–छः महिने केवल खिदमत में ही बीत आने के कारण बची मुद्दत की कल्पना डरावनी प्रतीत होती थी, सो अलग।

इस पर भी, कभी–कभी एक अनिष्ट प्रसंग, आता अर्थात् मदिरापान में खां साः का साथ देना पड़ता था। यह पसन्द न होने के कारण, एक दिन एकादशी का बहाना कर दिया। यह प्रयत्न सफल हुआ देख, गणपतरावजी बार–बार इसी युक्ति को काम में लाने लगे। जब गुरुजी को यह पता चल गया कि, एक महिने में केवल दो एकादशी ही आती हैं, तो फिर हमेशा एकादशी ही बनी रहने की नौबत आ पहुँची। अस्तु, यह राम–बाण उपाय भी विफल हो गया।

दिन–भर सेवा–कष्ट कर चुकने के पश्चात्, खां साः के रात–बिरात घर लौटने की बाट जोहते हुए जगते रहना कहा तक संभव होता? किसीने उन्हें बताया कि, यदि थोड़ी सी अफ़ीमखाई जाय, तो आँखों में कुछ जलन सी बनी रहती है; जिससे आँखें पूरी तरह बन्द नहीं हो पाती और निद्रा ज़रा से खटके या आहट के कानों में पड़ते ही तुरन्त दूर हो जाती है। अतः उन्होंने यह प्रयोग भी प्रत्यक्ष कर देखा। दुर्दैव–वश–नहीं, वास्तव में सौभाग्य–वश ही इसका परिणाम कुछ और ही हुआ। एक दिन, अफ़ीम की छोटी–छोटी गोलियों की डिब्बी ठीक खां साः के ही हाथों लग गई। फिर तो कुछ पूछिये ही मत: क्यों कि केवल अफ़ीम की डिब्बी दे देने से ही पीछा न छूटा। क्षमा-याचना तथा सौगन्ध लेने के पश्चात्, उस दिन से उन्होंने फिर अफ़ीम का स्पर्श तक नहीं किया।

इतने पर भी, संगीत सीखने की मूल-जिज्ञासा मन ही मन में जोर मारती रही। निम्न रहस्य-पूर्ण घटना यदि न घटी होती, तो क्या होता; यह कुछ नहीं कहा जा सकता! पंचों के चक्कर में पड़कर, मुझे सिखाने का पचड़ा खां सा: के गले ही न पड़ा होता।

उपर्युक्त रहस्य-मय घटना इस प्रकार है। खां सा: एक गायका को विशेष तालीम देते थे। यह बाई बड़े अच्छे स्वभाव की थीं। उनके पास खां सा: का संदेशा, इत्यादि पहुँचाने के लिये कभी-कदास गणपतराव जी को जाना पड़ता था। अतः उनका उनसे परिचय हो जाने के कारण; उनके मन में, उनके प्रति आदर होता था। बाई भी सद्भाव-पूर्वक उनकी कुशल इत्यादि के विषय में पूछती थीं।

ऐसे ही एक प्रसंग पर उन्होंने सहज ही इनसे पूछा, "गणपत! तुम्हारा सब ठीक चल रहा है न?" इस पर यद्यपि गणपत निरुत्तर खड़ा रहा; किंतु छलकते हुए आँसुओं ने एक धारा के रूप में प्रवाहित हो कर निःशब्द रह कर भी मन की सारी व्यथा कहदी।

'रहिमन' अंसुआ नयन ढरि, सब जी की कहि देत। जाहि निकारो गेहे ते, कस न भेद कहि देय। उनकी यह दशा देख, बाई ने चिंता-ग्रस्त हो कर कहा, "गणपत! पागल की तरह यों रोनेका क्या कारण है? बताते नहीं!" लड़खड़ाते हुए शब्दों में, डरते–डरते जब वह प्रसंग टल न सका, तो उसे सच्ची हकीकत कहनी ही पड़ी और उसने बाई से इस बात का खां सा: को पता तक न चलने देने की नम्र–निवेदन भी की।

गणपत जैसे होशियार, होनहार, व सेवा-निष्ठ शागिर्द के शिक्षण के बाबत खां साः जैसे को इतनी लापरवाही करने पर बाई को क्रोध हो आया। उन्होंने विश्वास दिलाते हुए कहा, "आज रात को, यदि खां सा: तुझे तालीम न दे, तो कल सुबह मुझे बताना।"

करने चले थे कुछ और हो गया कुछ, यह देख गणपत औसान भूल गया। उसने उसी समय बाई के पैरों में सिर रख कर प्रार्थना की; किन्तु बिचारे गणपत यह जानता ही था कि, वह बाई, गुरुजी के आते ही उनसे उसके सम्बन्ध में अवश्य कुछ भला–बुरा कहेगी और फिर उसकी जो भी दुर्दशा हो वही थोड़ी थी।

बस, हुआ भी वैसा ही। खां सा: क्रोध के मारे आग बबूला हो गये और गणपत को उचित दंड मिला। परन्तु, उसी रात से तालीम भी शुरू हो गई। बस, हर रोज रात्रि के समय ही यह तालीम शुरू होती; जिससे रातको पूरी नींद भी न हो पाती और सनई के बड़े आवाज़ के कारण पास–पड़ोस के सोये हुए लोगों की नींद भी हराम हो जाती। अतः सबने तकरार करना शुरू कर दिया। परन्तु, उनकी परवाह न करते हुए, उल्टा तकरार करने वालों को डाट–डपट कर खां साः ने यह छल–वादी तालीम देना बदस्तूर चालू रखा।

पंचों द्वारा स्वीकृत मुद्दत में से बची हुई अल्प–अवधि में ही गुरुजी की कृपा और सेवा–धर्म की पुण्याई से प्राप्त, उतनेही शिक्षण को बहु-मूल्य समझ, गणपतरावजीने कृतज्ञतापूर्वक खां साः से आज्ञा माँगकर आप वापस लौट आये। उस समय गुरू जी की

प्रेम-गागर छलके बिना न रही। तदनंतर जब कभी भी वे खां साहब से मिलने जाते थे,तो खां सा: की आँखों में सदैव प्रेमके आंसूं छलक आते थे। गणपत के मन का पता लगते ही, खां सा: भोजन की थाली पर से भी उठ कर दौड़ते और उसे प्रेम-पूर्वक गले लगा-कर गद्-गद् कंठ से कहते, "तेरा जैसा शागिर्द और दूसरा नहीं और मुझ जैसा निर्दयी बस, मैं ही अकेला हूँ। अब फिर यदि तू मेरे पास रहने को तैयार हो तो, तेरे शिक्षण के विषय में जो मेरी ओर से लापरवाही हुई है, मैं उस सबकी पूर्ति करने को तैयार हूं।"

कोई चीज सीखी जाय तो कैसे, यह गणपतराव से ही सीखने योग्य है। अत: किस प्रकार सिखाया जाय, यह भी वही विशेषतः जानते थे। जो कुछ उन्होंने सीखा, उसके लिये उन्होंने आस्था–पूर्वक घोर परिश्रम किया और वह दूसरों को सिखाते समय उतनीही आस्था प्रकट भी की, उनकी जिसके पास से भी संभव हो, उससे मनपूर्वक सीखने की वृति प्रशंसनीय है। उसी प्रकार संपादित-विद्याधन में किस प्रकार वृद्धि हो, यह वे खूब जानते थे; जिसकी साक्षी उनका उत्कर्ष ही देता है।

संगीतोपासना के लिये शिक्षण की भांति श्रवण–संस्कार की आवश्कता होती हैं। गणपतराव की यह अपेक्षा खां सा: जैसे के पास रह कर बहुत कुछ सफल हुई। वे खाँसा : का गाना भरपूर सुन सकने केसाथ ही उनसे बारंबार मिलने आने वाले ऊनको अन्य कलावंतों को भी सुन सके। ऐसे विविध प्रकार के गुणी जनों की बात–चीत इत्यादि, श्रवणीय होने के अतिरिक्त "वादे वादे जायते तत्व बोध: " के अनुसार वह उपयुक्त भी होती हैं। गणपतराव जी को यह लाभ भी बहुत प्राप्त हुआ था।

ख़ांसा : का घराना उग्र स्वभावका, लापरवाह और हटवादी होने के कारण अन्य गायकों से सबन्ध बहुत अच्छे नहीं थे। इसके कारण यद्यपि झगडे इत्यादि कदाचित् ही होते थे, क्यों कि फिर भी लोग ख़ांसा की योग्यता का उचित सन्मान करते थे। ख़ां सा : व उनके भाई मे जब मुकाबले की ठन जाती, तो उनकी तैयारी की प्रशंसा बिरोधी-दल को भी करना पड़ती। इस सम्बंध में जितनीभी मजेदार हकीकतें कही जायें उतनी ही थोडी हैं। उदारणार्थ एक दो स्मृतियां वर्णनीय हैं।

एक बार, बहुत दूर से कोई निष्णात सारंगी-वादन कार विशेष रूप से खां सा : से मिलने को आये। इतनी दूर से आन का अभिप्राय उन्होंनें नम्रता-पूर्वक निवेदन किया, जिसे सुनकर सब को आश्चर्य हुआ। ख़ां सा : सारंगी भी बजाते थे, वह किसी को भी उस समय तक ज्ञात नहीं था। उन कलाकार महोदय से ख़ां सा : ने कहा कि, सारंगी छोडे हुए बहुत वर्ष हो चुके थे; परंतु उसने अपना आग्रह नहीं छोडा और अंत में साज़ तैयार करने भर के लिये खां साहब ने मोहलत माँगी।

फिर, सारंगी का खोका ढूंढ़ते-ढूंढते वह भाग्यसे ऊपर पड़े हुए लकड़ियों के ढेर में मिल गया। बस, साज़ तैयार हो जाने पर एक दिन वह अपूर्व योग भी आया। इस बैठक में, ख़ांसा : से मिलने के लिये आये हुए कलावंत के अतिरिक्त ख़ांसा : का शिष्य व शिष्य-वर्ग और अन्य जानकार लोग, उत्कंठित आस्था लिये उपस्थित थे। सबका लक्ष्य खां सा: की ही ओर लगा हुआ था, इतने वर्षो तक सारंगी देखनेभर के लिये भी हाथ में नली थी, तो फिर वे बजायेंगे क्या ? इस प्रकार भी कई लोगों ने सोचा होगा; किन्तु यह शंका-कुशंका क्षण भर भी नहीं टिक सकी। खां सा: का सुश्रव्य सारंगी-वादन सुनते सुबह कब बीत गई यह पता तक न चला। मिलने आये हुए वह कलावंत खां सा: का सारंगी वादन सुनकर पूर्णत: सन्तुष्ट होगया और वह उनका शागिर्द भी बनगया। गणपतराव जी कहते थे कि; फिर कभी वैसी सारंगी नहीं सुनी। श्रीयुत गोविन्दराव टेम्बे ने अपने "संगीत-व्यासंग" नामक ग्रन्थ में खां सा: के निर्मल हाथों की ऐसी ही प्रशंसा की है।

इतनी श्रेष्ठ-कोटि का नैपुण्य प्राप्त हो चुकने पर भी सारंगी छोड़ देने का कारण यह बताया जाता है कि, गलेबाज़ व्यक्ति का गाना छोड़कर सारंगी बजाना खां सा: के पिता जी को पसन्द न होने के कारण एक बार गुस्से में उनके मुंह से कुछ अपशब्द निकल पड़े और तभी से खां सा: सपरिश्रम रियाज़ करके एक नाम वंत गायक बने। धन्य, यह असमान्यता।

एक विख्यात बीन कार और ख़ां सा: की रागदारी के किसी स्वर-विशेष पर इतनी तना-तनी हो गई कि, खां सा: ने अपने प्राणों तक की, बाजी लगा दी। गणपतरावजीने उन्हें बड़ी मुश्किल से शान्त किया, दूसरे दिन की महफिल में ख़ांसा : व बिनकार दोनों एक दुसरे के गुणों पर प्रसन्न हो कर, एक दूसरे से खूब गले लग कर मिले।

एक बार, किसी श्रीमंत के यहाँ बैंठक के समय पक्के पान के बीडे न मिलने के कारण ही, बिदा यगी की भी परवाह

न कर के वे उठकर वहाँ से चल दिये और अपनी ही पहचान के एक दूसरे ही आदमी के यहाँ आप रात-भर खुशी से गाते रहे।

पहिले के इस प्रकार की वृत्ति के गायकों की महत्ता, निस्पृहता, और स्वात्माभिमान के आगे, उनके दोषों का कोई स्थान ही नहीं रह जाता। खां सा: के घराने में से अब अमान अली खां सा. बचे हैं। आप मेरे विशेष परिचित मित्र हैं। उनका गला यदि ठीक बना रहता, तो इस घराने की गायकी आज भली प्रकार सुनी जा सकती थी। श्रीमती अंजनी बाई ने भी कई वर्षों से गायन का व्यासंग छोड़ दिया है। इस ओर के लोगों में से जिन्हें खां सा: ने अपने गायन का वैशिष्ठ दिग्दर्शित करने के लिये, अपनी कला का थोड़ा-बहुत श्रवण कराया है; उन्हें वह प्रशंसनीय प्रतीत होने के कारण उनके पास सीखने की इच्छा होती है।

यद्यपि इस उपर्युक्त अल्प वर्णन के कारण थोड़ासा विषयांतर दोष अवश्य हुआ है; किन्तु उससे अपने उस्ताद जी के प्रति गणपतराव जी की श्रद्धा और सन्मान स्पष्टतः प्रकट होते है। खां सा: के विचित्र स्वभाव की हकीकत का वर्णन करने में भी गणपतराव का भक्ति-भाव ही प्रकट होता है। यद्यपि उन्हें परेशानियाँ उठानी पड़ी; किन्तु वे कृतज्ञता-पूर्वक यह स्वीकार करते थे कि, उन सबका भी, खां सा: के आशीर्वाद से, परिणाम हितकारी ही हुआ।

अब संक्षेप में, गणपतराव जी के तबला-वादन के वैशिष्ठ का वर्णन किया जाय, तो वह बस उन्ही का होगा। वह सीख कर भी वह किसी को पूर्णता ग्राह्य नहीं हुआ। वे केवल साथ देने लायक ही सीख पाये हैं। वे स्वतंत्र रूप से तबला नहीं बजा सकते. अतः उस्तादों की श्रेणी में उनकी गणना नहीं होगी. इतना ही नहीं, उनकी तारीफ़ करना. उस्तादों के संबंध में गुस्ताखी होना संभव है। कायदे के अनुसार रियाज़, अपूर्व तय्यारी, प्रशंसनीय याद-दाश्त, लयकारी की अजब करामत; इत्यादि उस्तादी-वादन कारों का सा विशेष उल्लेखनीय गुण, नाना के पास विशेष-रूप से नहीं था, यह मुझे भी निष्पक्षतः कहना पड़ेगा। बस, इतना कह चुकने के पश्चात्, उनके साथ-संगति के कौशल्य की सिफ़ारिश करना अवास्तविक नहीं कहा जा सकेगा।

कोई कैसा भी गायक अथवा वादनकार क्यों न हो, उसे किसी न किसी तरह संभालकर महफ़िल रंगाये रखना, साथ-संगति का यह रहस्य गणपतराव को आत्म-सात सा हो गया था। उनकी साथ जिसने भी सुनी है, उन्हें यह कहना पड़ता है कि, वे तबलेकी अपेक्षा गाना ही बजाते थे, या प्रत्यक्ष हाथों की बजाय वे सिर से ही तबला बजाते थे। सीधे-साधे टुकड़े मुखड़े के रूप में गाने की तरह अघात, मार्दव, व चटक देकर, विविधता, रंजकता और लालित्य पैदा करने में गणपतराव के हाथों के लिये एक हतखण्डा ही था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

गायन, कीर्तन, भजन व नाटक इत्यादि विविध प्रकार की साथ उन्होंने खूब की थी। अतः उनका हाथ बिना हरकत के उतनीही मुलामियत के साथ फिरने लगा था कि, किसी प्रकार की भी कमी प्रतीत न होते हुए उनकी मज़ेदार रंगत विशेषतः चित्ता कर्षक थी। गणपतरांव के तबला हाथ में लेने की देर थी कि, बस उसी लोगों को पहिले से ही महफ़िल का रंग दिखने लगता था शरीर की नैसर्गिक सुडौल बनावट, दर्शनीय पहनाव, व प्रसन्न-भाव प्रदर्शन; इत्यादि अनुकूल बातों की भरमार होने के कारण श्रोताओं का ध्यान आपसे उनके वादन की ही और आकर्षित हो जाता था। चाहे किसी की भी, चाहे किसी भी ताल में बेमालूम साथ करना, यही गणपतराव के तबला-वादन की तारीफ़ थी यह विशेषता अन्य किसी दूसरे में बहुत कम मिलेगी।

एक बार एक कीर्तनकार बुआने गणपतरावजी की साथ पर खुश हो कर, अपने सिर परका जरी का रूमाल, भरी मण्डली में उनकी भेट किया था। यदि वे कीर्तन में उपस्थित होते,तो परिचित कीर्तनकार साथ कें लिये उहैं अवश्य आमंत्रण देते थे। प्रेम-युक्त नासिक में प. विष्णु दिगंबर के भजनों की गणपत रावजीं द्वारा की हुई साथ, जिन्होंने सुनी है, उन्हें वह आज भी याद आती है। तबला मिलाकर, उनकी धीरे-धीरे दी हुई सुरेल थापियों पर ही जानकारों की और से 'वाह-वाह' मिलने लगे, यहीं उनके हाथ की तासीर थी। वह तासीर और साथ का कौशल्य एवं लालित्य का कहाँ तक वर्णन किया जाय।

जैसा कि; ऊपर बताया जा चुका है, कि दूसरों को सिखाने का मूल-गुरु उन्हें आत्मसात होने के कारण सनई-वादन में उन्होंने प्रशंशनीय शिष्य तैयार किये हैं। इस वाद्य-वादन के सम्बन्ध में,बड़ौदा-दरबार की अनुमति से उन्होंने शास्त्रोक्त क्रमिक [series] पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं।

उनका तबला सिखाने का ढंग प्रशंशनीय होने का कारण, उनका मुझे विशेष अनुभव हुआ है। तबला सीखना बड़ा कठीन होता है। हाथ में थोड़ा-बहुत झुकाव पैदा होने में भी बड़ी देर

लगती है। उस दर्जे तक पहुँचते-पहुँचते हो, वह तालीम कष्ट-प्रद प्रतीत होने लगते है। विद्यार्थी पर संभाल कर उनकी उत्सुकता को भी कायम रखना पड़ता है। फिर कही विद्यार्थी छोटी उम्र का हुआ तो और भी मुश्किल पड़ती है. जब मैं, केवल सात वर्ष का ही था, उसी समय गणपतरावजी ने मुझे तबला सिखाना आरंभ कर दिया था! वे मुझे बड़ा मन लगा कर उदारता-पूर्वक सिखाते थे। उनके तेज़ स्वभाव का मुझे कभी भास तक नहीं हुआ। वे मेरी सामर्थ्य, रुचि और आयु के अनुसार ही मुझसे उपयुक्त अभ्यास करवाते थे; जिसकीही वजह से मैं सीख सका तथा मेरे हृदय मे उसके लिये रुचि और लगन पैदा हुई।

संगीत संबधी गुण संपादन करने में कठीण आपत्तियों की आख्यायिकाओं का ध्यान करते ही गणपतरावजी के विद्या ज्ञान की महत्ता कृतज्ञ व्यक्ति कभी भी न भूल सकेगा। खुद सिखाने की अपेक्षा विद्यार्थी से ही करवाने की जिम्मेदारी बड़ी कठीण मानी जाती है। उस पर सनई वादन के सामान्यत: अशिक्षित शिष्य तैयार करना, तो और भी बिकट होता है। मैंने कुछ ऐसे बिकट विद्यार्थी भी देखे है, जिनपर गणपतराव जी की कठोर से कठोर सज़ा का भी असर नहीं होता था कठिण अनुशासन और निष्ठुरता के बिना परिश्रम-पूर्वक अभ्यास करनेवाला शिष्य सामान्यत: विरला ही हो। गणपतराव जी का अनुशासन जितना कठिन था, यद्यापि शिक्षण में उनकी तामसीवृत्ति भी उतनी ही भयानक प्रतीत होती थी, फिर भी समझदार विद्यार्थी के लिये वह कुछ अधिक परेशानी की बात नहीं थी। उल्टा गणपतराव जी के शिक्षण मे आस्था, प्रेम व खूषी दार हथकंडे समझने वाला शिष्य अपने आपको भाग्यवान ही समझेगा। अत्यंत क्रुद्ध और निर्लज्ज विद्यार्थी को भी ठिकाने पर ले आने का सामर्थ्य गणपतराव की तालीम में दिखाई देता था तभी उनके समझदार और जिज्ञासू शिष्य ही नाम कमा सके।
गुरु कृपा द्वारा अपनी कला को एक अपूर्व चीज़ कर दिखाने वाला विद्यार्थी हज़ारो मे एक-आध ही होगा। निरपेक्ष बुद्धि और मन से विद्या-दान करने वाले महान् गुरु जिन्हें सौभाग्य से मिले, उन्हें भी सस्ती लोकप्रियता संपादन करने के अतिरिक्त गुरुके पद की प्रतिष्ठा अखंड बनाये रखने के उदाहरण अधिक न मिल सकेंगे "शिष्या दीच्छे पराजय:" श्रेष्ठ-गुरू के इस लक्षण को यथार्थ सिद्ध कर दिखाने वाला महत्त्वाकांक्षी और जी तोड़ महनत करने वाला विद्यार्थी जिसे मिला ऐसा गुरू बड़ा भाग्यवान ही कहाजाना चाहिये]

यह अनुभव दुर्लभ क्यों होता है, इस समस्याका हल थोड़े दिन पहिले ही, एक कलावंत फ़कीर के मार्मिक कथन में मिला। यह सितार-वादन-प्रवीण फकीर आठ-दस रोज़ मेरे ही पास रहे थे। उनकी फकीरी-वृत्ति को देखकर मैंने उनसे दो चार बार कहा, "आपके पास जो विद्या है, वह आप किसी विद्यार्थी को सिखाने की कृपा करें।" मैंने यह मजाक मे नहीं कहा था। एक दिन जब मैंने ज़रा क्रोध मे आकर स्पष्टत: पूछा तब उन्होंने उसका उत्तर दिया, "इसे सीखने के लिये सहसा कोई परिश्रम नहीं कर पायेगा। पहिले सीखाने वाले के दिल में शौक हो। फिर उसे विद्याका गुलाम बनना: चाहिये। तभी विद्या भी उसकी दासी बन सकती है। किंतु, खेद इसी बात का है कि, यह मुख्य-लक्षण ही तो बडी कठिनाई से मिलता है। आगे की बात तो दुर रही यह उत्तर, निरुत्तर करने वाला है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

उक्त कथानानुसार, शिष्य के नाते भी गणपतराव का बड़प्पन प्रशंसनीय है। वस्तुतः, उन्होंने जो कष्ट भोगे, उसके अनुसार उन्हें शिक्षण न मिल सका। फिर भी उसके प्रति किसी प्रकार का दुःख न मान कर, वे अपने गुरु घराने को बराबर मानते थे। जिस किसी से भी मिले, वह सीख लेने की गणपतराव जी की ग्राही वृत्ति तथा उसके लिये स्थायी कृतज्ञता अनुकरणीय है। उसमें, आजकल दिखाई देने वाला, झूठा प्रदर्शन लेश-मात्र भी नहीं था।

संगीत-शिष्य व संगीत-गुरु के रूप में गणपतराव जी के बोल चाल और व्यवहार में, न जाने उपर्युक्त विशेषतः के कारण कि, किसी और वजह से, "कार्येषुकौशल्य" का साक्षात् प्रतीक दृष्टि-गोचर होता है। छोटी-मोटी बातों में भी उनकी यह खूबी और योजकता झलके बिना नहीं रहती थी। इसके अनेक उदाहरण होने के कारण, लेख की मर्यादा को कायम रखने के लिये, संक्षेप में यही कहना पडेगा कि, उन जैसे आदर्श-कलाकार बहुत ही कम होते हैं।

पिछले २०-२५ वर्ष, गणपतराव जी ने ईश्वरोपासना में ही बिताये थे। इस पर अटल विश्वास, उसके सम्बन्ध में प्रामाणिक आस्था और दीर्घ-तपस्याने उनके जीवन के ढंग को ऐसा बदल दिया था कि, लोग उन्हें साधु की तरह ही मानने लगे थे।

इस वयो-वृद्ध कलावंत की निन्नानबे वर्ष की आयुके समय, उनका कोइभी निकट-संबंधी नहीं था। ऐसी स्थिति मे बुढ़ापे के अपरिहार्य परिणाम शांत-वृत्ति एवं सहन शीलता को शोभा देने वाले अमिट चित्र देखकर किसी के मन में जितना आदर उत्पन्न होगा उतना ही विस्मय भी। सेवा-निवृत हो जाने पर भी; बड़ौदा, सरकार की ओर से आपका उदर-पालन होता था। गणपतराव जी की कलात्मक करामत का यह पारितोषिक, बड़ौदा दरबार की गुणज्ञ उदारता का ही आदरणीय द्योतक है।

मै आशा करता हुं की आरंभ मे कहे अनुसार, मेरे एक बाल-मित्र से परिचय करा देने वाले वयो-वृद्ध कलावंत का प्रस्तुत परिचय संगीतोपासक, भावी विद्यार्थियों के लिये उद्बोधक होगा।

———

(पृष्ठ ८ का शेष)

रहने के कारण, वह अब बन्द कर दिया जाय और उसके स्थान पर ऊपर लिखे अनुसार ' राज–गायकों ' की नियुक्ति की जावे। उन्हें, रहने के लिये स्थान का प्रबन्ध भी सरकार की ओर सरकारी व्यय से किया जाना चाहिये। उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार ही, उन्हें उपयुक्त वेतन भी दिया जाना चाहिये। इन सबसे अधिक महत्त्व–पूर्ण बात यह हो कि, उन पर आवश्यकतानुसार केवल अध्यापन का ही भार डाला जाय और वे खा़नगी गाने, इत्यादि सरकारी–स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात् ही करसकें। प्रत्येक को, १०–५ विद्यार्थी अपने–आप निरन्तर सिखा कर तैयार करना ही चाहिये; वह उनपर नियंत्रण रखा जाय। आवश्यकता पडने पर ऐसे विद्यार्थियों को, योग्यता के अनुसार अपना शिक्षण बेफ़िक्री से चालू रख सकने के लिये; तथा जब तक वह चालू रहे तब तक अपने निर्वाह के लिये किसी और धन्दे की आवश्यकता न पड़े इतनी भर–पूर स्कॉलरशिप (छात्र–वृत्ति) दी जानी चाहिये। उन में से भी, होनहार विद्यार्थियों के रहने के लिये छात्रालय के रूप में स्वतंत्र–क्वार्टरों में की जानी चाहिये।

इस सब कार्य–सूत्र की देख–रेख करने के लिये एक ' प्रमुख राज–गायक ' नियुक्त किया जाय और इस शिक्षण को सुचारु रूप से चलाते रहने का उत्तरदायित्व उसे ही सौंपा जाय।

बिचारे हमारे गायकों को, कोई गव्हर्नर बनने की तो महत्वकांक्षा नहीं है; किन्तु गव्हर्नर के ' राज–गायक ' बन सकने का सुअवसर, उन्हें सरकार अवश्य दे। नहीं तो, सरकार उनकी कलाकी कद्र कैसे करना चाहती है? फिर, उन्हें सरकारी ' मान्यता भी कैसे मिल सकेगी। ' डॉक्टरेट ' की भाँति ' डॉ. म्यूज़ ' की पदवी पाने के हमारे गायक लालची कदापि नहीं और वह उन्हें चाहिये भी नहीं।

" देवस्थान–गायक " :—

दूसरी सूचना यह कि, प्रान्त-भर के समस्त छोटे—बडे देवालयों में बिना किसी अपवाद के, गायन की प्रथा डाली ही जानी चाहिये। बम्बई–प्रान्तमें हजारों देवालय हैं और बहुतसों को उनके खर्च के लिये सरकारी–माफी के रूप आर्थिक —साहाय्य भी प्राप्त है। बडे –बडे देवालयों में आजभी गायक मौजूद हैं। बस, उसमें केवल इतनासाही अन्तर कर दिया जाय कि, जहाँ तक संभव हो वे अवश्य ही अपनी–अपनी योग्यतानुसार अपना योग्य शिष्यवर्ग भी तैयार करें ऐसा नियम ही बना दिया जाय। हमारे गवैये महोदयका ही यदि उदाहरण लिया जाय तो हमारे गांवमें केवल दो हजार की ही बस्ती है वहा के देवालय की उत्पन्न के लिये कुछ जमीन माफी के रूपमें दी गई है। वहाँ, जिस पुरोहित की नियुक्ति है उसे दस–बीस ख्याल और पाच–पचास ध्रुपद भी अच्छे–तरह से आते हैं। इस पुरोहित (पुजारी) को उस गाँव में बैठे-बैठे ही, यदि केवल पांच रुपये भी प्रति मास मिलाकरे, तो वह खुश हो जायगा और उसके बदले स्थानिक लड़के लड़कियाँ, वे दस बीस ख्याल तथा ५-५० ध्रुपदे, सहज ही में सीख सकेंगे। इन गरीब बच्चों को यदि देवस्थान अथवा सरकार की ओर से मामूली छात्र–वृत्ति भी दी गई, तो एक बड़ा काम हो सकेगा। बहुत से देवालय, सुबह और शाम के अतिरिक्त दिनभर प्रायः सुनसान ही पड़े रहते है। वे ही संगीत- पाठशाला के निमित्त आवश्यक स्थान की समस्या को, बिना पैसे–कौड़ी और प्रयत्न के ही, हल कर दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त ' देव –स्थान गायकों के वेतन, इत्यादि का प्रबंध देव–स्थान के उत्पन्न में से ही आपसे आप किया जा सकता है। इस प्रकार सरकार पर का व्यय–भार भी बहुत–कुछ हल्का हो जायगा। बड़े–बड़े देवालयों और शहरों में, आवश्यकतानुसार, इससे अधिक योग्य गायक की नियुक्ति की जा सकती है तथा उसके द्वारा संगीत–शिक्षण का कामभी अधिक अच्छी तरह हो सकेगा। गाँवों में मिलने वाले गायक, यद्यपि द्वितीय–श्रेणी के भी हुए, तो भी वे अपनी–अपनी योग्यतानुसार उच्च–संगीत का प्रसार व प्रचार करते रहेंगे। इससे भी बहुत सा काम सधेगा। निदान, किसी भी प्रकार की हानि अवश्य ही नहीं होगी।

इसके अतिरिक्त, कदाचित् देवालय में गायन आरंभ होने के पश्चात, वहाँ के व्यवस्थापक, इत्यादिकों को यह ख्याल हो कि, वे एक उच्च कार्य कर रहे हैं और देवालय के नित्यके कार्य-क्रम में एक आवश्यक, उपयुक्त और सामाजोपयोग कार्यक्रम की वृद्धि भी होगी।

हाल ही में, इन देवालयों की व्यवस्था की जाँच–पड़ताल करके, उनके अनावश्यक खर्चों को बंद करके, उस धन-राशि का किस प्रकार सदुपयोग हो सकता है, इन सबबातों का पूर्ण-विचार करके आवश्यक सूचना देने के लिये, खेर-मंत्रि-मण्डल ने ऐसी ही एक दूसरी कमिटी, बम्बई हाईकोर्ट के प्रख्यात न्याय-मूर्ति श्री. तेंडूलकर के अध्यक्षता में नियुक्त की है। अतः, इस कमिटी से मेरी, यह नम्र निवेदन है कि, वह उपर्युक्त सूचना पर अवश्य विचार करे।

" व्यवसायियों के लिये स्वतंत्र पाठशालायें " :—

म्युज़िक एज्युकेशन कमिटी की प्रश्न–पत्रिका मे का एक ही प्रश्न संगीत के पुनरुद्धार की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है और वह यह की, संगीत का व्यवसायही करने वालों के लिये स्वतंत्र शिक्षण की व्यवस्था की जाय। उनकी इस सूचना के लिये, समस्त संगीत–प्रेमी जनता उन्हें धन्यवाद देती है। स्व. पं. भातखण्डे जी यही सूचना कई वर्षों पहिले ही दे चुके थे। अतः, पं. भातखण्डे जी की दूर–दृष्टि को इससे गौरव प्राप्त होता है। उपयोगिता की दृष्टि से भी यह सूचना अत्यन्त महत्व की है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इस कल्पना की रूप–रेखा कमिटीने नहीं दी है;

किन्तु वह किसी शास्त्र–शुद्ध नीव पर ही आधारित होगी, ऐसा हमें विश्वास करना चाहिये।

प्रत्येक शालामें कम से कम दो विद्यार्थी तो भी तैयार हो:—

कमिटी द्वारा सुचित शिक्षण–क्रम बस ऐसा हो कि, जिससे विद्यार्थियों में उच्च–संगीत के प्रति केवल अभिरुचि ही निर्माण हो। कमिटी को चाहिये कि, वह इससे अधिक पंचायत में न पड़े; नहीं तो- उपर्युक्तानुसार अव्यवस्थित प्रसंग आनेकी ही अधिक संभवना है। फिर भी, इस बालिय–शिक्षण का संगीतोद्धार की दृष्टि से उपयोग होना संभव है।

प्रत्येक शाला, अपने संगीत–शिक्षण के लिये, संगीत–शिक्षकों की नियुक्ति अवश्यही करेगी। इन्हीं संगीत–शिक्षकों द्वारा प्रत्येक शाला को, फी शिक्षक दो विद्यार्थी के हिसाब से, 'गुरु–मुखी' पद्धति के ही अनुसार, शिक्षण प्रदान किया जावे। इसके लिये, आवश्यक हो तो ऐसे संगीत–शिक्षक से सामान्य–संगीत–शिक्षण का काम एक–आध घन्टे कम लिया जाय।

एक और प्रयोग भी शालाओं में करने योग्य है। कानों में संगीत जितना अधिक पड़ेगा, उसके प्रति अभिरुचि उतनी ही अधिक मधुर बनती है। इस बात को ध्यान में रख कर, ऊपर कहे हुए जो दो विद्यार्थी चुने जाये, उनके प्रत्येक सप्ताह के शिक्षण समय में से ही कुछ घन्टों का शिक्षण, उन्हीं के वर्ग के अन्य विद्यार्थीयों के समक्ष प्रत्यक्ष होना चाहिये। इस समय, केवल वे दो चुने हुए विद्यार्थी ही सीखें और शेष केवल सुनें। केवल सुनने से ही, संगीत के प्रति प्रबल आस्था उत्पन्न होकर, संगीत का प्रत्यक्ष-शिक्षण भी उनके ध्यान में हमेशा रहेगा।

हमारे शास्त्रीय–संगीत की स्वाभाविक प्रकृति एवं प्रवृत्ति ध्यान में रख कर, मैं कुछ और विधायक सूचनाओं का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ। मुझे विश्वास है कि, म्यूज़िक–कमिटी उस पर अवश्य विचार करेगी।

रेडियो व संगीत संबंधी प्रांतिक–स्वाधीनता:—

आजकल दुनिया में,रेडियो एक अत्यंत प्रभावी वस्तु है। भारत-सरकार की, रेडियो को सार्वजनिक रूप देने की नीति, सभी को विदित है। इसी तरह, सरकार और कारखानों के मालिक इस युक्ति में तल्लीन हैं कि, सस्ते से सस्ता हो कर, रेडियो प्रत्येक घर में प्रवेश कर सके; यह भी सबको मालूम है। रेडियो के इस महत्व को समक्ष कर, अपने संगीतोत्कर्ष के निमित्त उसका किस प्रकार अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है, इस दृष्टि से,इस समस्या पर विचार करना, फिलहाल बम्बई सरकार के अधिकार क्षेत्र के परे है। वह तो भारत-सरकार पर ही अवलंबित है। किन्तु, संगीत-संबंधी प्रातिक-स्वाधीनता (Provincial Autonomy) भारत-सरकार से, बम्बई सरकार को माँग कर, इस की व्यवस्था अपने ही हाथों में लेलेना चाहिये। बम्बई सरकार को यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि, संगीत–कार्यक्रमों के लिये, बम्बई–रेडियो–केंद्र भारत के अन्य रेडियो केंद्रों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ा हुआ है। बम्बई की संगीतात्मक प्रतिष्ठा ही वैसी है। हम सब के लिये, यह गर्व की बात है कि, उच्च संगीत के लिये सब प्रांतों की जनता को बम्बई–रेडियो–केंद्र की ही शरण लेनी पड़ती है। यह सौ प्रतिशत सत्य भी है। रेडियो के मुख्य अधिकारियों द्वारा या मेरी सुझाई हुई युक्ति के अनुसार संगीत संबंधी प्रान्तिक–स्वाधीनता बम्बई सरकार को यदि मिल सकी, तो यहाँ के स्थानिक अधिकारियों ने चाहा, तो संगीतोद्धार के लिये रेडियो एक अचूक साधन बन सकेगा। प्रत्येक शाला में, एक प्रत्यक्ष शाला में और एक क्रीडांगण पर, इस प्रकार रेडियो के दो सेट रखकर बालोपयोगी संगीत–कार्यक्रमों की व्यवस्था भली प्रकार की जासकती है। बीच की छुट्टी (Recess) और संध्या–समय क्रीडागणों पर भी रेडियो का उचित कार्यक्रम रखा जासकता है। जब रेडियो इतने सस्ते हो जायँगे कि, प्रत्येक कुटुम्ब में एक रेडियो रखा जा सके, तो उस पर उच्च–संगीत सुनकर छोटे-छोटे बच्चों पर भी इष्ट-परिणाम होगा।

उपर्युक्त रिकॉर्डों के कॉपी-राइट्स सुरक्षित अधिकार-सरकार को खरीद लेना चाहिये :—

इसी प्रकार, स्वभावतः मधुर आवाज़ वाले रिकार्डों में से— उदाहरणार्थ, श्री. बाल गंधर्व, खां साः अब्दुलकरीम, व श्री. हीराबाई बड़ौदेकर के रिकॉर्डों के कॉपी राइट्स सरकार खरीद ले और ये सब रिकॉर्ड्स बच्चे बार–बार सुन सकें, ऐसी उचित व्यवस्था की जाय अवश्यकता हो, विशेष रूप से बालोपयोगी पद्य तैयार कराके उनसे गवा लिये जायें

महफिलों के रिकार्डस : —

पिछले १०–२० वर्षों में अनेकों नामवंत गायक परलोक सिधार गये हैं,जिससे संगीतकी अपरिमित क्षति हुई है। अतः तीन–चौथाई गायकी पहिले ही मिट चली है और बची खुची भी उसी प्रकार लुप्त होती जारही है। अस्तु, उस अवशेष गायकी को ही स्थायी करने के लिये समस्त अग्रसर घरानों के प्रसिद्ध गायकों के घन्टें अध घन्टे के लम्बे लम्बे रिकार्डस बना लिये जावें। फैयाज खां, अल्लाउद्दीन सरोदिये, केसर बाई, मोघूबाई, विलायत हुसेन हीराबाई बड़ौदेकर, गोविंदराव टेम्बे (हॉर्मो) सवाई गन्धर्व मास्टर कृष्णराव इत्यादि गवयों के ऐसे रिकार्डस बनाकर उन्हें बार बार रेडियो द्वारा सुना जा सकने की व्यवस्था हो। यदि ऐसा हो सका तो संगीत जिवित रहकर अधिकारी लोगों का स्मारक बन जायेगा और होनहार तरुण गायकों के समक्ष उच्च गायकी का आदर्श भी बना रहेगा।

———

कलाकारों के क़िस्से

(१) कै. पंडित विष्णुदिगंबर पलुस्कर

हमारे गुरूजी जब आनंद में होते, तो अनेकों विनोदी बातें कह-कर वे हमें हंसाया करते थे। बीच-बीच में वृन्द-वादन [ऑर्केस्ट्रा] की तयारी शुरू हो जाती। बजाने के लिये नियुक्त गत लिखकर याद करली जाती; तत्पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति उसे अपने-अपने वाद्य पर तैयार करता। फिर, सब मिलकर साथ बजाते। कभी-कभी पंडित जी स्वयं उपस्थित रहकर वह लक्ष्य-पूर्वक सुनते थे। जिन वादकों से, अपने वाद्यों पर वह गत अच्छी तरह से नहीं जम पाती, वे झूठ-मूठ ही सबका साथ दिखाने के लिये अपने वाद्य-पर खाली हाथ फिराते; किन्तु पंडितजी के कान अत्यन्त ही चौकस होने के कारण ऐसे लोग भला कब छिप सकते थे। वे ग़लत बजाने वाले वादकों को खोज निकालते और तब उनसे कहते; "तुम शामिल-बाजे हो! कल अच्छी तैयारी करके आना"।

कभी-कभी वे सूचना दिये बिना ही एकदम एक-एक वर्ग को बुलाकर गाने के लिये कहते। कुछ लड़कों को तो चीज़ें याद होतीं, किन्तु कुछ को नहीं ऐसे लड़कों को जितना याद होता उतना तो वे ज़ोर-ज़ोर से कहते और जो याद न होता वह बारीक आवाज़ में केवल मुँह हिलाते हुए ही, मानो कि, वे भी दूसरों के साथ चीज़ सही सही ढंग से कह रहे हैं। वह चीज़ समाप्त होते ही पंडितजी ठीक उन ग़लती करने वाले विद्यार्थियों के ही नाम लेकर कहते-इस वर्ग में इतने 'शामिल-बाजे' हैं।

मैं जब विद्यालय में पहुँचा, तो मैं इस 'शामिल-बाजे' का अर्थ नहीं समझता था। किन्तु; एकदिन पंडितजी बड़े खुश थे, तथा उन्हीं ने शामिल-बाजे की निम्न बात कही थी:—

एक गाँव में एक चलाक मनुष्य था। राज-दरबार देखने की एक बार उसे प्रबल इच्छा हुई: परन्तु वहां प्रवेश कैसे किया जाय? महल के बाहर खड़े रहकर उसने दरबार में आनेवाले लोगों का निरीक्षण किया, तो उसकी समझ में यहि आया कि, बहुत से गवैये-बजवैये सायकाल के समय अपने-अपने वाद्य लेकर जाते हैं और उन के हाथ में वाद्य देखकर पहरेदार उनसे कुछ भी नहीं पूछते, तथा वे लोग सुगमता--पूर्वक प्रवेश कर पाते हैं। उसने उन जैसा ही वेष बनाया और एक नवीन वाद्य बनवा लिया। वह वाद्य दिखने में लम्बाचौड़ा और बड़ा ही विचित्र तथा खूब सजाया हुआ था। एक दिन वह उस वाद्य को लेकर उन 'गवैयों--बजवैयों' की मण्डली में जा मिला। और वह सुगमता से दरबार में प्रवेश कर सका। निश्चित समय आते ही, वाद्य बजने लगे। उस के इस अजीब वाद्य की ओर राजासाः पहिले ही ध्यान आकर्षित हो चुका था; फिर यह देखते ही कि राजासाः अपनी ही ओर देख रहे हैं, उसने इतने हाव-भाव दिखाकर उसे बजाने का बहाना किया कि, उन राजासाः को विश्वास होने लगा कि, हो न हो इस विचित्र वाद्य के कारण ही आज वृंद--संगीत में विशेष मजा आ रहा है। राजासाः उस दिन बड़े खुश हुए और इस अजीब वाद्य को सुनने की एक प्रबल इच्छा उसके मन में जागृत हुई। उन्होंने इस नवीन बजवैये को अपने सामने बैठा कर वह अकेला वाद्य ही सुनने की इच्छा प्रकट की; किन्तु उस धूर्त बजवैये ने उत्तर दिया, "सरकार, यह वाद्य अकेला नहीं बज सकता। इस वाद्य का नाम ही 'शामिल-बाजा' है। जब तक यह दूसरे वाद्यों के साथ शामिल न होगा तब तक यह न बजेगा।

—बी. आर. देवधर

(२) अधिक महत्व का क्या ?

ग्वालियर के श्री. कृष्णराव पंडित का गायन एकबार, आज से २० वर्ष पूर्व बड़ोदा में हुआ था। गायन रविवार क्लबमें चल रहा था कि, उसी समय कुछ अज्ञान सभासद आपसमें बातें करने लगे। गायक एवं वक्ताओं की ओर, ध्यान न देकर उनकी हँसी उड़ाने वाले श्रोता, ऐसी सभाओं में प्रायः मिल ही जाते हैं। बस, जब पंडित जी को भी ऐसी ही अवस्था का सामना करना पड़ा; तो वे शांति-पूर्वक तम्बूरा नीचे रखकर चुप बैठ गये। क्लब के सैक्रेटरी ने सोचा कि, कहीं किसी से बुआ साः का अपमान तो नहीं हुआ? अतः उन्होंने नम्रतापूर्वक उनके क्रोध का कारण पूछा। बुआ साः ने कहा, "छिः! क्रोध किस बात पर? किन्तु, ये कुछ लोग कदाचित् अत्यन्त ही महत्व की कोई बात-चीत कर रहे हैं, वह पूरी हो जाने दीजिये; फिर गाने के लिये तो सारी रात अपनी ही है।"

बुआ साः की यह कटु-बात सुनकर वे सब गड़-बड़ मचाने वाले चुप हो गये और फिर शांत-पूर्वक गायन आरंभ हो गया।

—प्रो. चिंतामण वि. जोशी [बड़ौदा]

भारतीय--संगीत

[लेखक :—भवानी शंकर शुक्ल]

भारतवर्ष आदी काल से ही विश्व की सभ्यता का केंद्र रहा है। इस देश में जहाँ एक और ज्ञान, वैराग्य और तर्क, इत्यादि का प्राधान्य था, उसके विपरीत सरस भक्ति एवं संगीत की भी मन्दाकिनी अबाध गतिसे प्रवाहित थी। यह वह मंदाकिनी थी, जिसमें डूब कर मानव अपनी चरमस्थिति को प्राप्त हो जाता है। विभिन्न भाषा तथा भौगोलिक परिस्थियों वाले भारत के प्रान्त अपनी संस्कृति के क्षेत्र में किस प्रकार अविच्छिन्न रूपेण संबंधित हैं, इसका बहुत कुछ श्रेय यहाँ के संगीत को भी है।

अपने देशका संगीत सदैव ही संसार मे सम्मान का पात्र रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि, इसके स्वर हमारे पूर्वजों की साधना के स्वर हैं। इसके स्वर तप, संयम एवम् अध्ययन के पश्चात् स्वतः प्रस्फुटित हुए हैं। मानव के मर्त्य होने के कारण उसकी वस्तुएं भी अमर नहीं होतीं। परंतु यह, मानव के द्वारा सर्जित ज्ञान नहीं है। अनादि कालसे ही यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहा है, अब भी है और भविष्य में भी रहेगा। संगीत शाश्वत है। यही ब्रह्म है। इस ब्रह्म की साधना में ही देश के—नारद, हरिदास तथा विष्णु दिगम्बर प्रभृति—अनेक सन्तों ने अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। इसी नादब्रह्म के विषम में हमारे धर्मग्रंथ लिखते हैं—

"नादात्मकं नादबीजं प्रयतं प्रणवस्थितं।
वन्दे तं सच्चिदानन्द माधवं मुरलीधरं॥
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपं परो हरिः॥"

एक स्थान पर स्वयं भगवान् विष्णु नारद जी से कहते हैः—

"नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगीनाम् हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥"

तथा योगेश्वर कृष्ण ने भी अर्जुन से अपने स्वरूप बतलाते हुए कहा थाः—

"वेदानाम् सामवेदोऽस्मि।"—गीता अ. १० श्लो. २२

संगीत—शास्त्र सामवेद से उत्पन्न हुआ है। अतः उसे एक उपवेद कह सकते हैं। भारतीय—संगीत के तीन मुख्य भाग हैं। वे हैं गायन, वादन और नर्तन। ★ परन्तु सबका उद्देश्य एक ही है; तथा सभी के द्वारा एक ही रस की उत्पत्ति होती है। किसी एक के भी अभाव से पूर्ण संगीत का भाव नष्ट हो जाता है। १

वेदों के अनुसरणार्थ ही संगीत—शास्त्र का सृजन किया गया। इसकी उत्पत्ति के विषय में कई मतभेद हैं। एक प्राचीन मत यह है कि; शंकर के पाँच और पार्वती के एक कुल छः मुखों छः रागों की रचना हुई। अन्य राग—रागिनियाँ उन्हीं से प्रादुर्भूत हुईं। दूसरा मत वैष्णवों का है। उनका कथन है कि, सोलह सहस्र गोपियों के मुख से सोलह सहस्र रागिनियाँ बनी हैं। परन्तु संगीत के अधिकांश ग्रन्थ प्राचीन प्रथम मत का ही समर्थन करते हैं। उसके अनुसार शिव के अघोर मुख से भैरव—राग, सद्योजात से श्री, ईशान से मेघ, तत्पुरुष से पञ्चम (हिन्डोल), वामदेव से वसन्त तथा गौरी के मुख से नट नारायण (दीपक) राग उत्पन्न हुआ। २ इनमें से प्रत्येक राग अलग अलग रस उत्पन्न करता है। उनके गायन के समय भी विभिन्न हैं। श्रीराग का समय शिशिर ऋतु, बसन्त का वसन्त, भैरव का ग्रीष्म, पंचम (हिन्डोल) का शरद, मेघ का वर्षा, तथा दीपक का समय हेमन्त ऋतु है। ३

★ "गीतं वाद्यं नर्तनञ्चत्रयं संगीतमुच्यते।"—'संगीत—दर्शन'

१ "गीत वादित्रनृत्यानाम् रक्तिः साधारणो गुणः।
अतो रक्ति विहीनंयत् तन्नसंगीत मुच्यते॥"

२ परन्तु इसके कोई पूर्ण निश्चितप्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं।

३ "श्री रागो रागिणी युक्तः शिशिरेगीयते बुधैः।
बसन्तः स सहा यस्तु वसन्ततौ प्रगीयते॥
भैरव : स सहायस्तु ऋतौ ग्रीष्मे प्रगीयते।
पञ्चमस्तु तथा गेया रागिण्यासह शारदे॥
मेघ रागो रागिणी युक्तो वर्षासु प्रगीयते।
नटनारायणो रागो रागिण्यासह हेमके॥"

पाणिनि ने अपनी शिक्षा में सात स्वरों को केवल तन्त्री और मनुष्य के कण्ठ से निकलने योग्य माना है। :—

" निषादर्षभ–गान्धार–षड्ज–मध्यम–धैवताः।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्री कण्ठोत्थि स्वराः॥"

संगीत के क्रमिक विकास का ज्ञान हमें नहीं मिलता। भरत के 'नाट्य–शास्त्र' के पश्चात हमें अधिक संगीत–विषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते, अतः प्राचीन संगीत आधुनिक संगीत के रूपमें कब परिणत हुआ, इसका विश्वस्त ज्ञान नहीं है। हाँ मुगल–शासन के कुछ समय पूर्व से अवश्य इसकी प्रगति ज्ञात होने लगती है, सोलहवीं शताब्दी के आदि में ही संगीत की दो धारायें हो गईं, जो उत्तर-भारत में उत्तरी [हिंदुस्तानी] पद्धति तथा दक्षिण-भारतमें दक्षिणी [कर्नाटकी] पद्धति के नामों से प्रवाहित हुई। मुगलों के शासन के प्रभाव से उत्तरी–संगीत-पद्धति में कुछ अधिक ऐश्वर्य आ गया।

संगीत का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है इसका प्रभाव अत्यन्त व्यापक होता है। इसके विचित्र प्रभाव को हम प्राचीन काल से ही देखते चले आये हैं। बंसी धर श्रीकृष्ण को कौन नहीं जानता। उनकी वंशी का उनके मित्रों, गोपियों तथा पशु–पक्षियों पर जैसा प्रभाव पड़ता था, उसके विषय में श्रीमद्भागवत महापुराण में अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनमें से एक उदाहरण देखिये।

'एक गोपिका अपने घर में भोजन बना रही थी। चूल्हा जल रहा था। इतने में उसके पीछे से श्रीकृष्ण की सरस वंशी बज उठी। जिसके प्रभाव से चूल्हे का सूखा ईंधन रस (गीला) हो कर धुआँ उत्पन्न करने लगा। धुवें के कारण गोपबाला के नेत्रों से अश्रुधार होने लगा। वह श्रीकृष्ण के वंशी का व्यापक प्रभाव जानती थी। उसने उलाहना देते हुए मुरलीधर से कहा

मुरहर रन्धन समये माकुरु मुरली रवं मधुरम्।
नीरस मेधो रसतां कृशानुरप्याति कृशतर ताम्॥"

इसी प्रकार एक अन्य ग्रंथ में एक उक्ति है कि, सरस्वती जी नाद रूपी समुद्र में डूब जाने के भय से सदैव तुम्बी लिए रहती हैं। १

तानसेन और बैजू बावरा के संगीत की आश्चर्य जनक कथायें आज भी घर-घर प्रसिद्ध हैं। सूरदास और मीरा के तानपूरे के स्वर ने देश की सुषुप्त जनता को जाग्रत कर दिया था, यह सभी भारतीय जानते ही होंगे। हिन्दी-साहित्य के रीति काल के सुप्रसिद्ध कवि श्री बिहारीलाल ने अपनी सतसई में लिखा है—

" तंत्री नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रस रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग॥"

सत्य ही है कि, संगीत के बिना जीवन निष्प्राण है। जब सरस स्वर से जड़ पदार्थ द्रवित हो जाते हैं; तब मनुष्य के तो हृदय होता है। संगीत में वह शक्ति है कि, इसके द्वारा कायरों में भी पौरुष का संचार हो जाता है; शत्रु वश में हो जाते हैं। संगीत-शून्य व्यक्ति पूँछ और सींगों से रहित पशु होते हैं। इसके प्रभावसे मानव की ऊर्ध्वगामी मानसिक वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं और इस प्रकार मनुष्य अपने स्तर से नीचे गिर जाता है।

विश्व–विख्यात अंग्रेज़ी भाषाके कुशल नाटककार व कवि श्री शेक्सपियर महोदय संगीत शून्य मनुष्यों के विषय में एक नाटक में लिखते है कि—

" जिस मनुष्य में संगीत के प्रति अभिरुचि नहीं, अथवा वह संगीत के मधुर स्वरों से प्रभावित नहीं होता, वह व्यक्ति विश्वास-घात, राजद्रोह, षड्यन्त्र तथा डाकेज़नी करने के योग्य होता है। उसके काम रात्रि के समान धूमिल और उसका प्रेम नारकीय होता है। ऐसे मनुष्य का कभी विश्वास न करना चाहिये।" २

वह कितने सौभाग्य का समय होगा जब भारतवासी इस महान्–शास्त्र के विस्तार और इसकी रक्षा के हेतु सन्नद्ध हो जावेंगे तथा इस प्रकार पुनः हमारा देश विश्व–प्रेम के गंभीर उत्तर–दायित्व को वहन करने में समर्थ होगा। विश्वास है कि, स्वतन्त्र भारत में वह समय शीघ्र आवेगा।

---

१ " नादाब्धेस्तु परं पार न जानाति सरस्वती
अद्यापि मज्जन भयात् तुम्बी वहति वक्षसि॥"

२ The man that hath no music in himself,
Nor is not moved with concord of sweet sounds,
Is fit for treasons, strategems and spoils,
The motions of his spirit are dull as night,
And his affections dark as Erebus,
Let no such man be trusted."
—W. Shakespeare's 'Merchant of Venice'.

सामाजिक–सम्पत्ति के रूप में नृत्य–कला

[श्रीमती 'हेमा' मनेलकर के मूल अंग्रेजी लेख का हिन्दी–अनुवाद]

(अनुवादकः— रा. कि. भटनागर)

वर्तमान–युग की उन्नतिका यह एक उत्साह–वर्धक लक्षण है कि, हम कला और कलामय–संस्कृति के प्रति विद्यमान अंध–विश्वात और हठधर्मी से दृढ़ता–पूर्वक छुटकारा पाते जारहे हैं। कहा जाता है कि, लग–भग २० वर्ष पूर्व, वह समय था, जब कि नृत्य जैसी ललित कलाऐं, सन्देह–पूर्ण आचरण और गुप्त–वातावरण में रहने वाली जाति के एक विशेष–वर्ग के निमत्त ही विशेषतः सुरक्षित समझी जाती थीं। 'कुलीन एवं प्रतिष्ठित,' स्त्रियों की तो जाने दीजिये, पुरुष भी किसी ऐसी प्रकट संस्था को, जिसका नृत्य से सम्बन्ध हो, एक महाभारी समझकर, उसके कार्य–कर्मों में भाग लेने अथवा उन्हें देखने के नाम से भी कोसों दूर भागते थे। गुणी नर्तकों में भी श्रेष्ठ-तम कलाकार को तुच्छ सामाजिक स्थिति में अपनें दिन बिताना पड़ते थे; समाज के इन मिथ्या--आचरणों (ढोंगों) के बन्धन इतने कठोर थे कि, नृत्य-.ज्ञान--प्राप्ति के प्रति वास्तविक उत्कण्ठा के होते हुए भी, अनेकों कुलीन--युवक और युवतियों सदा के लिये अपने कुल-वृक्ष से मुरझाई हुईं टहनियों की भाँति अलग होकर ही उस कला में नैपुण्य प्राप्त करने की आकांक्षा के रस--पान के लिये कठिन प्रयत्न कर पाते थे। इन सब के अनेक कारण हो सकते हैं; किन्तु, दासता की सी दीर्घ--कालीन राज नैतिक आधीनता के अन्तर्गत निर्मित सामाजिक मनोवृत्ति ही कदाचित् उनमें मुख्य है। कोई दास अथवा सेवक, स्वयं--स्फूर्ति से न नाचता है। और न गाता। " नाचकर है, तो नाचाकर;ना नाचकर तो नाचाकर।" भारत में, जब यह विदेशी आधीनत्व नीति--पटुता [और बलके] सर्वोच्च शिखर पर विराजमान था, तब राष्ट्र की बुद्धि एवं शक्तिको केवल नक़ली तथा स्थूल--जीवन की गन्दी नालियों में विभक्त कर, विनाश की ओर प्रवाहित किया गया था। वास्तवीक कलात्मक साहसयुक्त कृत्य एवं आकृति को; प्रायः जीविको पार्जन के निमित्त किये जाने वाले निरंतर, चिन्तामय प्रयत्नों के भार से भस्म–सात् कर दिया गया था। गायन एवं नृत्य, विलास–प्रिय धनिकों के हाथ की कठ–पुतली [दास] और अपनी ही अकेली दुनिया में जीवन व्यतित करने वाले केवल मुठ्ठी भर व्यक्तियों के व्यवसाय के स्वरूप बन चुके थे। भारत में राज नैतिक एवं सामाजिक जागृति के साथ ही लौकिक–रूढियों और नृत्य–भावके दम घोंटने वाले गल–फांस फन्दे ढीले करने का अविश्रांत प्रयास भी चल रहा था। अन्त में, उन समस्त सामाजिक अवरोधों एवं अड़चनों का एक-एक करने मान–मर्दन हो, क्रमशः विनाश हो गया। स्वातंत्र्य के प्रति संग्राम और विजय–श्री प्राप्ति के आदर्श से उत्पन्न नवीन, स्फूर्ति के कारण जीवन के प्रत्येक पहलू में राष्ट्रीय–वृत्ति सजग हो क्रीड़ा करने लगी। पूज्य गुरुदेव टैगोर जैसी महान् भारतीय विभूतियों ने गायन एवं नृत्य कलाओं को, उनकी शोचनीय–दशा, से मुक्त कर, पुनः उनके पूर्व–कालीन वैभव के उच्चतम शिखर पहुँचाने में चिर–स्मरणीय साहाय्य प्रदान की; जिससे हमें आज इन कला ओं में विद्यमान् दैवत्व एवं स्वर्गीय सत्य का साक्षात् दर्शन होने लगा और इस कलात्म जागृति के अचानक ज्वार के के कारण समस्त अंध–विश्वास प्रायः नष्ट हो गया। समाज में उच्च--सन्मान प्राप्त सभ्य कुल--रत्न, उदयशंकर, मैनका, राम. गोपाल, साधोना बोस, नटराज वशी; तथा अन्य अनेकों अद्वितीय कलाकारों ने भारतीय नृत्य को कलात्मक प्रयत्नों द्वारा, ठीक डूबते समय ही उबार लिया। हम अपनी ही स्वर्गीय विरासत (बपौती) पर गर्व करने लगे—वास्तव में, स्वर्गीयः क्यों कि हमारी पौराणिक आख्यायिकाओं कें अनुसार दक्ष के यज्ञ में सती की आत्म-आहुति के कारण क्रुद्ध, स्वयं शिवजीने आग-बबुला होकर [विनाशकारी] अमर ताण्डव-नृत्य किया था। यह कहा जाता है कि, अस्पष्ट इतिहास के पूर्व-कालीन भारत में नृत्य-कौशल्य में देवता, गन्धर्व और किन्नर भी एक दूसरे से बढ़े-चढ़े थे।

इस कलात्मक जागृति तथा कला कौशल के पुनर्जन्म के कारण समाज के वे श्रेष्ठतम भारतीय रत्न, जिन्हें विशेष दैवी बुद्धि,

स्फूर्ति एवं नैपुण्य प्राप्त हुआ था, भारतीय नृत्य-कला की ओर आकर्षित होने लगे और इस कला के प्रति पाखण्ड--युक्त मिथ्या विरोधी एवं, घृणात्मक धारणाऐं निराधार सिद्ध होकर लुप्त होने लगीं। अब, नृत्य- कला उस के वास्तविक सांस्कृतिकस्वरूप में अपनाई जाने लगी है। आज प्रायः समस्त मुख्य नगरों और उपनगरों में,भारतीय नृत्य-ज्ञान के अध्ययन एवं शिक्षण के निमित्त स्थापित कला-केन्द्रों को उत्तरोत्तर समृद्धि के पथ पर अग्रसर देख, हर्ष होता है। नृत्यविद्योपार्जन सामाजिक--विच्छेद (पृथक्करण) का कारण न बन कर इच्छित सामाजिक--स्वरूप धारण कर रहा है। वास्तव में; चाहिये भी यही था।

अस्तु, कुलीन कन्याओं और युवतियों का, विविध भारतीय संस्थाओं में भारतीय-नृत्य-विद्यापार्जन, नृत्य-विद्याध्ययन के प्रति मेरी प्रबल रुचि का एक मात्र कारण हुआ। बस, मैंने भी हित-सिद्धि के विचार से, ऐसी ही एक संस्था में, क्षण-भर भी गँवाये बिना प्रवेश किया है मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि, मेरे साथ के विद्यार्थियों में से कदाचित ही कोई ऐसा हो, जिसने उस संस्थामें, नृत्य-कला को जीविकोपार्जनार्थ व्यवसाय का स्वरूप देनेके विचार से प्रवेश किया हो। हम नृत्य को अपने संरक्षकों एवं पूर्वजों के पूर्ण साहाय्य, उत्साह-दान तथा आशीर्वाद पाने के पश्चात ही, अपने जीवन सौंदर्य-मय बनाने के लिये निपट अनिवार्य-कलात्मक-मनोरंजन के अविरल-स्रोत के स्वरूप में ही अध्ययन करने के लिये, वहां एकत्रित होते हैं। यह वास्तव में, नृत्य-कला के प्रति हमारे समाज की वृत्ति में होने वाला एक प्रतिशोधात्मक परिवर्तन है, जिसका हमें सहर्ष स्वागत करना चाहिये। आज से केवल २० वर्ष पहिले के माता-पिता के लिये अपनी नई-पौध संतति) के, नृत्य को क्रिडात्मक अथवा विनोदात्मक रूप में अपनाने का विचार भी निश्चय ही असहनीय होता।

किंतु, हमारी आज की स्थिति कुछ भिन्न है। अवश्य ही, हमें राष्ट्र के सदाचार रूपी तंतु ओं को जीर्ण, क्षीण एवं खंडित करने का दुस्साहस नहीं करना चाहिये एक आदर्श राष्ट्रीयत्व निर्माण करके, उसे स्थायी रखने के लिये हमें,

सदुपयोगार्थ प्राप्त स्वतंत्रता द्वारा, अपने आचार और विचार भी उच्च-श्रेणी के बनाना की अत्यन्त आवश्यकता है। अस्तु, अब हमें, राष्ट्रीयत्व को मिथ्या आचरण अथवा पाखण्ड की मन्दोन्मत्त धारणाओं में और अधिक नहीं उलझाना चाहिये। राष्ट्र-भर की महत्ता एवं कीर्ति सूचक चिन्ह के रूप में, सच्चा सांस्कृतिक-ज्ञान सैनिक-शक्ति अथवा भौतिक-संपत्ति की अपेक्षा कुछ कम महत्व का नहीं है। कला, मानव-जीवन के दृष्टि-कोण को विस्तृत कर देती है।, विषमताओं के इस जीवन में, कला ही एकीकरण कर सकने वाली, एक अति श्रेष्ठ शक्ति है। जहाँ तक वास्तविक कला का सम्बन्ध उसमें जाति, सम्प्रदाय अथवा धर्म की विभिन्नता का कोई अस्तित्व ही नहीं है। अतः यह उन्नति का एक शुभ-लक्षण है कि, कोई गत दो पीढ़ियों पूर्व, जीवन को सौन्दर्य-मय बनाने में अनुचित बाधक बनी हुई, नृत्य एवं गायन जैसी ललित-कलाओं के अध्ययन की ओर आजके युवक-समाज के स्त्री-पुरुष अधिकाधिक संख्यामें आकर्षित हो रहे हैं।

मेरे विचार से, उपाधि-अध्ययन-क्रम (Degree Courses) के लिये गायन एवं नृत्य को, कमसे कम वैकल्पिक (Optional) विषय की भाँति अपने पाठ्य-क्रम में स्थान देने की समस्या पर ध्यान देने और उसकी पूर्ति के लिये यथा शक्ति प्रयत्न करने का विश्व-विद्यालय के अधिकारी-वर्ग के लिये यही सुअवसर है। दो एक विश्व-विद्यालयों ने पहिले से ही गायन के लिये ऐसी सुव्यवस्था कर दी है। प्रायः समस्त शिक्षण-संस्थाओं में शरीर-सम्बन्धी शिक्षा अनिवार्य करके एक उचित कार्य किया गया है। मेरा मत है कि, इसी सर्वज्ञ-राष्ट्र के रूप में, हमारी सर्व-व्यापी उत्कृष्ट-वृद्धि के लिये हमारे विश्व-विद्यालयों में नृत्य एवं गायन के शिक्षण की ओर भी उचित स्थान देना आवश्यक है। सच पूछें तो, आजकल की शिक्षा, एक यंत्र की भांति, भारत में केवल अधिकाधिक कारकून या मुंशी (clerks) और दास (slave) ही बनाने का साधन सिद्ध हुई है। आज के स्वतंत्र-भारत में, अन्य स्वतंत्र मनुष्यों की भांति, हमें भी विद्या अथवा ज्ञान की प्रत्येक शाखा में सर्व श्रेष्ठ बनने के सफल प्रयत्नों द्वारा पूर्ण उन्नति करना, तथा सर्व-सम्पन्न एवं गुणवान स्त्री व पुरुषों का एक भावी आदर्श-राष्ट्र निर्माण करने के लिये हम अपने प्रारब्ध की स्पष्ट आकृति अवश्य बनाना चाहिये।

—०—

पंढरीनाथ

त्रिलियन्थाईन,आंवलेका तेल, निलगिरी. मोम,
टींमेंकीडिबी,गंध,आयडिन वगैरे भरपूर स्टॉक

पंढरीनाथ डिपो, मुंबई नं. २८

विविध–समाचार

धर्मार्थ महाराष्ट्र संगीत विद्यालय, पंढरपूर

(३४ वाँ वार्षिक समारंभ)

पूना के सुप्रसिद्ध नागरिक, श्रीमंत सरदार आबा साहब मजुमदार की अध्यक्षता में उपर्युक्त संस्था का ३४ वाँ वार्षिक–समारंभ दि. २-११-४८ से ६-११-४८ तक बड़े ठाट–बाट से मनाया गया। दि. ३ व ४ को विद्यालय के विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षा हुई। दि. ४, ५, व ६ को विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के गायन व नृत्य, इत्यादि विविध कार्यक्रम अत्यन्त ही सुन्दर एवं चित्ताकर्षक हुए। समस्त कार्य–क्रम के समय गाँव के प्रतिष्ठित स्त्री पुरुषों की भारी भीड़ रही। दि. ६ को विद्यालय के ऑ. सैक्रेटरी श्री. विष्णुपंत मंगलवेढेकर ने विद्यालय का ३४ वाँ वार्षिक अहवाल निवेदन करते हुए कहा, "आज इस विद्यालय में कुल ८९ विद्यार्थी संगीत सीख रहे हैं। संगीत कला का संरक्षण, उत्कर्ष तथा उच्च संगीत के प्रति अभिरुचि निर्माण करने के लिये संस्था के चालक गायनाचार्य पं. जगन्नाथ बुआ पंढरपुरकर व वादनाचार्य पं. दत्तोपंत जोशी मंगलवेढेकर, ये लोग समस्त विद्यार्थियों को मुफ्त सिखाते हैं। इसके अतिरिक्त होनहार गरीब विद्यार्थियों को चालक अपने पाससे अन्न–वस्त्र इत्यादि की व्यवस्था करके सिखाते हैं। इस वर्ष ऐसे ४ विद्यार्थी हैं। किसी भी प्रकार की बाह्य–आर्थि साहाय्य की इच्छा न करते हुए, चालकों ने संस्था के प्रति होने वाला सारा व्यय अपनी जेबसे ही किया है। अस्तु, सबको इस विद्यालय से लाभ उठाना चाहिये।" तत्पश्चात् परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थि यों को प्रशस्ति-पत्र तथा इनामें दी गईं और फिर माननीय अध्यक्ष के समक्ष एकतारी, व स्वर–शृंगार इत्यादि तन्तु–वाद्यों का सुश्राव्य वादन हुआ। अध्यक्षीय भाषण में, श्रीमंत सरदार आबासाहब ने कहा, "इस प्रकार की आदर्श संस्था समस्त महाराष्ट्र में दूसरी कदाचित् ही हो। ऐसी संस्था के चालकों का मैं अभिनंदन करता हूँ।" अंत में संगीत सम्बन्धी उपयुक्त परिचय व अनेक उदाहरण देते हुए आपने कहा, "संसार की किसी भी वस्तु का ताल व नाद छूटा कि सांसारिक व्यवहार एवं जीवन सुचारू रूप से चलना कठिण ही नहीं; वरन् असंभव है।" विद्यालय के नृत्य से संबंधित उपक्रम की प्रशंसा करते हुए आपने बताया, "नृत्य के अभाव में संगीत पूर्ण होना संभव ही नहीं। अतः सबको इस का लाभ अवश्य उठाना चाहिये।"

वृन्द–वादन, सत्कार, पान सुपारी व राष्ट्र–गीत गायन के पश्चात् उपर्युक्त समारंभ समाप्त हुआ।

व्यास संगीत–विद्यालय का ११ वाँ वार्षिकोत्सव

उक्त समारंभ दि. २३-१०-४८ को बम्बई के सुप्रसिद्ध नेत्र- डॉ. डी. जी. व्यास की अध्यक्षता में, वनमाली हॉल दादर गायन–वादन, वृन्द–वादन (ऑर्केस्ट्रा), तथा नृत्य इत्यादि के कार्य–क्रमों द्वारा बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। इस समारंभ में दादर के प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। विद्यालय के सैक्रेटरी, प्रो. वसन्तराव राजोपाध्ये ने विद्यालय द्वारा किये गये ११ वर्षों के समस्त कार्यों का यथोचित वर्णन करते हुए संस्था की उत्तरोत्तर प्रगति पर प्रकाश डाला। आपने कहा कि, जब सरकार बाले अभ्यास–क्रम में संगीत–विषय का अन्तर्भाव करना चाहती है त व्यवसायी गायक व शिक्षक तैयार करने के लिये संस्था को सरकार की ओर से आर्थिक–साहाय्य मिलना चाहिये'। विद्यालय के व्हा प्रि. प्रो. नारायणराव व्यास ने विद्यालय के शिक्षण का दृष्टि-कोण समझाते हुए विद्यार्थियों को स्वर और ताल इन दो बातों की ओर आरंभ से ही विशेष ध्यान देते रहने का उपदेश दिया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. व्यास ने विद्यालय के और संस्था से प्रेम रखने वाले पालकों; तथा समस्त विद्यार्थ का अभिनंदन किया। संगीत पर मूल गामी एवं उद्बोधक वि प्रकट करते हुए आपने हमारे कला कारों की पर्याप्त जीविका, उनकी कला का उचित सत्कार किये जाने की व्यवस्था राष्ट्र सरकार को करना चाहिये, इस प्रकार प्रतिपादन किया। अ विद्यालय के प्रि. शं. ग. व्यास ने समस्त उपस्थित रसिक आभार माना और वंदे–मातरम्–गायन के पश्चात् वह कार्य समाप्त हुआ।

—इलाहाबाद म्यूज़िक सर्किल—

इलाहाबाद कल्चर सेंटर की ओर से एक म्यूज़िक स अलाहाबाद में हालहीमें स्थापित हुआ है। दिल्ली, लखनऊ

पुरुषोंत की ओर जाने वाले कला कारों को प्रो. यू. एस. सॉकलक, रौनक होटल २१ कैनिंग रोड, इलाहाबाद, इस पते पर पत्र–व्यवहार करें तो उक्त सॉकलकी ओरसे अपने कार्य–क्रमोंकी व्यवस्था करा सकना संभव है।

संगीत–कार्यक्रम

नागपुर मनहर गायन समाज की ओर से बम्बई की भावी गायिका **कु. वसुन्धरा श्रीखण्डे** का गायन, शनिवार दि. १३-११-४८ की रात्रि को अत्यन्त श्रवणीय हुआ। आपने छाया-नट, बागेश्री व मालकौंस राग बड़ी तैयारी से गाने के पश्चात् कुछ मनोहर एवं कर्ण–प्रिय मराठी–गीत भी गाये। साथी के लिये तबला–पटु रा. शांतारामजी व हार्मोनियम–पटु श्री. बबनराव आठवले थे।

रविवार को श्री. आकोटकर का स्वतंत्र तबला–वादन व संगीत शेखर राजाभाऊ कोकजे का गायन, ये दोनों कार्यक्रम अत्यन्त बहारदार हुए।

अन्तमें समाज ने उपर्युक्त कलावंतों का यथोचित सत्कार भी किया। —(प्र. का.) शंकरराव सप्रे

मिरज के मशहूर फरीद साहब सितार––मेकर के नातू का तंतू-वाद्यों का कारखाना—

इस कारखाने में सितार, तंबूरा, बीन सुर–बहार, दिलरुबा वगैरह साज सुरेल और खूबसूरत बनते हैं; इसीलिये संगीत–तज्ञों की तरफ से मैडिल और सर्टीफिकेट मिले हैं। ज्यादह मालूमात के लिये लिखें:—

पता—

प्रो. अब्दुल करीम इस्माईल साहब ॲन्ड सन्स

सितार–मेकर, शनिवार–पेठ; मिरज।

श्रीराम संगीत विद्यालय, शोलापुर में दि. १-११-४८ को दीपवालि–उत्सव पर प्रो. रामचन्द्र महादेव कंदीकर, पूना का गायन बड़ी ही बहार का हुआ। उक्त कार्यक्रम विद्यालय के विद्यार्थियों के लिये विशेषत: किया गया था। प्रोफेसर सा: भाव–गीत बड़ी ही सुन्दर व शानदार रीतिसे गाते हैं।

सेक्रेटरी— श्रीराम संगीत विद्यालय.

आवश्यक–सूचनायें

इलाहाबाद में प्रयाग संगीत समिति की ओर से दि. १७, १८ व १९ दिसम्बर को अखिल भारतीय संगीत परिषद् होना निश्चित हुआ है। इस अवसर पर म्युझिक-कम्पीटीशन भी होने वाला है।

नागपूर के श्री राम संगीत विद्यालय में दि. २४, व २५ दिसंबर १९४८ को गांधर्व–महाविद्यालय मण्डल [रजि.] बम्बई की ओर से " संगीत–परीक्षा " होगी।

केंद्र संचालक, **प्रो शंकरराव सप्रे**, (सीताबर्डी) **नागपूर**

—अमर संगीत मंडल, पूना —

उक्त मंडल की स्थापना जून १९४८ में पूना में हुई। आरंभ में इस मण्डल के कार्य कारी–मण्डल में सौ. हीराबाई बड़ोदेकर; सौ. माणिक वर्मा, बी. ए.; डॉ. आर. एच. सोमण; रा. खाडिलकर; मुहम्मद हुसैन, सेठ पोपटलाल, इत्यादि लोग थे। दि. १२-११-४८ को इस मण्डल की एक सर्व–साधारण सभा हुई और नया कार्यकारी मण्डल चुना गया। उसमें सरदार मजुमदार, अध्यक्ष,; भालचन्द्र द. वाडिकर, सेक्रेटरी; व पोपटलाल सेठ, उपाध्यक्ष चुने गये। इस मण्डल की ओर से अभी तक चार कार्य–क्रम किये गये, जिनमें मुख्य पं. ओंकार नाथ जी ठाकुर, सौ. सरस्वती राणे, लताफत हुसेन खां के गायन कार्य–क्रम थे। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उक्त अमर संगीत मण्डल दीर्घायु हो।

शोक–समाचार

खां सा: बहरे वहीद खां लुहारी वाले, मुहर्रम की सात तारीख को स्वर्ग–वासी हो गये। छप्रोली वाले खां सा: हैदर खां, (जो कोल्हापुर में थे,) के आप भानजे थे। खां सा: हैदर खां किराने वालों के शागिर्द थे, और उन्हें हजारों चीजें याद थीं। उस्ताद वहीद खां का शिक्षण उन्हीं के पास कोल्हापुर में हुआ था। आप बहुत दिनों तक बम्बई में रह चुके हैं, और प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ोदेकर इन्हीं की शिष्या हैं। बाद में, वे लाहौर में रहने लगे थे; तथा उनकी शिष्य–मण्डली देहली व लाहौर की ओर ही अधिक पाई जाती है। आपके मृत्यु से एक महान् संगीत–रत्न काल ने हमसे छीन लिया है। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे।

संगीत—विभाग

राम–भैरवी दीपचंदी १४ मात्रा (मध्य लय)

(स्वर एवं शब्द-कारः–प्रो. आर. जी. जोशी सं. प्र.)

गां. म. वि. मुंबई

ग् रे ग् स रे्   स ऽ ऽ ऽ
ठा : . ढी र   ही . . .
११ १

सा रे् ग्म म ऽ ऽ ग्   प प ऽ ऽ
मै . . . तो . . .   तो रे . .
× ११ १ ४

ग् प प प ध् ऽ ऽ ऽ
द र स न के . . .
११

× १
प ध् प म ग् म ऽ ग् म प म
का . . . . जे
४ ×

ग् म ग् ग् सा रे्
ठा . . . ढी र ही ||
११ १

ध् म ध् नी सां ऽ नी सं ऽ
आ . गो जी जा . . . .
११

सां ऽ ऽ ऽ नी नी नी सं ऽ
गी . . . शा म क न्है .
× ४ × ११

ध् नी सां रे् नी सं ध् प म प
. . . . . . या . . .

प प प प ध प ध प म
द र स क री . . न य

×
ग् प प म प ध् नी ऽ ऽ ध प म
ना . . . . स फ ल

ग् म ऽ ग् म प म ग् म ग् ग् स रे्
आ . . . . . ज ठा . . . ढी र ही
× ११ १

राग भूपाली– तीनताल (मध्यलय)

(स्वर एवं शब्द-कारः–प्रो. प्रल्हाद लक्ष्मण गानू, मुंबई)

नादविद्या अपरौंपार कहत गुनिजन बारौंबार ॥
सुर संगतसों राग उपजे, सुर संगतसों राग बिगरे ।
कहे आनौंद ये भेद अपार ॥

– ग – रे	– सा – सा	सा ध सा रे	प ग रे सार
ऽ ना ऽ द	ऽ बी ऽ द्या	अ प रौं ऽ	पा ऽ ऽ रऽ
२	०	३	×
ग ग – रे	– सा – सा	सा ध सा रे	प ग – ग
ऽ जा ऽ द	ऽ बी ऽ द्या	अ प रौं ऽ	पा ऽ ऽ र
२		३	×
– ग ग रे	ग प ध सां	– सां सां ध	प ग रे सार
ऽ क ह त	गु नि ज न	ऽ बा ऽ रौं	ऽ बा ऽ रऽ
२		६	×

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

[स्पेशल नं. १]

सर्वत्र मिळतें.

१ पांढरे केस काळे होतात. २ स्मरणशक्ती वाढते. ३ टक्कलावर केस उगवतात. ४ शांत झोप येते. ५ दृष्टि सुधारते. ६ केस लांब सडक होतात. ७ डोकेदुखी व मेंदूच्या सर्व विकारांवर खात्रीचा इलाज. ८ लिखा व उवा मरतात.

किंमत मोठी बाटली ★ लहान बाटली
रु. ३-८-० रु. २-०-०

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, ४४८ सँढर्स्ट रोड, मुंबई नं. ४

अंतरा.

प ग ग – | प प सां ध | सां – – सां | सां रें सां –
सु र सौं ऽ | ग त सो ऽ | रा ऽ ऽ ग | उ प मे ऽ
३ × २

सां
सा ध ध – | सां सां रे – | सां रें गं रें | सां ध प ग
सु र सौं ऽ | ग त सो ऽ | रा ऽ ऽ ग | बि ग रे क
३ ×

सा
रे ग प ध | सां सां – ध | प ग रे सा रे | ग
हें आ नौं द | ये भे ऽ द | अ पा ऽ र ऽ | ऽ
×

राग मालकंस– तीनताल (मध्यलय)

शब्दरचयिता–प. सुखदेव स्वरकार–प्रो. बलवंतराय
[मुझफ्फरपूर]

हे सुखधाम चिरंतन शरणागत के सदा सहायक। प्रणतपाल अन्तरयामी को तुम मेरो स्वामी त्रिभुवन के अधिनायक॥

सां ऽ ग् सां ग् सां नी ध् नी ध् म धनी | ध् म म ध् म
हे . . . . सु ख | धा ऽ म चि ऽ
× ० १

ग् म ग् सा ग् ग् ग् म ध् नी सां | सां ध् नी सां ग् सां नी
र ऽ त न श र णा ग त के ऽ | स दा ऽ ऽ ऽ स ऽ
३ × ० १

ध् नी ध् म ग् म ग् सा
हा . . . य . क .
३

अंतरा

ग् ग् ग् म ऽ म ध् नी | सां सां ग् नी सा ऽ नी नी नी नी नी
प्र ण त पा . ल अं . | त र या . . मी को तु म बि न
× ० १ ×

सां नी ध् | नी सां ऽ ध् नी ध् म ध् नी सां ग् ग् सां ध् नी
मे ऽ | रो ऽ ऽ स्वा ऽ मी ऽ त्रि भु व न के ऽ अ धि
१ ३ × ०

सां ग् सा नी सां नी ध् नी ध म ध म ग् म ग सा
ना . . . . य . क .
१ ३

शब्द रचयिता तथा, स्वर कार	राग–पिलू मध्यलय तीन ताल —दत्तात्रय हरी केळकर संगीत विशारद (कानपूर)

अस्थाई :

नि सा रे ग् ग् – रे ग सा रे ग म ऽ ऽ ग म
आ ऽ ऽ ऽ य ऽ घ न शां ऽ ऽ ऽ म ऽ अ ब
× ० १ ३

म म प प प म प ग् रे सा नि सा ऽ ऽ ऽ
मे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ का ऽ रि क रू ऽ ऽ ऽ
+ ० १ ३

प ग

ग म प प प ध ग म प ध सां नी ध प ध ग प म ग रे ग
अ ब कै से भी ऽ र प रू ऽऽऽऽऽऽ आ ली री ऽ ऽ ऽ
+ ० १ ३

ग म प ध् प म ग् रे सा नि सा ऽ नि सा रे ग् नि सा
अ ब मे ऽ ऽ ऽ का ऽ रि क रू ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ न हीं
+ ० १ ३

अंतरा

म प
आ ई

नी नी नी सां नी सां रें गं ऽ रें गं सां ऽ सां सां सां
सा व न ऽ की ऽ ऽ ऽ ऽ ब हा ऽ ऽ र सु र
+ ० १ ३

सां रें ऽ नि ध म प ध नी ऽ ध नी प
बा ऽ ऽ शी ऽ ऽ र ऽ ऽ ऽ म चा य
× ० १ ३

प प प प ध ग म म ध मा नी ध प ध ग प म ग रे ग ऽ
पु पी हा पी ऊ को ऽ टे ऽ ऽ ऽ र ऽ सू ना ऽ ऽ ऽ रे ऽ ऽ
× ० १ ३

ग म प ध प ध रे म ग् रे सा नी सा ऽ ऽ नि सा
अ ब मे ऽ ऽ ऽ का ऽ ऽ ऽ रि क रू ऽ ऽ न हीं
× ० ३

रू प चं द
पंजाब ज्वेलर्स (जौहरी) (लाहोरवाले)
सैंडर्स्टब्रिज-फ्रेंचब्रिज कार्नर-आपेरा हाऊस के सामने बम्बई न. ४
आपके लिये और आपके परिवार के लिये
– जवाहिरत का भव्य शो रूम—
रानीहार और कड़ा

जड़ाऊ सेट	मुग़ल झुमके
सोनेका सेट	बाली बीजली
बेगम सेट	और मगर.

★

सच्चे सोने और चांदी के बार, कांचकी हांथी दांतकी, बिजली के और मशीनों के सामान; घड़िया और टाइम पीस भी बिकती।

जड़ाऊ हीरे के अनोखे डिझाइन हमारी खास स्पेशियालिटी है।

हमारे यहा वाजबी से ज्यादा क़ीमत नहीं ली जाती। कृपया एक बार पधारें यही विनंती है।